स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी का अवदान

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date..............

शोध निर्देशक
डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय
उपाचार्य

अनुसंधित्सु
अमीरुल हसन अकेला

हिंदी विभाग
द्वारा
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रस्तुत

Thesis
103840
NEIIJ LIBRARY
Acc No. 103840
Acc By ...
Date ... 17-4-08
Class by ...
Sub.Heading by ...
Enter by ...
Transcribed by ...

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

अगस्त 2007

घोषणा

मैं अमीरुल हसन अकेला एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा अन्य कोई शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिंदी विषय में **'डॉक्टर ऑफ फिलासफी'** की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

अमीरुल हसन अकेला
अनुसंधित्सु

10/8/07
निर्देशक

10-08-07
अध्यक्ष

भूमिका

भारत में आकाशवाणी का प्रचलन सन् 1927 से प्रारंभ हुआ, परंतु सन् 1957 आते-आते यह संचार के सर्वाधिक लोक-विधा के रूप में स्वीकृत हो गई थी। लोक प्रभाव उत्पन्न करने में आकाशवाणी एक प्रभावी तंत्र के रूप में विकसित हो चुकी थी और सरकार द्वारा इस माध्यम का उपयोग विविध सूचनाओं एवं जन-जागृति के लिए किया जा रहा था। लगभग इसी समय आकाशवाणी ने सूचना माध्यम के साथ ही साथ अपना विकास नए रूपों में भी किया, जिनमें ज्ञानवृद्धि एवं मनोरंजन प्रमुख था। इस क्रम में आकाशवाणी द्वारा जन चेतना के परिष्कार एवं मनोरंजन के लिए साहित्य की विविध विधाओं का प्रसारण भी प्रारंभ हो चुका था। आज़ादी के पहले से ही तमाम साहित्यकार आकाशवाणी से जुड़ रहे थे और उनकी रचनाओं को इसके माध्यम से प्रसारित किया जा रहा था।

जहाँ तक स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का प्रश्न है, आज़ादी के बाद उसमें अद्भुत उथल-पुथल दिखाई पड़ती है। हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर अपनी विशाल साहित्यिक परंपरा एवं चिंतन का गांभीर्य था वहीं दूसरी ओर स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का दबाव भी था। इसीलिए इस युग का साहित्य अभिव्यक्ति के नए-नए तरीक़ों की खोज में निरंतर संलग्न दिखता है। चाहे प्रयोगवादी कविता का उत्तर दौर रहा हो अथवा नई कविता का या गद्य की अन्य विधाएँ, सभी जगह यह बेचैनी देखी जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में आकाशवाणी और साहित्य जैसी भिन्न प्रवृत्ति वाली विधाओं के आपसी सामंजस्य 'सहभागिता' के नए आधार तैयार करती दिखाई देती है। आकाशवाणी जहाँ अपनी व्यापक संप्रेषणीयता एवं विशाल जन चेतना के लिए समाज में स्वीकृत हो चुकी थी, वहीं साहित्य अपनी प्रभावोत्पादकता एवं लोक संपृक्ति के लिए आकाशवाणी को एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर रहा था। ऐसे में अभिव्यक्ति के इन दोनों माध्यमों को एक दूसरे से प्रभावित होना बहुत स्वाभाविक था।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य का विषय व्यापक रहा है। पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि विषयों पर आकाशवाणी द्वारा साहित्य का प्रसारण होता रहा है और यह साहित्य काफ़ी लोकप्रिय भी हुआ है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं, जो हैं वह आकाशवाणी के

केंद्रों के बाहर देख पाना कठिन ही नहीं असंभव है। यही कारण है कि किसी ने आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य पर अब तक गवेषणात्मक शोध प्रबंध लिखने का प्रयास नहीं किया है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रेडियो नाटकों का अनुशीलन यत्र-तत्र मिलता है और रेडियो नाटकों पर कुछ प्रकाशित पुस्तकें भी उपलब्ध हैं, जिनमें रेडियो नाटक के शिल्प, प्रसारण-विधि आदि की चर्चा की गई है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य के एक बार प्रसारित होने के बाद पुनः किसी को पढ़ने का मौक़ा नहीं मिल पाता है। पाठक वर्ग रेडियो साहित्य को सुनने अथवा पढ़ने से वंचित रह जाता है। इस प्रकार हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी के अवदान का निर्धारण करना कठिन था। इसी कठिनाई को आसान करने और रेडियो साहित्य से वंचित पाठक वर्ग के लिए सामग्री उपलब्ध करवाकर उसके प्रति उनकी रुचि को जगाना, उनका अनुशीलन करना और हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी के अवदान को स्थापित करना इस शोधकार्य का मूल उद्देश्य है। इस शोध प्रबंध में जहाँ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की नव भूमिका का निदर्शन किया गया है, वहीं अभिव्यक्ति एवं चिंतन के निमित्त साहित्य की सार्थक दिशा को समझने की कोशिश भी की गई है और आकाशवाणी की व्यापक भूमिका को वैचारिक संस्कार के माध्यम के रूप में परखा गया है। साथ ही आकाशवाणी से संबद्ध विभिन्न साहित्यकारों के साहित्यिक चिंतन के माध्यम से आकाशवाणी एवं हिंदी साहित्य की पारस्परिक संबद्धता को प्रमुखता से उभारने का प्रयास भी किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के विकास में आकाशवाणी का जुड़ाव कितना सघन था, इस ओर भी संकेत किया गया है और हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी के अवदान की सम्यक विवेचना की गई है।

आधार वस्तु एवं प्रविधि के रूप में जहाँ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का सामाजिक नवचेतना-परक अनुशीलन किया गया है, वहीं उसकी नव-भूमिका में अवतरित होने की विवेचना भी की गई है। इसी क्रम में विकसित साहित्य की विविध विधाओं का भी अध्ययन किया गया है। साथ ही आकाशवाणी के कुछ केंद्रों द्वारा प्रसारित साहित्य की विविध विधाओं का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत कर हिंदी साहित्य के विकास में उसके अवदान को रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और आकाशवाणी का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन

वाचिक परंपरा से लेकर आकाशवाणी के उद्भव और विकास की कहानी भी है। इसी क्रम में भारत के प्रमुख आकाशवाणी केंद्रों की स्थापना तथा साहित्य के प्रसारण की शुरुआत और उसकी उपादेयता पर भी प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और आकाशवाणी की परस्पर संबद्धता को उद्घाटित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की संक्षिप्त जानकारी देने के साथ-साथ अभिव्यक्ति की नव भूमिका की तलाश, अभिव्यक्ति में आज़ादी की अनुभूति, सामाजिक जागरण के नव-सोपान पर गहन रूप से प्रकाश डाला गया है। राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक क्षेत्रों के सामाजिक जागरण में आकाशवाणी द्वारा दिए गए योगदान का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। देश के तमाम साहित्यकार किसी न किसी रूप में आकाशवाणी से जुड़े रहें हैं। सभी को इस शोध-प्रबंध में सम्मिलित करना कठिन ही नहीं असंभव था; फिर भी अधिकाधिक साहित्यकारों के विषय में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के साथ-साथ आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य के विषय में जानकारी देते हुए आकाशवाणी ने जिन विधाओं को ग्रहण किया है तथा कुछ साहित्यिक विधाओं का विकास भी किया है, उन सब पर विचार किया गया है। आकाशवाणी ने कुछ साहित्यिक विधाओं की टेकनीक में परिवर्तन कर उसे नूतन रूप प्रदान किया है, इसका विवेचन भी इस अध्याय में वर्णित है।

चतुर्थ अध्याय में आकाशवाणी के कुछ केंद्रों से प्रसारित साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें कुछ विशेष विधाओं को ही सम्मिलित किया गया है; क्योंकि सभी विधाओं को सम्मिलित करना अनौचित्यपूर्ण जटिल कार्य था और यह भी कि आकाशवाणी के कई केंद्रों पर जाने के पश्चात भी उपयुक्त सामग्री प्राप्त नहीं की जा सकी। फिर भी इस अध्याय में हर विधा की रचनाओं को विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी के अवदान एवं साहित्य की प्रवृत्तियों के विकास में जो उसकी भूमिका रही है, उसका विस्तृत अनुशीलन किया गया है। उपसंहार के अंतर्गत प्रस्तुत शोध-प्रबंध के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध आदरणीय गुरुवर डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय के कुशल मार्गदर्शन में हुआ है। अपनी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने अथक प्रयास और असीम विद्वत्ता के साथ मेरा मार्ग-प्रशस्त किया। इस शोध-प्रबंध में जो नई दृष्टि आपको मिलेगी वह उन्हीं की सोच और समझ का परिणाम है। मुझे मानसिक शक्ति प्रदान करने तथा प्रेरित करने वाली और मुझे सफल बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील मेरी सहधर्मिणी श्रीमती फरहाना अमीरुल के सहयोग से ही मैं इस शोध-प्रबंध को पूर्ण करने में सफल हो पाया हूँ। इस कार्य के लिए कृष्णा दासगुप्ता, जानमोहम्मद, जया भट्टाचार्जी, नाजिया, अमीर, मिकाइल तथा मेरे कार्यालय के अधिकारी एवं अन्य सहकर्मी मित्रों ने मुझे प्रेरणा और सहयोग दिया है। श्रद्धेय सर्वश्री विष्णु प्रभाकर, डॉ. परमानंद पांचाल, डॉ. राजेंद्र गौतम, (दिल्ली), सिद्धनाथ कुमार (राँची), पद्मश्री चिरंजीत, टी. डोलकर (आकाशवाणी, दिल्ली), आनंद प्रकाश आर्टिस्ट (कुरुक्षेत्र), डॉ. दिनेश कुमार पाठक 'शशि' (मथुरा), ऊर्मि कृष्ण (अंबाला छावनी), डॉ. आशाराम त्रिपाठी, प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित, बजरंगी लाल (लखनऊ), डॉ. दिनेश कुमार चौबे, डॉ. सुशील कुमार शर्मा, प्रो. अवधेश कुमार मिश्र, भरत प्रसाद त्रिपाठी (शिलांग), प्रो. लालबहादुर वर्मा (इलाहाबाद), विश्वनाथ पाण्डेय (आकाशवाणी, पटना), कैलाश गौतम, युक्तिभद्र दीक्षित (आकाशवाणी, इलाहाबाद), राजुरकर राज (आकाशवाणी, भोपाल), प्रो. जगमल सिंह (ब्यावर, राजस्थान), डॉ. निवासचंद्र ठाकुर (आकाशवाणी, राँची), श्रीमती तापोसी सेनगुप्ता (आकाशवाणी, गुवाहाटी), डॉ. कृष्णावतार उमराव 'विवेकनिधि' (फ़तेहपुर, उ.प्र.), आशा शैली (आकाशवाणी, शिमला) आदि विद्वान इस शोध के दौरान मेरा उत्साह बढ़ाते रहे और मेरा पथ प्रशस्त करते रहे। इनके अतिरिक्त समय-समय पर अन्य मित्रों तथा विद्वान भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की तथा मेरा मनोबल बढ़ाया उन सबके प्रति मैं आभारी हूँ।

अंत में मैं अपनी माँ के आशीर्वचनों को नहीं भुला सकता जिनके कारण मैं हर काम में सफल हो पाता हूँ।

अमीरुल हसन अकेला

(अमीरुल हसन अकेला)

अनुसंधित्सु

द्वितीय अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और आकाशवाणी : परस्पर संबद्धता 65-98

2.(क). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य

2.(ख). अभिव्यक्ति की नव-भूमिका की तलाश

2.(ग). अभिव्यक्ति में आज़ादी की अनुभूति

2.(घ). सामाजिक जागरण के नव-सोपान

2.(घ).(1). औद्योगिक विकास 2.(घ).(2). मोहभंग

2.(घ).(3). मध्यवर्ग का उदय 2.(घ).(4). नगरीकरण

2.(घ).(5). खीझ और निराशा 2.(घ).(6). राजनैतिक सन्नद्धता

2.(च). सामाजिक जागरण में आकाशवाणी का अवदान

2.(च).(1). राजनैतिक क्षेत्र में 2.(च).(2). सांस्कृतिक क्षेत्र में

2.(च).(3). वैचारिक क्षेत्र में

2.(छ) आकाशवाणी से जुड़े प्रमुख चिंतक और साहित्यकार

तृतीय अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की विविध विधाएँ और आकाशवाणी 99-143

3.(क). विविध विधाएँ

3.(क).(1). कविता 3.(क).(2). कहानी 3.(क).(3). उपन्यास

3.(क).(4). नाटक 3.(क).(5). एकांकी 3.(क).(6). निबंध

3.(क).(7). जीवनी 3.(क).(8). भेंटवार्ता 3.(क).(9). संस्मरण

3.(क).(10). रेखाचित्र 3.(क).(11). रिपोर्ताज 3.(क).(12). यात्रावृत्त

3.(ख). आकाशवाणी द्वारा प्रमुख साहित्यिक विधाओं का ग्रहण

3.(ग). प्रमुख विधाओं की टेकनीक में परिवर्तन और उनकी रूपरेखा

प्रथम अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और आकाशवाणी

परिचयात्मक इतिवृत्त

1.(क) हिंदी साहित्य की विकास यात्रा

किसी भी साहित्य के विकास में साहित्यकार की रचना-शक्ति एवं उसकी वैयक्तिक क्षमता के साथ-साथ पूर्ववर्ती परंपराओं एवं युगीन परिस्थितियों के द्वंद्व एवं सामंजस्य सहायक होते हैं। कई विद्वान हिंदी साहित्य की शुरुआत हिंदी भाषा की शुरुआत के साथ-साथ ही मानते हैं, जबकि कुछ विद्वान हिंदी भाषा के विकास के काफ़ी बाद हिंदी साहित्य का आरंभ स्वीकारते हैं। राहुल सांकृत्यायन प्रभृति विद्वान हिंदी भाषा को किसी नई भाषा के रूप में न मानकर पूर्ववर्ती दीर्घ भाषिक परंपरा का अगला चरण मानते हैं। अपनी 'हिंदी काव्य धारा' में उन्होंने अपभ्रंश के तमाम कवियों को हिंदी का कवि ही स्वीकार किया है और यह माना है कि अपभ्रंश के कवियों ने मात्र प्राचीन साहित्य का अनुसरण ही नहीं किया; बल्कि नई उद्भावनाएँ की हैं। भूमिका में वे लिखते हैं "अपभ्रंश के कवियों को विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु है। यही कवि हिंदी काव्य-धारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भाष, कालिदास और बाण की सिर्फ़ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य क्षेत्र में नया सृजन किया है; नए चमत्कार, नए भाव पैदा किए। यह स्वयंभू आदि की कविताओं से अच्छी तरह मालूम हो जाएगा। नए-नए छंदों का सृष्टि करना इनका अद्भुत कृत्य है। दोहा, सोरठा, चौपाई आदि कई सौ ऐसे नए-नए छंदों की सृष्टि की जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नहीं। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी

और तुलसी के ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं।"[1] परंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वान हिंदी साहित्य के विकास को दसवीं शताब्दी की शुरुआत से मानने के पक्षधर हैं। उनका मत है, "प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे 'गाथा' कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या 'दुहा' कहने से अपभ्रंश या प्रचलित काव्यभाषा का पद्य समझा जाता था। अपभ्रंश या प्राकृतभास हिंदी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योग मार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है। मंजु और भोज के समय (संवत 1050) के लगभग तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिंदी का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य या काव्य रचनाओं में भी पाया जाता है। अतः हिंदी साहित्य का आदिकाल संवत 1050 से लेकर संवत 1375 तक अर्थात महाराज भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक माना जा सकता है।"[2]

वास्तव में अगर हम विवेचनपूर्वक देखें तो स्पष्ट होता है कि सातवीं सदी के मध्य से 1000 ई. तक की रचनाएँ मुख्यतः अपभ्रंश में रचित हैं, यदि कहीं हिंदी के प्रयोग मिलते हैं तो उन्हें हिंदी भाषा के विकास की पृष्ठभूमि में ग्रहण करना चाहिए। 'हिंदी' को वस्तुतः सत्रह बोलियों-खड़ी बोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुंदेली, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, कुमाऊँनी, गढ़वाली, भोजपुरी, मगही और मैथिली का समन्वित रूप माना जाता है। आज हिंदी भाषा जिस रूप में स्वीकृत है उसका विकास हिंदी के पश्चिमी रूप के शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है।

हिंदी साहित्य का आरंभ अधिकतर विद्वान हिंदी भाषा से संबद्ध कर 1000 ई. से मानते हैं; जबकि कुछ विद्वान हिंदी साहित्य का प्राकृतिक रूप सातवीं

सदी के उत्तरार्ध में देखते हैं, क्योंकि इस काल की भाषा प्रमुख रूप से हिंदी की किसी न किसी उपभाषा से संबद्ध है और ग्यारहवीं सदी के बाद ही वह अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त हो सकी। डॉ. नगेन्द्र का मानना है- "हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में काल-विभाजन के लिए प्रायः चार पद्धतियों का अवलंब लिया गया है। पहली पद्धति के अनुसार, संपूर्ण इतिहास का विभाजन चार युगों अथवा कालखंडों में किया गया है- (1) आदिकाल, (2) भक्तिकाल, (3) रीतिकाल और (4) आधुनिक काल। आचार्य शुक्ल द्वारा और उनके अनुसरण पर नागरी प्रचारिणी सभा के इतिहासों में इसी को ग्रहण किया गया है। दूसरे क्रम के अनुसार, केवल तीन युगों की कल्पना ही विवेक सम्मत है—आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। भारतीय हिंदी परिषद के इतिहास में इसे ही स्वीकार किया गया है और डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने अपने वैज्ञानिक इतिहास में इसी का अनुमोदन किया है।"[3]

हिंदी साहित्य के आदिकाल के साहित्य को देखें तो पता चलता है कि इसमें सिद्धों एवं नाथों के अतिरिक्त जैन साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया, जिसे रामचंद्र शुक्ल उत्तर-अपभ्रंश की रचनाएँ मानते हैं। इस युग के प्रमुख कवि और कृतियाँ इस प्रकार हैं- कवि स्वयंभू (783 ई.)-'पउम चरिउ', 'रिट्ठणेमि चरिउ' तथा 'स्वयंभू-छंद', पुष्पदंत (दसवीं शताब्दी)- 'महापुराण', 'णयकुमार-चरिउ' तथा 'जसहर-चरिउ'। धनपाल (दसवीं शताब्दी)- 'भविसयत्तकहा'। अब्दुल रहमान (बारहवीं शताब्दी)- 'संदेशरासक'। जिनदत्त सूरि (बारहवीं शताब्दी)- 'उपदेश रसायनरास'। शालिभद्र सूरि (1184 ई.)- 'भरतेश्वर-बाहुबलि रास'। स्पष्ट है कि जैन-साहित्य की मूल प्रवृत्ति के रूप में कथा-तत्व एवं चरित-काव्य के माध्यम से धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण अधिक है। वस्तुतः चरित काव्य, जिसका विकास आगे चलकर 'रासक' अथवा 'रासो' काव्य के रूप में हुआ, लिखने की परंपरा जैन साहित्य से ही आरंभ होती है। इस काल में जैन साहित्य के

अतिरिक्त सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, रासो साहित्य एवं लौकिक साहित्य के साथ-साथ छिट-पुट गद्य साहित्य की रचनाएँ भी मिलती हैं। "सिद्धों ने बौद्धधर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिंदी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरंभ होता है। इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा एवं कुक्कुरिपा हिंदी के मुख्य सिद्ध कवि हैं।"[4]

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल (सं. 1375-1700) हिंदी साहित्य का स्वर्ण-काल माना जाता है, जिसमें भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म के साथ-साथ भारतीय संस्कृति, परंपरा और लोक-जीवन का व्यापक चित्रण दिखाई देता है। भक्तिकाल ने हिंदी साहित्य को वह उदात्तता प्रदान की कि वह धार्मिक सरणियों से गुज़रता हुआ भी जन की अभिव्यक्ति का आधार बन सके और शाश्वत मानवीय मूल्यों की स्थापना साहित्य में हो सके। इस दृष्टि से अगर हम देखें तो हिंदी साहित्य का संपूर्ण भक्ति-काव्य मानवीय मूल्यों की दिग्दर्शिका की भाँति है, जहाँ एक ओर आस्था और विश्वास के रूप में सगुण रूप के उपासक सूर और तुलसी हैं तो दूसरी ओर कुरीतियों और जड़ परंपराओं के विरोध करने वाले समाज सुधारक रूपी कबीर, दादू और रैदास हैं। एक ओर 'स्व' का विसर्जन, भक्ति की पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर 'लोक' की पूर्ण प्रतिष्ठा का प्रयास। ऐसे में जायसी जैसे रचनाकारों ने हिंदी साहित्य की सांप्रदायिक बंदिशों को तोड़कर आध्यात्मिक चेतना का अद्‌भुत रूप प्रस्तुत किया है। "भक्ति काव्य की रचना किसी परम तत्व, देवी-देवता अथवा दैवी गुण संपन्न महामानव को लक्ष्य कर आरंभ हुई थी। इस प्रकार का विपुल साहित्य प्रायः सभी जीवंत भाषाओं में उपलब्ध है।"[5]

भक्तिकाल का साहित्य व्यक्तिगत मानसिक साधना पर आधारित होते हुए

भी 'स्वांतः सुखाय' के साथ-साथ 'समाज हित साधन' के भाव से संबद्ध था। "मध्ययुगीन हिंदी-साहित्य का पूर्व-मध्ययुग भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है। 'भक्तिकाल' शब्द ही अपने प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने वाला है अर्थात इस काल में भक्ति परक रचनाओं की प्रधानता रही है। कुछ विद्वानों ने इस काल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहा है। उनकी दृष्टि में हिंदी-काव्य का श्रेष्ठतम अंश इसी काल में उपलब्ध है।"[6] भक्तिकाल के साहित्य में भक्तिभावना की प्रधानता, संसार की असारता, सदाचार, नैतिक भावना, ईश्वर नाम की महिमा, गुरु की महत्ता, लोकभाषाओं को अपनाने की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है।

हिंदी साहित्य का तीसरा चरण रीतिकाल (सं. 1700-1900) के नामकरण में पर्याप्त मतभेद दिखाई देता है- "मिश्र बंधुओं ने इसे 'अलंकृत काल' कहा है, जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसे 'रीतिकाल' और पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'श्रृंगारकाल' की संज्ञा देते हैं।"[7] रीतिकाल के काव्यों को तीन धाराओं में विभक्त किया गया है। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध काव्य में काव्य के लक्षण तथा लक्ष्य दोनों का चित्रण मिलता है, अतः इसके कवियों को आचार्य भी कहा जाता है। रीतिसिद्ध काव्य में केवल 'लक्ष्य' चित्रण मिलता है, परंतु लक्षणों का उल्लेख नहीं किया जाता। इन दोनों के विपरीत रीतिमुक्त काव्य को 'स्वच्छंद' काव्य कहा जाता है। यह काव्य रीति के पारंपरिक चित्रण से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी वर्णन परंपरा के बंधन से अपने को मुक्त रखती है। 'मुक्त' का आशय यह नहीं निकालना चाहिए कि उसमें रीति तत्व सर्वथा अनुपस्थित है, बल्कि रीति मुक्त से आशय रीति परंपरा के बंधन से मुक्ति ही है।

रीतिकालीन काव्य श्रृंगार का काव्य है। इसमें राज्याश्रय का प्रभाव, श्रृंगारिता, संस्कृत-प्राकृत साहित्य का प्रभाव, वात्स्यायन के कामसूत्र एवं फ़ारसी साहित्य

का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस काल के कवियों में काव्य की मौलिकता की जगह अर्थ-उत्पादन की भावना अधिक मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी-साहित्य की यात्रा अपभ्रंश-अवहट्ट में सातवीं शताब्दी के आदिकालीन साहित्य से प्रारंभ होकर भक्तिकाल के स्वर्णयुग से गुज़रते हुए बादशाहों-सामंतों के रीति-श्रृंगार की ज़ंजीर से मुक्त होकर आधुनिक युग में आम जन-जीवन से जुड़ी। राजस्थानी, ब्रज, अवधी, मैथिली, खड़ी बोली को अपने में समाहित करते हुए हिंदी-साहित्य का भंडार समृद्ध होता गया। आदिकालीन और रीतिकालीन साहित्य प्रमुख रूप से दरबारी साहित्य था। इनकी रचना दरबारों में आश्रयदाताओं की रुचि-प्रवृत्ति के अनुसार हुई। जहाँ तक भक्ति-साहित्य का प्रश्न है, यह धार्मिक दृष्टि से रचा गया। इसमें लोकहित की भावना एवं आम लोगों के दुख-दर्द की अभिव्यक्ति के बावजूद समाज की यथार्थ परिस्थितियों का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं मिलता, वरन् यह सिर्फ़ सांकेतिक रूप में ही मिलता है। इस प्रकार अगर हम विचारपूर्वक देखें तो आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल का हिंदी साहित्य जनता की चित-वृत्तियों को अभिव्यक्त भले ही करती हो, उनमें अपने युग की वर्तमान आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अंकन कम मिलता है। इस अर्थ में हिंदी साहित्य में अभिधात्मकता कम तथा लक्षणा एवं व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्तियों की अधिकता रही है।

1.(क).1. आधुनिक काल

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल वस्तुतः नवीन जीवन दृष्टि और नई सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के साथ अपनी नई रूपरेखा निर्मित करता है। इसका सबसे प्रमुख रूपांतरण गद्य के विकास के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ हिंदी साहित्य के पिछले तीनों काल मुख्यतः पद्य की सीमा में बँधे रहे वहीं आधुनिक काल में

हिंदी-साहित्य ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए नए साहित्य-रूप की तलाश की। सन 1900 ई. में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना और उसमें भाषा विभाग का खुलना, लल्लू लाल, सदल मिश्र जैसे विद्वानों का हिंदी गद्य की प्रारंभिक रूपरेखा तैयार करने के साथ-साथ अँग्रेज़ी अधिकारियों की ज़रूरत जैसी परिस्थितियों ने हिंदी गद्य के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। विदेशी शासन की परिस्थितियों ने हिंदी-साहित्य के चिंतन को पाश्चात्य साहित्य और चिंतन से जोड़ा और परिणामस्वरूप एक ख़ास तौर की वैज्ञानिक सोच और दृष्टि हिंदी-साहित्य में पहली बार आई। "हिंदी साहित्य का आधुनिक काल विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संपर्क और समन्वय का परिणाम है। इस काल के साहित्य में विलक्षण विविधता पाई जाती है। न केवल काव्य के अंतर्गत एक यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास दिखाई देता वरन गद्य-साहित्य के प्रादुर्भाव एवं विभिन्न रूपों में विकास के कारण ही साहित्य हमारे ऐहिक और यथार्थ जीवन का पूर्णरूपेण वास्तविक प्रतिबिंब बनकर उतरा है।"[8]

सन् 1950 ई. में भारतेन्दु बाबू का जन्म और सन् 1957 ई. में ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ आज़ादी की लड़ाई की शुरुआत से देश में आधुनिकता की लहर का आभास मिलता है। पुनर्जागरण, नव-जागरण के साथ सामाजिक बदलाव सन् 1800 ई. से ही शुरू हो गया था, किंतु उस समय इस बदलाव की सूचना जन-जन तक पहुँचाने के लिए कोई माध्यम नहीं था, जबकि मुद्रण माध्यम की शुरुआत सन् 1821 ई. हुई। इस वर्ष `संवाद-कौमुदी' नामक साप्ताहिक बांग्ला-पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। राजाराम मोहन राय के साथ मिलकर अन्य विद्वानों ने 1830 ई. में बांग्ला अख़बार `बंगदूत' का प्रकाशन आरंभ किया। "सन् 1830 के अंत तक कलकत्ता से तीन बंगला दैनिक, एक साप्ताहिक, दो अर्द्ध-साप्ताहिक, सात साप्ताहिक और एक मासिक प्रकाशित हो रहे थे। हिंदी का पहला पत्र `उदन्त मार्तण्ड' सन् 1826 में प्रकाशित हुआ। बाद में कलकत्ता से

ही 'प्रजामित्र' (1834) का प्रकाशन होने लगा। हिंदी का दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण (1854ई.) श्याम सुंदर सेन के संपादकत्व में कलकत्ता से ही निकला।"[9] इसी समय के आसपास जन-संपर्क एवं पत्रकारिता के रूप में रेडियो का विकास 1921 ई. में हुआ; क्योंकि इसी समय से युरोप का वैज्ञानिक चिंतन का प्रभाव इस देश पर पड़ना शुरू हो गया था।

1.(क).1.(अ). काव्य का विकास

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत में गद्य के विकास पर अधिक ज़ोर रहा, जबकि काव्य का विकास बहुत गंभीरता से नहीं हो सका। इसके पीछे कारण यह था कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदी गद्य के विकास पर अधिक ज़ोर दिया गया और यह इसलिए कि यही तत्कालीन आवश्यकता थी। वास्तव में गद्य के विकास को शासन का सहयोग और सुविधाएँ मिली, विकास के उचित साधन भी मुहैया कराए गए, जबकि काव्य का विकास केवल साहित्यकारों की निजी रुचि पर आश्रित रहा। यही कारण था कि जब गद्य रचना में नए-नए प्रयोग हो रहे थे, उस समय भी कविता पुरानी चाल पर लिखी जा रही थी। इस कविता की भाषा सामान्यतः ब्रजी और कभी-कभी अवधी हुआ करती थी और छंदों में बँधी हुई रहती है। उसमें विषयगत नवीनता भी देखने को नहीं मिलती। दोहा, सवैया या कवित्तों में लिखे गए प्रेम, श्रृंगार अथवा प्रकृतिपरक रचनाएँ ही सामान्यतः होती थी।

आधुनिक काल में हिंदी कवियों के रूप में पहला प्रमुख नाम भारतेन्दु हरिश्चंद्र का लिया जाता है, जिन्होंने ब्रजभाषा की कविता को ही अपनाया। यहाँ एक बात महत्त्वपूर्ण यह है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र जब कविताएँ लिखते थे तो उसके लिए ब्रजभाषा और वैसे ही छंदों का प्रयोग करते थे। परंतु जब ये नाटकों या प्रहसनों की

रचना के दौरान उसके बीच-बीच में कविताएँ लिखते थे तब उनकी भाषा खड़ी बोली की होती थी। शायद वह इसलिए कि नाटक की खड़ी बोली भाषा के दबाव में उनकी कविता भी उसी रंग में ढल जाती थी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि खड़ी बोली भाषा की प्रकृति और ब्रजभाषा की प्रकृति में बहुत अंतराल है और खड़ी बोली की रचना के बीच में 'ब्रजभाषा' की कविता सहज न लगती। इसीलिए भारतेन्दु बाबू ने नाटकों में कविताओं की रचना के लिए 'खड़ी बोली' भाषा का प्रयोग किया।

आधुनिक हिंदी कविता का इतिहास लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग से प्रारंभ होता है। लगभग डेढ़ सौ वर्षों की अवधि में भी इसने विकास की अनेक करवटें बदली हैं, जिन्हें विभिन्न नामों से पुकारा गया है। यथा-

भारतेन्दु युग (1868-1900)
द्विवेदी युग (1900-1918)
छायावाद युग (1918-1936)
प्रगतिवाद युग (1936-1943)
नई कविता (1943-1950)
साठोत्तरी कविता (1960-1980)
समकालीन कविता (1980 से ....)

इन विभिन्न चरणों की काव्यगत प्रवृत्तियों में अंतर आता गया है और कभी-कभी परस्पर विरोधी रूप में भी इन प्रवृत्तियों का विकास संभव हुआ है।

1.(क).1.(आ). गद्य का विकास

हिंदी गद्य का पूर्ण विकास आधुनिक काल में हुआ है, तथापि यह भी कहा

जा सकता है कि गद्य का उद्भव 19 वीं शताब्दी के पूर्व हो चुका था। विद्यापति के रचनाओं में हिंदी गद्य का प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है। इसी प्रकार कुछ धार्मिक साहित्य की टीकाओं में हिंदी गद्य का रूप भी मिलता है। "साहित्यिक हिंदी-गद्य का क्रमबद्ध इतिहास उन्नीसवीं शती से प्राप्त होता है। इसके पहले भी राजस्थानी-गद्य ब्रजभाषा-गद्य तथा खड़ीबोली-गद्य की परंपराएँ क्षीण, मंद एवं शिथिल गति से चल रही थीं। हिंदी-गद्य के उपर्युक्त तीनों रूपों में राजस्थानी-गद्य प्रचीनतम माना गया है। इसका सूत्रपात दसवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग अनुमानतः संवत 1400 के आसपास से स्वीकार किया गया है। हठ योग, ब्रह्मज्ञान आदि विषयों से संबंधित कुछ गोरखपंथी गद्य-पुस्तकें प्राप्त हुई है। इनमें राजस्थानी और खड़ी बोली मिश्रित गद्य का प्रयोग किया गया है। ब्रजभाषा-गद्य का सूत्रपात कब हुआ था इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता ? खड़ी बोली का प्रयोग यों तो अमीर खुसरों, संत कवियों तथा दक्खिनी हिंदी के कवियों में स्फुट रूप में बराबर होता रहा है; किंतु उपलब्ध सामग्री के आधार पर खड़ी बोली गद्य की परंपरा पटियाला के राम प्रसाद निरंजनी कृत 'भाषा योगवासिष्ठ' (1741 ई0) से ही प्रारंभ मानी जा सकती है।"[11]

गद्य की व्यवस्थित शुरुआत आधुनिक काल में ही हुई। यद्यपि गद्य के नमूने इसके पूर्व भी मिलते हैं; लेकिन उसे हिंदी गद्य का विकास मानना ठीक नहीं होगा। वास्तव में विकास की एक निश्चित धारा होती है और इसके बिना विकास नहीं होता। आज खड़ी बोली का गद्य अपने विकास के चरम बिंदु को स्पर्श कर रहा है। निबंध, नाटक, उपन्यास, कहानी एवं एकांकी नाटक आदि पूर्व प्रचालित गद्य-विधाओं के साथ आज संस्मरण, इंटरव्यू, रेडियो नाटक, रिपोर्ताज, डायरी, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, लघुकथा एवं परिचर्चा आदि अनेक विधाओं का प्रचलन तेज़ी से बढ़ रहा है। निःसंदेह,

यह सब गद्य के विकास के उत्कर्ष का प्रतिफलन है। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि आज की कविता भी गद्योन्मुखी होती जा रही है, जिसके कारण आज के युग की विशेष प्रकार की मानसिकता में भावों की अपेक्षा वैचारिकता का ज़ोर अधिक है और इस वैचारिकता को वाणी देने के लिए कविता की अपेक्षा गद्य उपयुक्त ठहरता है। हिंदी खड़ी बोली गद्य के विकास के पीछे एक और भी कारण काम कर रहा है और वह है - खड़ी बोली गद्य पर आया गुरुतर ऐतिहासिक दायित्व तथा संपर्क भाषा के रूप में इसका विकास। "तमिल के महान कवि सुब्रह्मण्य भारती ने अपने एक लेख में इसी भाषा को देश की आम बोलचाल की भाषा (कॉमन लेंग्वेज) कहकर दक्षिण वासियों को हिंदी सीखने का परामर्श दिया था। 'हिंदी पेज' स्तंभ लिखते हुए तमिल महाकवि सुब्रह्मण्य भारती ने तमिल भाषा में इसी आशय की एक टिप्पणी की थी।

यहाँ यह ऐतिहासिक तथ्य भी ध्यान आकर्षित करता है कि स्वयं अँग्रेज़ों ने कलकत्ता में जब फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की तो उन्होंने भी देश की संपर्क-भाषा हिंदी को महत्त्व देते हुए हिंदी गद्य लिखने के लिए मुंशी सदासुख लाल, सदल मिश्र और लल्लू लाल को तैनात किया और उन्हें खड़ी बोली (हिंदी गद्य की) पुस्तकें तैयार करने का कार्य सौंपा।"[10]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिंदी गद्य के विकास में ब्रिटिश शासकों के साथ-साथ अहिंदी भाषी भारतीय नागरिकों, लेखकों एवं कवियों का सराहनीय योगदान रहा है। चारण कवि अपने जीवन-यापन के लिए वीर और प्रेम से संबंधित गद्य रचनाएँ की। रीतिकाल उपयोगी साहित्य भी गद्य में नहीं रचा गया। इस काल का साहित्य सामंतीय जीवन की रंगीनियों में पला-बढ़ा, परन्तु आधुनिक में गद्य का विकास ही नहीं; अपितु अपने चरम-सीमा पर पहुँचा।

इस काल में गद्य के विकास के साथ-साथ गद्य की कई विधाओं का जन्म हुआ। खड़ीबोली-गद्य के इस विकास-क्रम में हिंदी के अन्य गद्य-प्राचीन-रूपों को भी भुलाया नहीं जा सकता। "उन्नीसवीं शताब्दी में हिंदी प्रदेशीय जन-जीवन अँग्रेज़ों के संपर्क से नवीन दिशा की ओर मुड़ा। जीवन में बौद्धिकता के प्रवेश हुआ। सामाजिक चेतना गतिशील हुई। जनता जागी और एक ऐसी युग-चेतना का प्रवाह फूट पड़ा जिसके लिए गद्य की स्थिति अनिवार्य थी। युग की इस नवीन चेतना का भार लेकर खड़ी-बोली-गद्य विकसित होने लगा।"[12] हिन्दी-खड़ीबोली गद्य के विकास में अँग्रेज़ों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। यह बात भी भुलाया नहीं जा सकता है कि अँग्रेज़ी अपनी भाषा का प्रचार अधिकाधिक करना चाहते थे, फिर भी वे भारतीय जनता पर राज करने के लिए भारतीय भाषा को सीखना चाहते थे और इसका प्रचार भी करना चाहते थे। हिंदी गद्य के विकास में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिका सराहनीय रही। इसके अतिरिक्त लल्लू लाल, सदल मिश्र, गंगा प्रसाद शुक्ल, इन्द्रेश्वर, नरसिंह, ख्यालीराम ब्रह्म, सच्चिदानन्द, मधुसूदन तर्कालंकार, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दीनबंधु तथा शेष शास्त्री आदि पंडितों का योगदान भी कम सराहनीय नहीं है।

गद्य के विकास में समाचार-पत्रों के प्रकाशन का बहुत बड़ा योगदान रहा। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह ने भी हिंदी-गद्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतेन्दु के समकालीन लेखकों, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि ने हिंदी-गद्य के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देकर इसे परिमार्जित एवं परिष्कृत किया। भारतेन्दु पूर्व गद्य के विकास में कतिपय अन्य संस्थाओं और समाचार पत्रों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मिशनरियों ने अपने पवित्र धर्म ग्रंथ 'बाइबिल' को भारत के घर-घर में लोकप्रिय बनाने के लिए उसका खड़ी बोली गद्य में अनुवाद कर खड़ी बोली गद्य को विकसित करने में

योगदान किया।

1.(ख). पुनर्जागरण और आधुनिकता

पुनर्जागरण का आशय वस्तुतः वैज्ञानिक दृष्टि के विकास से लिया जाना चाहिए। सन् 1800 ई. के पश्चात भारतीय समाज में जो वैचारिक बदलाव दिखाई पड़ते हैं, वे नई सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों के सापेक्ष चिंतन के वैश्विक परिदृश्य से निर्मित हुए थे। अँग्रेज़ी हुकूमत के साथ चिंतन और विचार के नए स्रोतों ने भारतीय जीवन-दृष्टि ने बहुत बदलाव किया। इसके पूर्व सामाजिक व्यवस्था के मूल में धार्मिक और पारंपरिक क़ायदे-कानून ही अधिक प्रभावशाली थे। परंपराएँ रूढ़ियों में परिवर्तित हो अपनी ऊर्जा खो चुकी थी। अंधविश्वास और अज्ञानता से तमाम तरह की कुप्रथाएँ, कुरीतियाँ ही सामाजिक जीवन का दिशा-निर्देशन करती थी। अँग्रेज़ों के प्रभावशाली होने के साथ-साथ ज्ञान और चिंतन का नया आलोक भी भारत में फैला। लोगों को सोचने की नई दिशा मिली। सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्परीक्षा की बात लोगों के मन में आयी। वस्तुतः तर्क की कसौटी पर विचारों को कसने की शुरुआत यहीं से होती है। "भारत में गुप्तयुग को हम नवजागरण-युग कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त अभी एक नवजागरण का श्रीगणेश प्रायः अँग्रेज़ी सभ्यता के संपर्क के फलस्वरूप 1857 ई. के आंदोलन के बाद, अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर, प्रारंभ हुआ था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना-समाज, आर्यसमाज, काँग्रेस-आंदोलन, थियोसाफिकल सोसायटी जैसे विविध आंदोलन तथा विवेकानंद, रवीन्द्र, गांधी, राधाकृष्णन, अरविन्द, मानवेन्द्रनाथ राय जैसे विचारक इस नवजागरण-काल के मुख्य वरदान है।"[13]

हिंदी साहित्य के इतिहास में डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है, "ब्रिटिश राज्य की

स्थापना के कारण भारत की अर्थनीति, शिक्षा-पद्धति, यातायात के साधनों आदि में बुनियादी परिवर्तन हुए। इसके फलस्वरूप समाज का जो आधुनिकीकरण आरंभ हुआ, वह पुराने धार्मिक संस्कारों रीति-नियमों, संगठनों के मेल में नहीं था। नए यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच सामनजस्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इस सामनजस्य के साथ ही नए भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हुई। यह उल्लेखनीय है कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था वैयक्तित्व स्वतंत्रता पर आधारित होती है, जबकि पूर्व-पूंजीवादीसमाज में व्यक्ति-स्वातंत्र्य के लिए कोई स्थान नहीं होता- वहाँ व्यक्ति जन्म और लिंग के आधार पर एक विशेष सामाजिक व्यवस्था का अंग हो जाता है। नया पूँजीवादी समाज जाति, संयुक्त परिवार आदि के बंधनों से मुक्त होकर ही विकसित हो सकता है। कहना न होगा कि भारतीय पुनर्जागरण के मूल में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का विशेष महत्त्व है।"[14]

लगभग दो सौ साल की ग़ुलामी को झेलने के बाद भारतीयों ने इस ग़ुलामी की छटपटाहट को महसूस किया और देश को ग़ुलामी की ज़ंजीर से मुक्त कराने के लिए अपनी जड़ता को तोड़ा। परिणामस्वरूप जीवन-संघर्ष बढ़ा और भारतवासी संगठित होकर स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए अपना कमर क़सकर मैदान में उतर पड़े। इस पुनर्जागरण को लाने में साहित्यकारों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह समय ऐसा था जब कि हिन्दू और मुसलमान अपनी धार्मिक भेदभाव को मिटाकर कंधे से कंधा मिलाकर अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ मोर्चा लेने के लिए आगे बढ़े। इस प्रकार बदलती हुई परिस्थितियों में दोनों धर्मावलंबी एक-दूसरे के निकट आ गए। लगातार बढ़ता हुआ बुद्धिवाद ने धार्मिक पाखण्डों का भाँडा फोड़ कर यह साबित कर दिखाया कि दोनों में कोई अंतर नहीं है।

103840

UNIVERSITY LIBRARY
103840
Date..............

आधुनिकता वास्तव में तर्क की कसौटी पर कसा जाने वाला जीवन-दृष्टि है। पुनर्जागरण की परिणति आधुनिकता में होती है। चिंतन जब अपने सीमित और स्थानीय सीमा से मुक्त होकर वैश्विक अथवा मानवीय धरातल प्राप्त करता है तब उससे निर्मित होने वाली विचार-धारा को आधुनिकता के सीमांतों में समझा जा सकता है। हिंदी साहित्य में पुनर्जागरण के साथ-साथ आधुनिकता-बोध की प्रक्रिया शुरू होती है; यद्यपि पुनर्ज़ागरण के बहुत दिनों के बाद ही आधुनिकता-बोध की परख हो सकी। "हिंदी-साहित्य का पिछला दशक (1960-1970) आधुनिकता से विशेष रूप से प्रभावित है। इससे ध्वनित होता है कि यह `आधुनिक` से कुछ अलग है। इसलिए यह आवश्यक है कि इन दोनों शब्दों का अर्थभेद कर लिया जाए। `आधुनिक` शब्द की व्याख्या प्रारंभ में की जा चुकी है, अतः उसे दुहराना कोई अर्थ नहीं रखता। आधुनिक ज्ञानविज्ञान और टेक्नॉलॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया, गैर-रोमैंटिक और अमिथकीय साक्षात्कार `आधुनिकता` है। `आधुनिकता` का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि उसके ऐतिहासिक संदर्भ और प्रवृत्ति को समझ लिया जाए। आधुनिक काल अपने ज्ञानविज्ञान और प्रविधियों के कारण मध्यकाल से अलग हुआ। यह काल औद्योगीकरण, नगरीकरण और बौद्धिकता से संबद्ध है, जिससे नवीन आशाएँ उभरी और भविष्य का नया स्वप्न देखा जाने लगा। देश, धर्म, राष्ट्र, ईश्वर आदि की नई-नई व्याख्याएँ की जाने लगीं।"[15]

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का विचार है, "सामान्य प्रयोग में `आधुनिक` शब्द को बहुत दूर तक समय-सापेक्ष मान लिया जाता है। जैसे इतिहास का विभाजन प्राचीन मध्यकालीन तथा आधुनिक कालों में करते समय। परन्तु यह `आधुनिक` शब्द का सुविधा-निष्पन्न और लचीला अर्थ है, जिसके अनुसार हर अगला काल अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा आधुनिक या अधिक आधुनिक होता है, पर अपने विशिष्ट रूप में आधुनिक का अर्थ

इससे भिन्न है। आधुनिकता की पहली और अनिवार्य शर्त स्वचेतना है। ..... आधुनिक दृष्टि आधुनिकता के बिना अकल्प्य है और यह आधुनिकता रोमांटिक भावधारा को ठीक-ठीक पर्यवसित किये बिना विकसित नहीं हो सकती। अपने वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता का केन्द्रीय तत्व है। मूल्य के रूप में विभावित आधुनिकता इतिहास की प्रक्रिया का अद्यतम चरण है। सृष्टि के विकास की आधारभूत स्थितियों का यदि परीक्षण किया जाय तो इस संचारण का क्रम- परिवर्तन > विकास > आधुनिकता के रूप में दिखाई देगा। आरम्भिक स्थिति में पदार्थ एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित भर होते हैं। अगले चरण में यह निरपेक्ष परिवर्तन मूल्यपरक विकास के रूप में परिणत हो जाता है और अन्त में आधुनिकता की स्थिति में यह परिवर्तन अधिकाधिक सजग और इसीलिए संकल्प-साध्य बन जाता है, ऐसा परिवर्तन जो घटित होता नहीं, सजग रूप से घटित किया जाता है।"[16]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यापक अर्थों में अपने युग के प्रति पूर्ण रूप से चेतना-युक्त होना ही 'आधुनिकता' है। इस तरह हम उन तमाम कवियों अथवा व्यक्तियों को आधुनिक कह सकते हैं, जो वर्तमान को खुली आँख से देखता है। इस आधार पर कबीर, तुलसी, बिहारी, निराला पंत आदि कवियों को आधुनिक कहा जा सकता है।

भारत की 'आधुनिकता' को निर्मित एवं विकसित करने में अंग्रजों का बड़ा हाथ रहा है। धार्मिक भावनाओं का स्थान विज्ञान ने लिया। अंग्रेजों के माध्यम से उद्योग के क्षेत्र में मशीन का प्रवेश हुआ। अन्य क्षेत्रों में भी रेलगाड़ी, मोटर-कार, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन आदि के प्रयोगों ने एक विशेष क्रांति को जन्म दिया। राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय कांग्रेस के अनेक नेताओं ने, जिनमें तिलक एवं गांधी का नाम विशेष रूप से

उल्लेखनीय है, भारतीयों में स्वातंत्र्य चेतना को विकसित किया और अन्ततः लम्बे संघर्ष के बाद जवाहरलाल नेहरू ने विश्व-राजनीति में भारतीय राजनीति की एक विशेष तस्वीर बनाने का प्रयत्न किया और उनके सिद्धांतों को जन्म दिया, जिन्हें बाद में व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया गया। रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहन राय, रवीन्द्र, अरविन्द, गांधी एवं विनोबा आदि अनेक भारतीय मनीषियों ने भी भारत की आधुनिक चेतना के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दिया है। आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में वर्ग-विहीन समाज की कल्पना को इस चेतना की मुख्य उपलब्धि को स्वीकार किया जा सकता है। स्पष्ट है कि हिन्दी कवियों की आधुनिक चेतना इन्हीं सब कारणों से निर्मित एवं विकसित हुई जिसे हम 'आधुनिकता' की संज्ञा दे सकते हैं।

1.(ग). प्राचीन भारतीय वाचिक परंपरा

भारतीय दर्शन और चिंतन अनादि काल से श्रुतियों और स्मृतियों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ता रहा है। वस्तुतः विश्व के प्राचीनतम ज्ञान के संरक्षण में मनुष्य की 'मौखिक परंपरा एवं स्मृति' का योगदान रहा है। वेदों से लेकर उपनिषद्, आरण्यक, ब्राह्मण इत्यादि ज्ञान की विविध शाखाओं की शिक्षा एवं उपदेश का कार्य, स्मृति के माध्यम से ही संरक्षित होता रहा है। प्राचीन काल में गुरुकुल परंपरा ज्ञान के मौखिक आदान-प्रदान एवं स्मृति के माध्यम से उसका संरक्षण का प्रयास था। वस्तुतः लेखन एवं संरक्षण के अन्य दूसरे उपायों की न्यूनता के चलते उपदेश और स्मृति के माध्यम से ज्ञान के निरंतर विस्तार को देखा जा सकता है। प्राचीन काल में ऋषियों और महर्षियों की उपदेशात्मक अभिव्यक्तियाँ वस्तुतः 'ज्ञान का विस्तार' ही थीं। धर्म, अध्यात्म एवं दर्शन के अतिरिक्त शिल्प, कला एवं साहित्य-विषयक अवधारणाएँ उपदेश पद्धति से

गुरु द्वारा शिष्य को प्राप्त होती थी, जिसे वह स्मृति में संचित रखता था और विवेक तथा चेतना से उसमें अपनी ओर से कुछ नया जोड़ते हुए आगामी पीढ़ी को और अधिक उत्कृष्ट तथा नवीन रूप मे संचरित करता था। कालांतर में यह पद्धति जब निश्चित एवं नियमित व्यवहार में बँधी तब इसे 'व्यासकर्म' कहा गया। शाब्दिक रूप से 'व्यास' का आशय ऐसे विद्वान वक्ता से लगाया जाता है जो रामायण, महाभारत इत्यादि आर्ष ग्रंथों की कथाएं जन-सामान्य को सुनाता है। इससे सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण द्वयपायन, बदरायण महर्षि 'व्यास' का संकेत भी मिलता है, जिन्होंने विभिन्न वेदों का संकलन किया और महाभारत जैसे महान ग्रंथ की रचना की। अपने इस महान सांस्कृतिक अर्थ से विघटित होता हुआ यह 'व्यास' शब्द आज मौखिक आख्यान की परंपरा को हमारे सामने प्रकट करता है, जिसका विषय सामान्यतः आध्यात्मिक ही होता है।

प्रस्तुत प्रसंग में इस शब्द का विवेचन करने से जो बात स्पष्ट होती है वह यह कि ज्ञान और चिंतन के संरक्षण, संवर्द्धन एवं आगामी पीढ़ियों तक उसके हस्तांतरण की प्रक्रिया में 'व्यास कर्म' प्राचीन काल से ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। आज हम इसे मौखिक परंपरा के अर्थ में समझ सकते हैं। जिसमें ज्ञान एवं अनुभूति को मौखिक रूप से प्रसारित कर लोगों को शिक्षित और अधिक जागरूक बनाने की प्रक्रिया सन्निहित होती है। इस प्रकार अगर हम प्राचीन काल से देखे तो स्पष्ट होता है कि भारतीय सांस्कृतिक विकास में 'श्रुति एवं स्मृति' की विशेष भूमिका है और यह मौखिक परंपरा के ही दो अंग हैं। कालांतर में यह मौखिक परंपरा सत्संग में परिणत होती दिखाई देती है, जहाँ सामूहिक रूप से जन-सामान्य के लिए विद्वान वक्ता अपने अनुभव, ज्ञान और विवेक की सहायता से धर्म, अध्यात्म, दर्शन की शिक्षा देता है। सत्संग वस्तुतः ज्ञान के प्रसार एवं जन-जागृति का एक बहुत ही उत्कृष्ट और लाभप्रद माध्यम था। यह भी एक मौखिक माध्यम ही है।

भारतीय साहित्य एवं चिंतन में इसकी बहुत महत्ता बताई गई है और जन-सामान्य के लिए सत्संग अनिवार्य माना गया है। संस्कृत साहित्य में सत्संग की महिमा को विविध विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से निरूपित किया है। जहाँ तक हिंदी साहित्य का प्रश्न है, आदिकाल से लेकर भक्तिकाल तक सत्संग की सर्वाधिक उपयोगिता विद्वानों ने महसूस की। सत्संग की महिमा बताते हुए सरहपा गुरु-उपदेश को प्रत्येक शिष्य के लिए आवश्यक मानते हैं-

"गुरु-उवएसे अमिअ-रसु, धाव ण पीअउ जेहि।
वहु-सत्थस्य-मरुत्थलहिं, तिसिए मरिअउ तेहि।।"
"चित्ताचित्ति वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालू।
गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालू।।"[17]

जहाँ तक आध्यात्मिक साधना और चिंतन का प्रश्न है, बिना गुरु-ज्ञान के इसे संभव नहीं माना गया है। इसीलिए गोरखनाथ भी बिना गुरु-सत्संग की साधना को संभव नहीं मानते-

"इह विसमी गुरु गिरिहिं समुट्ठिय,
लोय-पवाह-सरिय कु पइट्ठिय।
जसु गुरुपाउ नत्थि सों निज्जई,
तसु पवाहिं पड्डियउ परिविखज्जइ।।"[18]

भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में निर्गुण धारा के संतों ने गुरु के सत्संग को इसीलिए बहुत महत्ता प्रदान की-

"कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन।।"[19]

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में संतों का परिचय देते हुए गोस्वामी

तुलसीदास लिखते हैं-

"नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहिं।।
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया।।7।।
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। पर हित निति सह बिपति बिसाला।।8।।"[20]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय चिंतन में ज्ञान के प्रवाह में मौखिक परंपरा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और ज्ञान के संरक्षण संवर्द्धन में इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कालांतर में यह मौखिक परंपरा लोकजीवन में अनुस्यूत दिखाई पड़ती है और इसकी अभिव्यक्ति लोक-जीवन के विविध पक्षों में देखी जा सकती है। लोक का चरित्र और चिंतन मौखिक परंपरा में ही निबद्ध होता है। लोकगीत हो अथवा लोकसंगीत श्रुति एवं स्मृति का ही अनुसरण लोकानुभूति के केंद्र में दिखता है। लोक-जीवन के नैतिक मूल्य, पारंपरिक उत्सव, त्योहार अथवा लोकविश्वासों के विविध रूप लोक की मौखिकी के प्रमाण माने जा सकते हैं। वस्तुतः सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया में पूर्वजों से प्रेरणा लेता हुआ 'लोक' जीवन और व्यवहार के विविध सोपानों को पार करता रहा है। लोक-जीवन के विविध उत्सव-त्योहार वास्तव में सांस्कृतिक विकास के ही विविध रूप हैं। इनकी अभिव्यक्ति आधुनिक समय में गाँव, पंचायत, चौपाल अथवा आदिवासी समाज में दरबारों के रूप में देखी जा सकती है। यह पंचायत, चौपाल या दरबार लोक-जीवन के नियंत्रक, निर्देशक एवं परिचालक होते हैं। इनके माध्यम से जहाँ एक ओर व्यवस्था से संबंधित नियंत्रण का कार्य होता है, वहीं ज्ञान-विज्ञान एवं नई-नई सूचनाओं का आदान-प्रदान भी संभव हो पाता है। वस्तुतः यहाँ भी पूरी प्रक्रिया 'मौखिक' ही होती है। 'लोक' की इसी मौखिक परंपरा को हम लोक-उत्सव के विविध रुपों में देख सकते हैं। जहाँ विविध नाट्य-रुप जैसे नौटंकी, भाण, लोकसंगीत, कजरी, चैता,

आल्ह-गीत, सावनी, बिरहा इत्यादि देखने को मिलते हैं।

स्पष्ट है कि भारतीय परंपरा में 'वाचिक' माध्यम का प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से होता रहा है और वैदिक ज्ञान के संचयन के साथ-साथ पौराणिक ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के संवर्द्धन एवं इनके संरक्षण में मौखिक परंपरा का अत्यंत योगदान रहा है। भारतीय आध्यात्मिक दर्शन में श्रुतियों एवं स्मृतियों का महत्त्व इसीलिए अत्यधिक माना गया है। संस्कृत साहित्य की विशाल सरणि से होती हुई यह वाचिक परंपरा भले नए-नए रुपों में प्रकट होती रही हो, इसकी महत्ता को कभी भी नकारा नहीं गया। हिंदी साहित्य के आदिकाल और भक्तिकाल में जीवन और समाज के आवश्यक अंग के रुप में इस वाचिक परंपरा को स्वीकार किया गया। आज भले ही हम आधुनिक जीवन पद्धति के साथ ज्ञान एवं विज्ञान के नए-नए क्षितिजों को स्पर्श कर रहे हों, लेकिन लोक-जीवन के संपूर्ण संरचना में वाचिक परंपरा के माध्यम से विकसित होने वाले सांस्कृतिक मूल्यों को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

1.(घ). आकाशवाणी का उद्भव और विकास

रेडियो के आविष्कार की कहानी 1815 ई. से शुरु होती है। इटली के एक इंजीनियर गुग्लियो मार्कोनी को रेडियो का आविष्कारक माना जाता है। "जब इटली के एक इंजीनियर *गुग्लियो मार्कोनी* ने रेडियो टेलीग्राफी के जरिए अपना पहला संदेश प्रसारित किया। यह संदेश 'मोर्स कोड' के रूप में था।"[21] गुग्लियो मार्कोनी द्वारा किए गए बेतार संचार के आविष्कार से इंग्लैंड, युरोप एवं अमेरिका को ब्रॉडकास्टिंग के क्षेत्र में काफ़ी संभावनाएँ नज़र आने लगी थीं और वैज्ञानिकों द्वारा किए जा रहे विविध प्रयासों के फलस्वरूप जो-जो सफलताएँ मिलती जा रही थीं उनके मद्देनज़र इन देशों ने अपनी ब्रॉडकास्टिंग क्षमता को केवल प्रयोग तक ही सीमित नहीं रखने का प्रयास किया, परंतु

जैसा कहते हैं कि किसी भी अच्छी खोज को जितना दबाने या छुपाने का प्रयास किया जाता है, वह उतनी ही तेज़ी से सबके सामने आती है, ऐसा ही रेडियो जैसे शक्तिशाली संचार माध्यम के साथ भी हुआ। यह जल्दी ही संसार में फैल गया। वस्तुतः रेडियो के आविष्कार का गुप्त न रह सकना ही उसकी विशिष्ट एवं प्रभावशाली शक्ति का परिचायक है। "रेडियो पर मनुष्य की आवाज़ पहली बार 1906 ई. में सुनाई दी। यह तब संभव हुआ जब अमेरिका के ली डी फॉरेस्ट ने प्रयोग के तौर पर एक प्रसारण करने में सफलता प्राप्त की। उसने एक परिष्कृत निर्वात नलिका का आविष्कार किया, जो आने वाले संकेतों को विस्तार देने के लिए थी। ली डी फॉरेस्ट ही था, जिसने सर्वप्रथम 1916 ई. में पहला रेडियो समाचार प्रसारित किया। वह समाचार वास्तव में संयुक्त राष्ट्र में राष्ट्रपति चुनाव के परिणाम की रिपोर्ट थी।"[22] इस कथन की पुष्टि करते हुए डॉ. आर. पी. यादव लिखते है, "इसके बाद रेडियो के विकास क्रम में प्रसारण की रोचक कहानी 23 फ़रवरी 1920 से शुरू होती है। इस दिन चेम्सफोर्ड कंपनी से मार्कोनी कंपनी ने अपना सर्वप्रथम रेडियो प्रसारण किया। उसी वर्ष संसार के दो पहले प्रसारण केंद्र पीट्सबर्ग (अमेरिका) और लंदन (इंग्लैंड) में स्थापित हुए।"[23] इसी तथ्य की जानकारी देते हुए जी. सी. अवस्थी ने लिखा है, "The first radio programme in England was broadcast successfully by Marconi Company on 23rd February, 1920, from a transmitter at Chemsford, and a regular service came into operation in November 1922, The British Broadcasting Company was setup in 1922 as a Commercial enterprise."[24]

बीसवीं सदी के पूर्व ही विज्ञानजगत में विद्युत-चुंबकीय तरंगों तथा रेडियो संचार का आविष्कार हो चुका था। इलेक्ट्रॉनिक से संबद्ध इन आविष्कारों का श्रेय मैक्सवेल, हर्त्ज तथा मारकोनी के अथक प्रयासों को दिया जाता है। प्रारंभ में विज्ञान के

इन आविष्कारों का इस्तेमाल तूफ़ानों में फँसे नाविक प्रायः अपनी सुरक्षा की पुकार अन्य लोगों तक पहुँचाने के लिए करते थे। मानव धीरे-धीरे इनके उपयोग की अन्य विधियाँ भी सोचने लगा। ध्वनितरंगों को विद्युत-चुंबकीय तरंगों में तथा विद्युत-तरंगों को पुनः ध्वनित्तरंगों में परिवर्तित करने के अनेक प्रयोग किए जाने लगे। इसी बीच, प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा और रेडियो के विकास में अपेक्षाकृत अधिक तेज़ी आई। ध्वनितरंगें युद्ध के दौरान, गुप्त सूचनाओं से लेकर प्रोपगंडा तक का माध्यम बनी।

1916 में विश्व का प्रथम रेडियो समाचार प्रसारित हुआ जो संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव के बारे में एक सूचना थी। समाचार पत्रों के छपने से कई घंटे पूर्व यह स्वर ध्वनि-तरंगों पर चढ़कर बिजली की तरह फैल गई। लोगों को पहली बार एहसास हुआ कि यह माध्यम तो मुद्रण-माध्यम से कई घण्टे पहले ख़बर दे सकता है। अतः इसके अधिक सक्षम एवं उपयोगी समाचार तंत्र के रूप में प्रयोग की बात सोची गयी।

रेडियो के विकासक्रम में संयुक्त राज्य अमेरिका में सन 1919 में एक निगम की स्थापना की गई- रेडियो कॉर्पोरेशन ऑफ़ अमेरिका। इस रेडियो निगम के लिए प्रसारण केंद्र की भी आवश्यकता महसूस की गई और शीघ्र ही ईस्ट पिट्सबर्ग में रेडियो ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन की स्थापना हुई। सन् 1920 के बाद तो अमेरिका और ब्रिटेन ही क्या विश्व के कई देशों में रेडियो ने धूम मचा दी। इसी अवधि में युरोप, अमेरिका तथा एशियाई देशों में इससे संबंधित बहुत से शोध-कार्य हुए। इन शोध-कार्यों के फलस्वरुप रेडियो ने अभूतपूर्व प्रगति की। कालान्तर में 'इलेक्ट्रॉन' तथा 'ट्रांजिस्टर' की खोज के कारण रेडियो-ट्रांजिस्टर तथा दूर-संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई।

इस प्रकार 21 दिसम्बर 1922 को विश्व के प्रथम रेडियो प्रसारण केंद्र ने जन्म लिया। इन्हीं दिनों ब्रिटेन में भी सन् 1922 ई. में एक प्रसारण कम्पनी की स्थापना की गई। उस समय इस कम्पनी का नाम 'ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी' था, बाद में इसे निगम का रूप दिया गया तथा पहली जनवरी 1927 को उसका नाम बदलकर 'ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन' रखा गया, जो विश्व में अपने संक्षिप्त नाम 'बी.बी.सी.' से प्रसिद्ध हुआ।

1.(घ).1. भारत में रेडियो की शुरुआत

भारत में प्रसारण अन्य देशों की तरह पहले-पहल शौकिया तौर पर प्रायोगिक रूप से शुरू हुआ। विदेशों में हुए रेडियो प्रसारण की चर्चा जब भारत में पहुँची तो इसे एक जादुई माध्यम और मनोरंजन का नया साधन माना गया। जिस तरह से मनोरंजन और अन्य गतिविधियों में रुचि रखने वाले लोग आज भी अपने प्रयासों से अपने क्लब स्थापित करते हैं, उसी प्रकार सन् 1923-24 में भी भारत में विभिन्न रेडियो क्लबों की स्थापना हुई और इनमें मनोरंजनात्मक दृष्टि से और शौकिया तौर पर रेडियो प्रसारण किए गए। "A mateur broadcasting started in India in November, 1923 with the setting up of a Radio Club in Calcutta. In June 1924, similar clubs in Bombay and Madras began transmitting programmes for some two and a half hours a day. Due to financial difficulties the Madras Club closed down in October 1927. But on 23rd July of that year, the first regular radio broadcasts commenced at Bombay and on 26 August a station started functioning in Calcutta."[25]

भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत एक ऐतिहासिक कदम था। और

इसका श्रेय ब्रिटिश शासन को मिला लेकिन इसकी शुरुआत की निश्चित तिथि का उल्लेख भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न तरह से प्राप्त होता है- "भारत में रेडियो प्रसारण का आरम्भ 1926 से शुरु हुआ। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास में भारत सरकार ने इसे प्रसारण केंद्र स्थापित करन् की अनुमति दे दी। बम्बई में रेडियो स्टेशन का उद्घाटन तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड इर्विन ने किया था।"[26] भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत का उल्लेख यू. एल. बरूआ ने इस प्रकार किया है, "The Radio Club of Bombay broadcast its first Programme in June 1923, and the Calcutta Radio Club in November 1923. The Transmitters were loaned by the Marconi Company. The Madras Radio Club, with a 40 watt transmitter began transmitting on Julr 31, 1934......... The Madras Corporation resumed the srevice on April1, 1930 and continued it till All India Radio took over in 1938."[27]

भारत में रेडियो का नियमित प्रसारण 23 जुलाई 1927 ई. से प्रारंभ हुआ। उसी दिन एक गैर-सरकारी भारतीय प्रसारण कंपनी 'इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' के मुम्बई रेडियो स्टेशन का उद्घाटन किया गया; परंतु भारत में प्रसारण का प्रवेश इससे भी काफी पहले हो चुका था। "भारत में नियमित प्रसारण सेवा के इस विचार को सर्वप्रथम 1926 में भारत सरकार और 'दि इन्डियन ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी' नामक एक प्राइवेट कम्पनी के बीच हुए समझौते के रूप में मूर्तरूप दिया गया। इस समझौते के अधीन एक बम्बई में तथा दूसरे कलकत्ता में केन्द्रों के निर्माण के लिए एक लाइसेंस दिया गया था। तद्नुसार, 23 जुलाई, 1927 को बम्बई केंद्र का उद्घाटन किया गया।"[28] इसका श्रेय मद्रास प्रेसीडेंसी रेडियो क्लब को जाता है, जिसने 31 जुलाई 1924 से ही हल्के-फुल्के मनोरंजन कार्यक्रमों का प्रसारण शुरु कर दिया था। मद्रास में लघु-तरंगों पर

10 किलोवाट तथा मध्यम तरंगों पर 1/4 किलोवाट के ट्रांसमीटर लगाए गए, परंतु यह रेडियो क्लब आर्थिक कठिनाइयों के कारण प्रसारण-कार्य जारी नहीं रख सका। इसी बीच प्रसारण में दिलचस्पी रखने वाले लोगों ने एक कंपनी स्थापित की। इस कंपनी का नाम था 'इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी लिमिटेड'। कंपनी ने भारत सरकार से लाइसेंस प्राप्त कर मुंबई तथा कोलकाता में डेढ़-डेढ़ किलोवाट क्षमता वाले मीडियम वेव ट्रांसमीटर लगाए। इन केन्द्रों से 55-55 किलोमीटर के दायरे में कार्यक्रम सुने जा सकते थे।

रेडियो ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी को अपनी आय के लिए मुख्यतः लाइसेंस से प्राप्त आय पर ही निर्भर रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति में कम्पनी लगातार घाटे में रहने लगी। कम्पनी ने भारत सरकार से अनुरोध किया कि वह गंभीर आर्थिक संकट में है, इससे मुक्त होने के लिए सरकारी सहायता की आवश्यकता है। भारत सरकार ने कम्पनी की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए उसे उद्योग और श्रम विभाग के प्रत्यक्ष नियंत्रण में कर दिया, उसका नाम भी बदल दिया, परंतु केवल नाम बदल देने से तथा उद्योग और श्रम विभाग को सौंप देने मात्र से कम्पनी की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ, कम्पनी का घाटा ज्यों का त्यों बना रहा। इसलिए सरकार ने 9 अक्टूबर, 1931 को इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस को बंद कर देने की घोषणा की। सरकार के इस निर्णय पर लोगों में बड़ी जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई, विशेषतया व्यापारी वर्ग के मन में बड़ा क्षोभ हुआ। अंततः सरकार को जनमत के सामने झुकना पड़ा और प्रसारण-सेवा कुछ वर्षों के लिए जारी रखने का निश्चय करना पड़ा। प्रसारण में लोगों की दिलचस्पी को देखते हुए सरकार ने कम्पनी के विकास के लिए 40 लाख रुपये दिए और श्री पी.जी. एडमन्ड्स को उसका 'कन्ट्रोलर ऑफ ब्रॉडकास्टिंग' नियुक्त किया गया। "By 1934 the Government of India had come to the conclusion that it could undertake extension and development plans for broadcasting. P.G.

Edmunds was appointed the first Controller of Broadcasting in 1934."[29]

सरकार ने 5 मई 1932 को यह निश्चित रूप से निर्णय किया कि 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' की सेवा जारी रखी जाए, परंतु यह सेवा किसी कंपनी के अधीन न रखकर सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखी जाए। यह फैसला करने के बाद सरकार के लिए अब यह आवश्यक हो गया कि कंपनी की आय में वृद्धि की जाए तथा सेवा में कुछ सुधार लाया जाए। आय में वृद्धि के लिए सरकार ने ग्रामोफोन-रिकार्डों तथा रेडियो-सेटों पर आयात शुल्क में 50 प्रतिशत की वृद्धि कर दी। इसके फलस्वरूप ब्रॉडकास्टिंग सर्विस की आमदनी में दुगुनी वृद्धि हो गई। "In August 1935, Lionel Fielden of the B.B.C. arrived in India to take up his none-too-easy assignment as Controller of Broadcasting."[30] रामबिहारी विश्वकर्मा ने अपनी पुस्तक 'आकाशवाणी' में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है, "अगस्त 1953 में, ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन के एक अधिकारी श्री लायनेल फील्डन भारत पहुँचे। उन्होंने 30 अगस्त 1935 को कंट्रोलर ऑफ ब्रॉडकास्टिंग का कार्यभार संभाला। .... भारत सरकार ने कंट्रोलर के लिए एक अलग कार्यालय खोला और प्रसारण के लिए 20 लाख रुपये की धनराशि दी।"[31]

8 जून 1936 को 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' का नाम बदलकर 'ऑल इंडिया रेडियो' रखा गया। इसी वर्ष 1 जनवरी को दिल्ली केंद्र द्वारा प्रसारण आरंभ किया गया। क्लबों के माध्यम से भारत में हुई रेडियो प्रसारण की शुरुआत के संदर्भ में H.G. Publication (Regd.) द्वारा Jupiter series के अंतर्गत प्रकाशित Mass communication Journalism (manual) में विवरण दिया गया है कि "The

Radio club of Bombay broadcast its first programme in June 1923. In November, 1923 the Calcutta Radio, And on 31st July, 1923 the Madras Radio Club started Broadcasting. But it soon closed down. However the Madras Corporation restarted the broadcasting service in 1930."[32]

आकाशवाणी के प्रसारण की शुरुआत के संबंध में डॉ. हरिमोहन का निष्कर्ष है कि, "भारत में रेडियो-प्रसारण का इतिहास 1926 से शुरू होता है। बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास में व्यक्तिगत रेडियो क्लब की स्थापना की गई थी। इन क्लबों के व्यवसाइयों ने एक प्रसारण कंपनी गठित कर ली थी और निजी प्रसारण सेवा शुरू कर दी। 1926 ई. में ही भारत सरकार ने इस प्रसारण कंपनी को देश में प्रसारण केंद्र स्थापित करने का लाइसेंस प्रदान किया। इस कंपनी की ओर से पहला प्रसारण 23 जुलाई 1927 को बंबई (मुम्बई) से हुआ। इसे प्रसारित किया इंडिया ब्रॉडकास्टिंग कंपनी ने। इसी के साथ बंबई रेडियो स्टेशन का उद्‌घाटन तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड इर्विन ने किया था।"[33] इस बात का स्पष्टीकरण जी. सी. अवस्थी भी करते हैं, "Delhi Station went on the air on New Year's Day 1936. The same year, on June 8, The Indian State Broadcasting Service was redesignated 'All India Radio'."[34]

डॉ. हरिमोहन के अनुसार कोलकाता केंद्र का उद्‌घाटन तत्कालीन गवर्नर स्टेनली जैक्सन ने किया। इस उद्‌घाटन के साथ 26 अगस्त 1927 ई. को बांगला में समाचार-बुलेटिन का प्रसारण हुआ था। इस प्रकार बांगला को प्रादेशिक भाषाओं में सबसे पहले रेडियो पर समाचार-बुलेटिन के रूप में प्रसारित होने का श्रेय प्राप्त है।

अप्रैल 1930 ई. में भारत सरकार उद्योग एवं श्रम मंत्रालय ने प्रसारण का अधिकार अपने हाथ में लेते हुए 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' नामक रेडियो प्रसारण को नियमित तरीके से प्रारंभ किया। इसके अधीन मुंबई और कोलकाता के केंद्र कार्य करने लगे। इस उपक्रम के पहले महानिदेशक लियोनेल फील्डन थे। यह सर्विस का नाम आगे चलकर 'ऑल इंडिया रेडियो' हो गया। यह नया नाम 8 जून 1936 को लॉर्ड लिन लिथगो द्वारा दिया गया। 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' का नाम बदलकर 'ऑल इंडिया रेडियो' रखे जाने से एक वर्ष पूर्व 1935 ई. में तत्कालीन देशी रियासत मैसूर में एक स्वतंत्र रेडियो स्टेशन की भी स्थापना हुई थी। तत्कालीन मैसूर रियासत ने इस स्टेशन को 'आकाशवाणी' नाम दिया था। "जब देश आजाद हुआ तो सन् 1957 में भारत सरकार ने इस संगठन का नाम आकाशवाणी घोषित किया, जो मैसूर रियासत के रेडियो स्टेशन का नाम था।"[35]

इस प्रकार विभिन्न स्रोतों के अध्ययन से पता चलता है कि भारत में प्रसारण अन्य देशों की तरह पहले-पहल शौक़िया तौर पर अथवा प्रायोगिक रूप में शुरू हुआ। विदेशों में हुए रेडियो प्रसारण की चर्चा जब भारत में पहुँची तो इसे एक जादुई माध्यम और मनोरंजन का साधन माना गया। जिस तरह से मनोरंजन और अन्य गतिविधियों में रुचि रखने वाले लोग आज भी अपने प्रयासों से अपने क्लब स्थापित करते हैं, उसी प्रकार सन् 1923-24 में भी विभिन्न रेडियो क्लबों की स्थापना हुई और इनमें मनोरंजनात्मक दृष्टि से शौक़िया तौर पर रेडियो प्रसारण किए गए। यह स्पष्ट है कि सन् 1923-24 ई. में स्थापित रेडियो क्लबों ने ही आगे चलकर ब्रॉडकास्टिंग कंपनी का रूप लिया और उन्हें प्रसारण लाइसेंस दिए जाने पर प्रसारण व्यवस्था एक संगठन के रूप में सामने आई और भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत हुई।

1.(घ).2. आकाशवाणी का वैशिष्ट्य

रेडियो एक ऐसा संचार माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न तरह की सूचनाएँ, शिक्षाप्रद जानकारियाँ और मनोरंजक प्रसारण प्राप्त करता है। अन्य संचार माध्यमों की तुलना में रेडियो का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रख्यात कथाकार एवं हंस के संपादक तथा 'प्रसार भारती बोर्ड' के पूर्व सदस्य राजेन्द्र यादव से डा. हरिसिंह पाल द्वारा आकाशवाणी के लिए ली गई एक भेंटवार्ता के अनुसार, "रेडियो की सबसे बड़ी विशेषता मैं यह मानता हूँ, जो किसी अन्य माध्यम से संभव नहीं है, वह है ध्वनि की चित्रात्मकता शब्दों के माध्यम से पूरे वातावरण और मूड को जीवंत प्रस्तुत कर देना। नाटक के माध्यम से, कमेंटरी के माध्यम से, रूपक, संगीत रूपक, नौटंकी, रासलीला के माध्यम से, कहानी, कविता वाचन से। यह एक प्रकार से शब्दचित्रों की पाठशाला है।"[36]

सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता, सांसद व पूर्व राजनायिक डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी द्वारा दिए गए एक साक्षात्कार के अनुसार, "मैंने अपने जीवन के पहले वर्षों में आकाशवाणी में काम भी किया और आकाशवाणी के श्रोता अनुसंधान की व्यवस्था से भी जुड़ने का मुझे मौका मिला। मैं समझता हूँ कि ये साधन ऐसे हैं जो संवाद स्थापित करते हैं, समाज को दिशा देते हैं, समाज के स्तर पर चिंतन और मंथन की प्रक्रिया को सजग और सक्रिय करते हैं तथा सार्थक बनाते हैं। लोकतंत्र लोकवाणी के बिना सार्थक नहीं हो सकता। लोकवाणी यानी आकाशवाणी माध्यम से ही मुखरित होती है और मेरा यह मानना है कि आकाशवाणी के पहले वर्ष बहुत सार्थक रहे हैं। फिर भी कई ऐसे शिखर हैं जहाँ अभी तक आकाशवाणी को पहुँचना है। भारत वर्ष में जो आकाशवाणी से तथा दुनिया के दूसरे प्रसारण-व्यवस्थाओं से जुड़ा है और वास्तव में उपभोक्ताओं की दृष्टि से सारा समाज इस हमारे लोकतंत्र का प्राणतत्व है, ऐसा मैं मानता हूँ।"[37] प्रख्यात मंचीय कवि सोम ठाकुर के

अनुसार, "यूँ कलाकारों को अखिल क्या भारतेतर देशों में भी ख्याति दिलाने में आकाशवाणी की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। आकाशवाणी द्वारा ही कवि रचनकारों की रचनाएँ, उनकी हस्ताक्षर रचना हो गई।"[38]

आकाशवाणी के महत्त्व को आरेखित करने के लिए उसका यह आदर्श रखा गया -"बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय।" इस आदर्श वाक्य में सभी को सुखी देखने की आदर्श-भावना का परिचय मिलता है। भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत के कुछ दिनों बाद 'आल इंडिया रेडियो' के नियंत्रक श्री लायनेल फील्डन ने कहा था, "निश्चय ही भारत जैसे विशाल देश में प्रसारण जितनी शिक्षा दे सकता है, एकता ला सकता है तथा निर्देश दे सकता है; उतना कोई माध्यम नहीं कर सकता।"[39] उनकी बात आज भी अक्षरश: उतनी ही सही लगती है, जितनी कि 1935 ई. के आसपास थी। "Many people think radio is the fastet-moving, most up-to-date, most portable medium available in any location from car to kitchen. They perceive newspaper news as logging behind radio and television."[40] भारत में उपलब्ध जन संचार के माध्यमों में रेड़ियो प्रसारण सबसे सशक्त माध्यम है। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ उनके प्रकार की विभिन्नताएँ विद्यमान है, जहाँ मुद्रण माध्यम की पहुँच अभी बहुत कम है, लोगों को सूचना देने और शिक्षित करने में आकाशवाणी की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इतने विशाल देश के सभी लोगों को मनोरंजन उपलब्ध कराना, जानकारी देना और शिक्षित करना विशाल कार्य है; जिसमें आकाशवाणी ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

आकाशवाणी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इससे प्रसारित कार्यक्रम को ग्रामीण व्यक्ति, स्त्रियाँ या बच्चे भी, कम पढ़ा-लिखा या निरक्षर व्यक्ति भी सुनकर

समझ सकता है, जबकि समाचार पत्रों को पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही समझ सकता है। इस प्रकार समाचारपत्रों का प्रसार जहाँ शहरों तथा कस्बों तक ही सीमित है, रेडियो प्रसारण की पहुँच आम-खास सभी तक है और इसीलिए यह संचार का सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम बन गया। "आकाशवाणी एक ऐसा माध्यम है जो ध्वनि पर आधारित है। ध्वनि का महत्त्व कम नहीं आंकना चाहिए, क्योंकि सूचना, शिक्षा या समाचार का माध्यम ध्वनि पर आधारित है। बिना बोले या भाषण दिए बिना हम अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति तक नहीं पहुँचा सकते। प्राचीन ग्रंथों में भी आकाशवाणी का उल्लेख आता है; यद्यपि दूरदर्शन दृश्य-माध्यम होने के कारण रेडियो की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है लेकिन रेडियो सस्ता एवं त्वरित माध्यम होने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी प्रभावशाली है। रेडियो की दूसरी विशेषता यह है कि रेडियो से प्रसारित कार्यक्रम को निरक्षर व्यक्ति भी सुनकर समझ सकता है, जबकि समाचार पत्रों को पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही समझ सकता है। समाचार पत्रों का प्रसार शहरों तथा कस्बों तक ही सीमित है। अतः पूरे देश में रेडियो प्रसारण की पहुँच सर्वाधिक है।"[41] भारत जैसे अल्प विकसित और विकासशील देश में भी रेडियो एक सहज और उपलब्ध माध्यम है। इसके अतिरिक्त यह उन लोगों के लिए भी कारगर माध्यम है, जो पढ़ नहीं सकते, देख नहीं सकते। विशेषतः "ग्रामीण जनता के लिए रेडियो ही एकमात्र जन-संवाद का माध्यम है जो उन्हें सूचना, शिक्षा तथा मनोरंजन प्रदान करता है। रेडियो की लोकप्रियता ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत अधिक है। शहरों में विविध भारती अत्यंत लोकप्रिय कार्यक्रम है। ग्रामीण जनता से संपर्क हेतु रेडियो से अच्छा दूसरा माध्यम नहीं है।"[42]

रेडियो श्रव्य माध्यम है, पर इसकी विशेषता यह है कि यह ध्वनि-प्रभाव की सहायता से श्रोता के मस्तिष्क में दृश्य उत्पन्न करता है। श्रोता जो कुछ सुनता है, उसे अपनी कल्पना से वह अपने मस्तिष्क में दृश्यांकित करता जाता है। इस कारण

रेडियो का श्रोता पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उसमें वह समग्रत: लीन हो जाता है। यद्यपि आकाशवाणी का प्रसारण विशाल समूह या वर्ग के लिए किया जाता है परंतु प्रसारण के समय यह ध्यान रखा जाता है कि यह प्रसारण समूह के लिए नहीं; बल्कि व्यक्ति के लिए है। अतः प्रसारण में वह प्रभाव उत्पन्न करने की कोशिश रहती है, जिससे वह प्रत्येक व्यक्ति का अपना प्रतीत हो। इस प्रकार रेडियो प्रत्येक व्यक्ति से अलग-अलग बात करता प्रतीत होता है और उसका प्रभाव भी गहरा होता है।

1.घ.(2).(अ). लोक-सम्पृक्ति

लोक-सम्पृक्ति का आशय वस्तुत: किसी विधा की जन सुलभता एवं सामान्य व्यक्ति की समस्याओं से सीधा संवाद स्थापित करना माना जाता है। साथ ही लोक की रुचियाँ, स्वभाव एवं पर्व-त्योहारों से विषय के लगाव को भी उसकी जन-सम्पृक्ति के रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है। जब कोई विधा अपनी प्रकृति एवं प्रक्रिया में आम जनता की लोक-संवेदना की अभिव्यक्ति में सार्थक भूमिका निभाती है तो जन-सम्पृक्ति का उद्देश्य निश्चित ही पूरा होता है।

आकाशवाणी का आधार वास्तव में वह विशाल जन समुदाय है जिसके कारण इसकी सार्थकता पूरे विश्व में प्रमाणित हो चुकी है। इसलिए आकाशवाणी के संदर्भ में किसी भी चर्चा की शुरुआत उसकी जनसम्पृक्ति के विचार से ही हो सकती है। "शब्दकोशों में लोक शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगे, जिनमें से साधारणता: दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं। दूसरा अर्थ 'लोक' का होता है- जन सामान्य। इसी का हिन्दी रूप 'लोग' है। इसी अर्थ का वाचक लोक शब्द साहित्य का विशेषण है। किंतु इतने से लोक का वह अभिप्राय प्रकट नहीं हो पाता, जो साहित्य के विशेषण के

रूप में वह प्रदान करता है।"[43] डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद प्रसाद पाण्डेय का मत है, "लोक-चिन्तन वस्तुतः सांस्कृतिक पहचान की वह आधार भूमि होती है, जिसमें आम जीवन की सोच, परम्पराएँ, रीति-रिवाज एवं विश्वास समाहित होते हैं तथा ये सब मिलकर ही किसी देश या काल को संस्कारात्मक पहचान प्रदान करते हैं। किसी भी युग का चरित्र वास्तव में लोक के संस्कारों से ही परिभाषित होता है। लोक के जो संस्कार लम्बे समय से जन में विद्यमान होते हैं, वे ही कालांतर में परिष्कृत होकर संस्कृति में परिणत होते हैं।"[44]

शोध के दौरान विभिन्न केन्द्रों से मिली जानकारी के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसका सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष के लाभ से न होकर जनसमूह के कल्याण से होता है तथा व्यक्ति की अपेक्षा पूरे समाज के हित में कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों के निर्माण के पीछे निश्चित नैतिक तथा सामाजिक मूल्य होते हैं जो जनसमूह को सही दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। जीवन के विविध पक्षों, लगभग सभी पक्षों में आकाशवाणी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। घर-परिवार से लेकर विश्व के व्यापक परिदृश्य तक आकाशवाणी की अमिट छाप देखी जा सकती है। परिवार की छोटी-छोटी समस्याओं पर आधारित कार्यक्रमों का निर्माण इस बात की पुष्टि करती है कि उसका हर श्रोता उसके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। परिवार की पहली इकाई महिला से सम्बन्धित कार्यक्रम महिला जगत, नारी लोक, नारी जगत, गृह-लक्ष्मी आदि इसके उदाहरण हैं। इस तरह के कार्यक्रमों का निर्माण प्रायः हर केंद्र से किया जाता है, जिनमें महिलाएँ भी सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। महिलाओं की समस्याओं के समाधान का प्रयास भी इस कार्यक्रम के माध्यम से आकाशवाणी द्वारा किया जाता है। इसी तरह अन्य पारिवारिक विषयों जैसे, पकवान विधि, शिशु का पालन-पोषण, घर की सजावट, बीमारियों का घरेलू उपचार

आदि विषयों को भी ऐसे कार्यक्रमों में शामिल किया जाता रहा है। इस तरह के कार्यक्रमों को महिलाओं द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ तक की आकाशवाणी द्वारा किसी महिला कार्यक्रम अधिकारी को ही इस कार्यक्रम का प्रभारी बनाया जाता है। इस प्रकार के कार्यक्रमों के प्रसारण में भी महिलाओं की सुविधा को ध्यान में रखकर उसे अवकाश के दिन किया जाता है या दोपहर के समय। दोपहर का समय ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली महिलाओं के लिए उपयुक्त होता है जबकि अवकाश का दिन शहरी कामकाजी महिलाओं के लिए।

इससे स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी अपने उत्तरदायित्व का बड़ी गंभीरता से निर्वाह करने का प्रयास करती है। महिला कार्यक्रमों में महिलाओं की अभिरुचियों, आकांक्षाओं, उनकी समस्याओं पर आकाशवाणी विशेष ध्यान देती है। महिलाओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और लोकतांत्रिक चेतना जागृत करना ऐसे कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य होता है। अपने राष्ट्रीय दायित्वों को मद्देनज़र रखते हुए राष्ट्रीय जीवन में नारी की भूमिका और उसके योगदान एवं संघर्ष आदि विषयों को भी इस कार्यक्रम में प्रमुखता से समाहित किया जाता है। वास्तव में आकाशवाणी महिलाओं के बीच जागृति लाती है, उनमें शिक्षा का प्रचार-प्रसार करती है तथा स्वास्थ्य-संबंधी जागरूकता भी पैदा करती है। आपसी रिश्तों को मजबूत बनाने के लिए भी इस कार्यक्रम की उपयोगिता महत्त्वपूर्ण है।

वस्तुतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट करना अभीष्ट है कि आकाशवाणी की सार्थक भूमिका की शुरुआत परिवार की पहली इकाई से होती है और क्रमशः जीवन और समाज के विविध अंगों को अपनी अभिव्यक्ति का आधार वह बनाती है। वास्तव में यही आकाशवाणी की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है। "यह रेडियो की लोकप्रियता

का सबसे बड़ा प्रमाण है कि इस जन माध्यम की क्षमता के कारण दुनिया भर में रेडियो सेटों की संख्या 1950 से 1975 के बीच प्रति हज़ार के पीछे रेडियो सेटों की संख्या में 95 प्रतिशत की वृद्धि हुई। नए-नए देशों में रेडियो स्टेशनों की स्थापना हुई और उनका विस्तार हुआ। 1973 में 187 दिशों में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार केवल तीन देशों में कोई रेडियो स्टेशन नहीं था। माना जाता है कि विश्व के हर चौथे व्यक्ति को रेडियो-प्रसारण सुनने की सुविधा उपलब्ध है।"[45]

आकाशवाणी की भूमिका घर-परिवार से बाहर बाज़ार, दफ्तर, समाज, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक हर क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखती है। लोक-जीवन का कोई भी क्षेत्र इसकी पहुँच से अछूता नहीं रहा है। "आज रेडियो संचार का एक सशक्त माध्यम है। इसकी अपरिहार्यता और व्यापकता से हर कोई परिचित है। यह माध्यम लोगों को आपसी अनुभवों के जरिए परस्पर जोड़ता है और ऐसे विषय प्रदान करता है, जिनपर संवाद हो सके। एक जागरूक श्रोता का दिन रेडियो से शुरू होता है और रात भी रेडियो की आवाज के साथ बंद होती है। सीमित शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि रेडियो जन-जीवन का एक आवश्यक कारक बन चुका है। चाहे हम घर में हों, बाहर हों, कहीं जा रहें हों या कोई काम कर रहें हों, रेडियो एक साथी का काम करता है। केवल पढ़े-लिखे ही नहीं, निरक्षर व्यक्ति भी इस जन-माध्यम से आत्मीयता रखते हैं।"[46] आकाशवाणी की पहुँच सामान्य श्रोता के अतिरिक्त निरक्षर व्यक्तियों तक भी होती है। जहाँ पढ़ने-लिखने, बिजली इत्यादि की सुविधा नहीं है, वहाँ भी विकास के कार्यों में रेडियो अपनी भूमिका का निर्वाह कर सका है। "आकाश, अन्तरिक्ष से उपग्रह की आँखें पृथ्वी के एक बड़े भाग को एक साथ देखती हैं। धरती का कोई कोना उपग्रह की आँखों से ओझल नहीं है। वह सब जगह देखता है और सबको देख सकता है यानी उसने विश्व के दायरे को कम कर दिया। मीडिया की सत्ता के आगे विश्व का स्वरूप छोटा हो गया।

रेडियो आज के मीडिया की एक सशक्त कड़ी है। यह सबसे सहज और सुलभ माध्यम है। यह एक है और बहुरूपों में अपने आपको प्रकट करता है - वह खेत में है, खलिहान में है, खेल के मैदान में है तो आपके बाथरूम में है, बेडरूम में है और ड्राइंगरूम की तो शोभा बढ़ा ही रहा है- 'एको अहं बहुस्यामि।' मैं एक हूँ पर अपने आप को बहुरूपों में एक साथ प्रकट करता हूँ या कर सकता हूँ। इन्ही कारणों से रेडियो ने हमें यानी मानव को आकर्षित भी किया और प्रभावित भी किया।"[47] वास्तव में जनजीवन को इस माध्यम ने जितना प्रभावित किया, उतना कोई अन्य माध्यम नहीं कर सका। "प्रिंट मीडिया की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वह निरक्षरों की विशाल जनसंख्या के लिए अनुपयोगी है, जबकि तीसरी दुनिया के देशों में अब लगभग 90 करोड़ लोग निरक्षर हैं। प्रिंट मीडिया की दूसरी सीमा यह है कि समाचार-पत्र तक समाचार पहुँचने, समाचार-पत्र मुद्रित होने और हॉकर द्वारा पाठकों तक पहुँचाने के बीच काफी लम्बा समय (कम से कम छह-सात घण्टे) लग जाते हैं। दैनिक अखबार का हर अंक 24 घण्टे बाद ही प्रकाशित होता है। इसलिए प्रिंट मीडिया समाचारों को उतनी तीव्र गति से नहीं पहुँचा सकता, जितनी तीव्र गति से रेडियो पहुँचाता है।"[48]

जहाँ तक टेलीविज़न का प्रश्न है, संचार का अत्यन्त सशक्त माध्यम होने के बावजूद उसकी निश्चित सीमा है। वास्तव में इसके लिए अन्य कामों को छोड़कर एक स्थान पर बैठने की आवश्यकता होती है। श्रव्य-दृश्य माध्यम होने के कारण उसमें आकर्षण भी अधिक होता है; परंतु इसके परिणाम स्वरूप आज का व्यक्ति अन्य सामाजिक संदर्भों से कटा है। अतः व्यक्ति आवश्यक कामों की भी अवहेलना करता है। इसे अतिरिक्त टेलीविजन को ज्ञान एवं मनोरंजन का पर्याय मान लेने के कारण व्यक्तियों का अध्ययन एवं चिंतन-मनन की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विदेशों की अपसंस्कृतियों की सीधी पहुँच घर-परिवार में बच्चों तक होने के कारण पाश्चात्य समाज का एक बहुत

नकारात्मक एवं विकृत चेहरा ही सामने आ पाता है जो लोगों के, विशेषतः बच्चों के संतुलित मानसिक विकास के लिए उपयुक्त नहीं होता। जवरीमल्ल पारख ने टेलीविजन के सापेक्ष रेडियो की उपादेयता को आरेखित करते हुए ठीक ही कहा है- "रेडियो निरक्षरों के लिए भी एक वरदान है, जिसके द्वारा वे सिर्फ सुनकर अधिक से अधिक सूचना, ज्ञान और मनोरंजन हासिल कर सकते हैं। रेडियो और ट्रांजिस्टर की कीमत भी बहुत अधिक नहीं होती। इस कारण वह सामान्य जनता के लिए भी कमोबेश सुलभ है। यही कारण है कि टी.वी. के व्यापक प्रसार के बावजूद तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो का अपना महत्त्व आज भी कायम है।"[49] आकाशवाणी में इस तरह की समस्याएँ नहीं आती और अन्य कामों को करते हुए भी आकाशवाणी के माध्यम ज्ञान-विज्ञान अथवा मनोरंजन को प्राप्त किया जा सकता है। "टी.वी. आने के बाद इसकी उपयोगिता के बारे में लोग आशंकित दिखाई पड़ते हैं पर शायद अस्थायी फेज है। लोग पुनः रेडियो की ओर आकर्षित होने लगे हैं क्योंकि यह एक ऐसी विधा है जो आपको बन्धन-मुक्त रखती है- आप संगीत का आनन्द ले और अपना काम भी करें।"[50]

इसके अतिरिक्त टेलीविजन और आकाशवाणी के कार्यक्रमों में जो एक बड़ा मौलिक फर्क है वह यह कि टेलीविजन हमारी मौलिक सर्जना-शक्ति को समाप्त करके सोचने, अनुभव करने एवं कल्पना की पूर्व-निर्धारित जमीन ही हमें प्रदान करता है; जबकि आकाशवाणी के यहाँ इसकी पूरी छूट है। श्रोता ध्वनि के माध्यम से अर्थ को ग्रहण कर कल्पना एवं चिन्तन के विविध सरणियों से होता हुआ अनुभव के नये-नये स्तरों की प्राप्ति करता है। वास्तव में इससे उसकी मौलिक सर्जनात्मक शक्ति को विकसित होने का पूरा अवसर मिलता है। वह कल्पना के लिए विशाल आकाश प्रदान करता है जहाँ कोई बंधन नहीं, रोक अथवा सीमा नहीं होती। आकाशवाणी का यह अवदान सूक्ष्म अवश्य है परन्तु किसी भी राष्ट्र की प्रतिभा के मौलिक विकास के प्रति उसकी भूमिका को नजर

अंदाज नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में Paul Chautler ने अपनी पुस्तक 'Basic Radio Journalism' में लिखा है, "Radio is probably at its best when it is `live` or reacting to an event happening `now`. .... Radio works best with news stories which require a quick reaction. .... Radio is the best medium to stimulate the imagination. By doing what radio does best- getting on the air from a scene quickly and describing the event so the listener can visualize what is happening- you are using the most powerful tools you possess: immediacy and imagiry. .... Radio is a very personal medium. The broadcaster is usually speaking directly to the listener. ....Radio also allows the full emotions of the human voice to be heard, from laughter through anger and pain to compassion."[51]

1.घ.(2).(आ) सूचना

प्राचीन काल से ही सूचना देने के लिए माध्यमों का प्रयोग होता आया है। पहले राजा 'मुनादी' इत्यादि के माध्यम से, ढोल या अन्य वाद्यों के साथ जनसरोकार से संबंधित सूचनाओं को लोगों तक पहुँचाता था। बाद में सूचना के प्रसार का एक बहुत बड़ा माध्यम गाँव का चौपाल या मेला-बाज़ार जैसे सार्वजनिक स्थल बने, जो वास्तव में सूचना के प्रसार का काम करते थे। इस समय तक संचार साधनों का यांत्रिक विकास नहीं हुआ था और मानवीय प्रयासों से ही सूचना का प्रसार किया जाता था, परंतु आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि के प्रसार के फलस्वरूप यांत्रिक विकास ने सूचना-जगत में आमूलचूल परिवर्तन किया। अब व्यक्ति के स्थूल प्रयासों की जगह यांत्रिक साधनों का प्रयोग अत्यंत सुलभ और आसानी से होने लगा। पहले यह छापाख़ानों के माध्यम से

लिखित रूप में सामने आया, परंतु तरंगों की खोज के पश्चात सूचना को भी जैसे पंख लग गए और रेडियो, टेलीविज़न इत्यादि की सहायता से सूचना क्रांति ने विश्व की स्थिर अवधारणा के सापेक्ष प्रगति एवं विकास के विशाल क्षेत्रों को खोल दिया। सूचना-क्रांति की प्रारंभिक शुरुआत रेडियो के आविष्कार के साथ मानी जा सकती है। भारत में "समाचार सेवा अत्यंत प्राचीन सेवा है। आकाशवाणी से सर्वप्रथम 23 जुलाई 1927 को बंबई से समाचार प्रसारण प्रारंभ हुआ। आकाशवाणी में अगस्त 1937 में 'समाचार सेवा' का गठन हुआ था तथा प्रारंभ में 27 बुलेटिन प्रारंभ किए गए।"[52]

वास्तव में रेडियो के लिए ख़बरों का महत्त्व प्रभाव की दृष्टि से सबसे अधिक है। जिन क्षेत्रों में अख़बार नहीं पहुँच पाते, वहाँ के लोगों के लिए तो रेडियो की सूचना, रेडियो द्वारा दिया गया समाचार देववाणी जैसा ही होता है। दैवी विपत्तियों के समय लोग आशा लगाए रेडियो सुनते हैं। इसे इस रूप में भी देख सकते हैं कि "अब 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के मौलिक अधिकार का विस्तार हो गया है और वह 'सूचना स्वतंत्रता' तक पहुँचा है।"[53] सूचना प्राप्त करना अब हमारे अधिकारों में शामिल है। पहले लोग सूचना देते थे, आज सूचना प्राप्त करना अधिकार बन गया है। "मानव अधिकारों का घोषणा-पत्र कहता हैं, हर व्यक्ति को अपने विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है।"[54]

रेडियो द्वारा बाढ़ या तूफ़ान के बारे में चेतावनियाँ प्रसारित की जाती हैं। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में किसानों के लाभ के लिए अनेक प्रसारण किए जाते हैं। ग्रमीण बैंकों से किसानों और खेतिहर मज़दूरों को मिलने वाले ऋण और अन्य सुविधाओं के बारे में सूचनाएँ उपलब्ध कराई जाती है। आकाशवाणी के समाचार बुलेटिनों में विभिन्न क्षेत्रों में हुए विकास और प्रगति के बारे में सूचना प्रदान की जाती है। आकाशवाणी अनेक प्रकार

के अंधविश्वासों और कुरीतियों को दूर करने में भी काफ़ी सहायक सिद्ध हुई है। लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचे, यह ध्यान में रखते हुए उनके अंधविश्वासों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। "यह सच है कि एक समाचार अपने विकास के साथ अपनी संहिताएँ रचता-बदलता चलता है। रेडियो ने अपने विकास के दौरान कुछ क़ायदे बनाए हैं। किंतु जैसा कि हम जानते हैं, वे हमेशा ही विवाद के विषय रहे और दूरदर्शन के आने के बाद वे अपर्याप्त भी हो गए। इसलिए सरकार ने समाचारों और सामयिक कार्यक्रमों के संबंध में नई निर्देशिका बनाई।"[55]

प्रसार के अन्य माध्यमों में रेडियो का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि रेडियो की पहुँच दूरदराज के गाँवों तक है। जहाँ अखबार अथवा टी.वी. सेटों की पहुँच नहीं है; वहाँ भी रेडियो की पहुँच है। अतः हम कह सकते हैं कि सूचना देने का कार्य रेडियो का लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। "इन माध्यमों से दिन में जहाँ अनेक बार समाचारों का प्रसारण होता है, वहाँ आपात स्थितियों में, दुर्घटना, बाढ़ आदि में इनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।"[56] इसके अतिरिक्त इनके द्वारा प्रसारित किए जाने वाले कृषि कार्यक्रम, बच्चों के लिए कार्यक्रम, विविध विषयों पर वार्ताएँ, संगोष्ठियाँ, चर्चाएँ आदि संदेशों का उपयोग प्रसारण के लिए किया जाता है। सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, प्रेरणा और जनमत निर्माण के आवश्यक तत्वों के अनुपात-भेद के साथ यह सहज-साध्य हो जाता है। राष्ट्रीय व राज्यव्यापी अभियानों, जैसे- परिवार नियोजन, वनमहोत्सव, साक्षरता प्रसार आदि में इनका विशेष महत्त्व देखा गया है। "किसी भी संचार माध्यम के तीन उद्देश्य होते हैं- सूचना देना, शिक्षित करना तथा मनोरंजन करना। सूचना प्राप्त करने की स्वाभाविक आकांक्षा हमारे मन में रहती है। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रतिक्षण, प्रतिपल अपने प्रियजनों के बारे में जानना चाहते हैं। उनकी सुख-सुविधा के बारे में जानने की इच्छा रखते हैं। किसी आत्मीय जन के बारे में जानकर हमें प्रसन्नता होती है और बहुत दिनों

तक अगर उनके संबंध में कोई समाचार हमें नहीं मिलता तो हम उद्विग्न और उदास हो जाते हैं। इसका आशय यह हुआ कि समाचार हमें एक-दूसरे के निकट लाता है- हमें एक दूसरे से मानसिक स्तर पर जोड़ता है। ....सूचना माध्यमों के विकास ने पूरी धरती को अपने बहुपाश में बाँध लिया है और सूचनाएँ गति से धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक तैर रही है। सूचनाओं के इस प्रचार-प्रसार से पूरा विश्व सिकुड़ कर एक गाँव बन गया है।"[57] इस प्रकार हम देखते हैं कि सूचना पहुँचाने के लिए, एक-दूसरे के बीच संबंध क़ायम रखने के लिए आकाशवाणी का अवदान महत्त्वपूर्ण है। समाज की इकाई को विश्व से जोड़ने का श्रेय आकाशवाणी का ही है।

1.(घ).2.(इ). मनोरंजन

मनोरंजन के लिए आकाशवाणी द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। हर आयु-वर्ग के श्रोताओं के लिए अलग-अलग तरह के कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। मनोरंजन के साथ-साथ श्रोताओं को शिक्षा तथा सूचना भी दी जाती है। "आकाशवाणी का एक प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन है। आज की भागदौड़ भरी ज़िंदगी में लोगों को थोड़ा मनोरंजन मिल जाय तो लोग बड़ी राहत महसूस करते हैं। लोगों की मनोरंजन की दिलचस्पी को देखते हुए 3 अक्टूबर सन् 1957 ई. से 'विविध भारती' सेवा शुरू की गई है।"[58] आनंद प्रकाश आर्टिस्ट ने अपने शोध में बताया है, "काम से हारा थका व्यक्ति या कभी-कभी काम करते हुए भी व्यक्ति मनोरंजन की अपेक्षा करता है। कभी-कभी वह स्वयं ही कुछ गाने-गुनगुनाने लगता है तो कभी संचार माध्यमों से उसे अपनी आवश्यकता की पूर्ति की अपेक्षा रहती है। व्यक्ति की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं को समझकर संचार के जन-माध्यम विभिन्न तरह की सामग्री का प्रसारण एवं प्रकाशन करते हैं।"[59]

संगीत मनोरंजन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। विश्व के सभी देशों में और समाज की सभी इकाई में संगीत किसी न किसी रूप में विद्यमान है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनोरंजन मनुष्य के गतिमय जीवन का आवश्यक अंग है और चूँकि संचार माध्यम मनुष्य की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का साधन है, अतः संगीत का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा अनिवार्य रूप से किया जाता है। यह अलग बात है कि प्रसारण केंद्रों ने विशिष्टता प्राप्त करने के लिए समाचारों, रूपात्मक कार्यक्रमों तथा संगीत प्रसारणों के लिए अलग-अलग चैनल खोल दिए हैं। आकाशवाणी की 'विविध-भारती सेवा' पूर्ण रूप से एक मनोरंजन चैनल है, जो श्रोताओं के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। "आज मनोरंजन के कई साधन और स्रोत समाज में उपलब्ध हो गए हैं, तथापि आकाशवाणी की भूमिका आज भी तर्कसंगत है और जनसमुदाय इस स्रोत पर निर्भर भी है। 23 जुलाई 1927 को देश के प्रथम प्रसारण केंद्र का बंबई में उद्घाटन करते हुए भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इर्विन ने कहा था, इसकी दूरी तथा व्यापक क्षेत्र इसके लिए पर्याप्त संभावना प्रदान करते हैं। भारत के दूरदराज के गाँवों में ऐसे तमाम लोग हैं, जिनको दिन भर के काम से थकने के बाद शाम काटना पहाड़ जैसा लगता है। ऐसे बहुत परिवार हैं, जिसके सदस्य सामाजिक परंपराओं के कारण अपने घर से बाहर मनोरंजन के लिए नहीं जा पाते, ऐसे लोगों के लिए प्रसारण एक वरदान सिद्ध होगा। मनोरंजन तथा शिक्षा दोनों ही के लिए इसकी संभावनाएँ हैं।"[60]

इस संदर्भ में यह बात ध्यातव्य है कि समय में परिवर्तन के साथ आकाशवाणी भी मनोरंजन के नए-नए रूपों की खोज कर रही है। जैसे आजकल 'फ़ोन-इन' कार्यक्रम का काफ़ी लोकप्रिय है। इस कार्यक्रम में श्रोता अपनी आवाज़ को स्वयं रेडियो द्वारा सुनकर काफ़ी प्रभावित होता है। इसी तरह मनोरंजन की दृष्टि से, 'आपके अनुरोध', 'पत्र-मिला', 'यादें' आदि कार्यक्रम काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त

प्रत्येक वर्ष 'अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन' का आयोजन आकाशवाणी द्वारा देश के विभिन्न भागों में किया जाता है, जहाँ श्रोता प्रत्यक्ष रूप से कलाकारों का गायन सुनते हैं।

1.(घ).2.(ई). वैचारिक संस्कार

किसी देश के वैचारिक संस्कार का आशय समाज की सोच से लगाई जा सकती है, जिससे उस समाज का चरित्र निर्मित होता है। वैचारिक संस्कार वस्तुतः लोक में चिंतन, मनन और उत्तरदायित्व की भावना से संबंधित होता है। विचारशील जनसमुदाय का आशय वह जनसमुदाय है जो अपने देश, समाज और परिस्थितियों के बारे में गंभीरतापूर्वक विचार-विनिमय कर सके, उचित-अनुचित का निर्धारण कर सके। वास्तव में वैचारिकता सोच की स्पष्ट दशा का निर्धारक होता है। अगर आकाशवाणी की भूमिका को इस दृष्टि से आरेखित करने की कोशिश करें तो स्पष्ट पता चलता है कि भारत में जन-जागृति के लिए रेडियो सबसे महत्त्वपूर्ण विधा रही है।

भारत में लोकतंत्र की सफलता के पीछे भी आकाशवाणी की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः सर्वसुलभता के कारण सुदूर ग्रामीण एवं अविकसित क्षेत्रों में भी आकाशवाणी समाचारों एवं अन्य सूचनापरक कार्यक्रमों की सहायता से लोगों तक नवीनतम सूचनाएँ पहुँचाती रही और चिंतन, विवेचन तथा बहस की पृष्ठभूमि तैयार करती रही। इस प्रकार आकाशवाणी भारत की जन-चेतना के विकास में सक्रिय रूप से सहयोगी रही है, उसने चिंतन-मनन की सामाजिक भूमिका बनाई; जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति अपने निजी एवं घरेलू समस्याओं से मुक्त होकर देश एवं समाज के व्यापक चिंताओं से अपने को जोड़ सका। इसके साथ-ही-साथ आकाशवाणी का योगदान भारत में शिक्षा के प्रसार में भी काफी रहा है।

हमारे संविधान में 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने की बात कही गई है; किंतु यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि सबके लिए बुनियादी शिक्षा उपलब्ध कराने में हम असफल रहे हैं। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश लोग पढ़ने और लिखने में असमर्थ हैं। हमारे देश में बढ़ती जनसंख्या अशिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। शिक्षा को हम आम लोग तक पहुँचाने में हम असफल रहें हैं। एक ओर शिक्षा प्राप्त करने योग्य बच्चों को काम पर लगा दिया जाता है वहीं दूसरी ओर उनके पास संसाधन की कमी होती है जिसके कारण वे शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। इस संदर्भ में यू. एल. बरुआ मानना है; " The educational role of radio- its ability to bridge the literacy barrier was seen early enough. While the accent of all AIR programmes- whether for the general listener, or specific groups like farmers, women, children, students, teachers or industrial workers, is on education in the widest sense, some programmes are planned with a specific educational objective."[61]

शिक्षा के प्रसार में रेडियो की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा को ज़रूरतमंदों तक पहुँचाने के लिए जो आधार तैयार किया गया है, उसमें आकाशवाणी की उपयोगिता को भी स्वीकार किया गया है। यह माध्यम मनोरंजन के साथ-साथ अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा के प्रसार में सहायक हो सकता है; जो अनौपचारिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में एक है। इस कार्य में आकाशवाणी की भूमिका अधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। आकाशवाणी एक सुलभ और सहज संचार माध्यम है। अतः इस संचार माध्यम के ज़रिये शिक्षा का प्रसार काफ़ी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आकाशवाणी के माध्यम से बच्चों के लिए शिक्षा का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। मुक्त शिक्षा प्रणाली ने तो इसे अपनी शिक्षा-पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बना लिया है। इसीलिए जी. सी. अवस्थी ने

आकाशवाणी के कार्यक्रमों में 'स्कूल ब्राडकास्ट' के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "Every station originating school broadcasts prepares very elaborate and sometimes well got up pamphlets and brochurs with one sent in advance to listening schools. Some of the stories, skits, plays, travel talks, quiz programmes and magazines programmes in which contribution of one who listens regularly to these programmes for some length of time, will be that they suffer from unimaginative handling."[62]

आकाशवाणी द्वारा अशिक्षित प्रौढ़ पुरुष और महिलाओं के लिए, मज़दूर तथा किसानों के लिए, अवकाश प्राप्त नागरिकों आदि के लिए अलग-अलग तरह के कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में आकाशवाणी का महत्त्वपूर्ण अवदान माना जा सकता है। वास्तव में शिक्षा का जो मूल उद्देश्य है वही उद्देश्य आकाशवाणी-शिक्षा का भी है। शिक्षा का उद्देश्य है- विकास और परिवर्तन, व्यक्तित्व का विकास और व्यवहार में परिवर्तन। इस विकास और परिवर्तन में आकाशवाणी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हर आयु-वर्ग के लोगों के लिए शैक्षिक-कार्यक्रमों का निर्माण आकाशवाणी द्वारा किया जाता है। विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से श्रोताओं को शिक्षित किया जाता है। आकाशवाणी द्वारा शिक्षा-प्रसार का माध्यम सिर्फ़ आवाज़ है। आवाज़ के माध्यम से निरक्षर लोगों को शिक्षित करना अपने आप में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है।

खान-पान, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य, बच्चों का पालन-पोषण आदि विषयों को महिला-शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत शामिल किया जाता है। प्रौढ़ श्रोताओं के लिए कृषि, बागवानी, पशुपालन आदि विषय होते हैं। इसी तरह बाल श्रोताओं और युवा

श्रोताओं को भी शिक्षित करने के उद्देश्य से विभिन्न कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। आकाशवाणी का हर कार्यक्रम किसी न किसी रूप में अपने श्रोताओं को शिक्षित करता है। चाहे वार्ता हो या परिचर्चा, नाटक हो या कहानी या फिर साक्षात्कार हो या बातचीत, हर कार्यक्रम शिक्षा-प्रसार में सहायक बनता है। "भारत में प्रसारण-कार्यक्रमों के प्रारंभिक काल से ही 'स्कूल ब्राडकास्ट' पर ज़ोर दिया जाता है। विभिन्न राज्यों के पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए इन कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है।"[63] शैक्षिक प्रसारण के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए यू. एल. बरुआ ने लिखा है, "The twin objectives of Educational broadcasts viz; enrichment of the student and direct teaching of the syllabus have always been seen as complementary. Broadcast for secondary schools are mainly syllabus oriented."[64] "AIR's broadcast for rural listeners, and its considerable output of farm broadcasting are good examples of what may be described as non-formal education can hardly be over-emphasised if one remembers the fact that 50 per cent of the world's illiterates come from India."[65]

1.(च). प्रमुख आकाशवाणी केंद्रों की स्थापना

भारत में आकाशवाणी केंद्रों की स्थापना को हम संचार-क्रांति की पहली शुरुआत कह सकते हैं, जहाँ भारत अपने बँधे-बँधाए पारंपरिक एवं सीमित चिंतन से मुक्त होकर एक सामूहिक अथवा केंद्रीय सूचना-माध्यम से अपने को जोड़ता है। यह एक नए भारत के उदय का, ज्ञानविज्ञान के आक्षितिजीय विस्तार से अपने को जोड़ने का समय था। संचार-साधनों के विकास को हम ज्ञान-विज्ञान के नए क्षेत्रों से जुड़ाव के रूप में भी

देख सकते हैं। इससे व्यक्ति अपनी वैयक्तिक सोच के साथ अन्य चिंतन एवं मनन का संयोग कर सकता है। जो प्रगति के नए-नए अवसर में सहायक बनता है। "स्वतंत्र भारत का पहला रेडियो केंद्र पहली नवंबर 1947 को जालंधर में खोला गया और एक दिसंबर 1947 को जम्मू रेडियो स्टेशन का उद्घाटन किया गया. पहली जुलाई 1948 को श्रीनगर में लघु-तरंगों वाला रेडियो स्टेशन चालू हुआ. 1948 में देश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रसारण की सुविधाओं का पर्याप्त विस्तार हुआ।"[66] इसी क्रम में बंबई केंद्र की स्थापना 23 जुलाई 1927 को हुई। इस केंद्र का उद्घाटन भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इर्विन ने किया। कलकत्ता केंद्र की स्थापना 26 अगस्त 1927 को की गई, जिसका उद्घाटन बंगाल के गवर्नर सर स्टैनले जेक्सन ने किया। 10 सितंबर 1935 को मैसूर रियासत में आकाशवाणी नामक प्रसारण केंद्र की स्थापना की गई। दिल्ली केंद्र से प्रसारण की शुरुआत 1 जनवरी 1936 से की गई। इसी वर्ष 'इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस' का नाम बदल कर 'ऑल इंडिया रेडियो' रखा गया। वर्ष 1938 में 2 अप्रैल को लखनऊ तथा 16 जून को मद्रास रेडियो स्टेशन का उद्घाटन किया गया।

इन प्रारंभिक केंद्रों के अतिरिक्त पटना (26 जनवरी, 1948), कटक (28 जनवरी, 1948), अमृतसर (16 फ़रवरी, 1948), शिलांग (01 जुलाई, 1948), नागपुर (16 जुलाई, 1948), विजयवाड़ा (01 दिसंबर, 1948), बड़ौदा (16 दिसंबर, 1948), इलाहाबाद (01 फ़रवरी, 1949), अहमदाबाद (04 मार्च, 1949), धारवाड़ (08 जनवरी, 1950), राष्ट्रीय प्रसारण (18 मई, 1988), पूर्वोत्तर सेवा (08 अप्रैल, 1989), वारंगल (02 मार्च, 1990), ब्रह्मपुर (01 अप्रैल, 1993), धुबरी (13 मार्च, 2000) आदि प्रमुख केंद्रों की स्थापना समय-समय पर होती रही है।

स्पष्ट है कि भारत में प्रमुख आकाशवाणी केंद्रों की स्थापना

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही हुई है; जबकि कोलकाता केंद्र की स्थापना 26 अगस्त 1927 को हुई तथा दिल्ली केंद्र से प्रसारण की शुरुआत 1 जनवरी 1936 से की गई। इसी प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व 2 अप्रैल 1938 को लखनऊ तथा इसी वर्ष 16 जून को मद्रास केंद्र (चेन्नई) की स्थापना की गई। "15 अगस्त 1947 को देश का विभाजन होने के बाद 3 रेडियो स्टेशन पाकिस्तान की सीमा में चले गए, इनके नाम हैं, लाहौर, पेशावर, और ढाका । ऑल इंडिया रेडियो के पास बंबई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, लखनऊ और तिरुचिरापल्ली के रेडियो स्टेशन ही भारत को मिले। इनके नाम हैं, मैसूर, बड़ौदा, हैदराबाद, औरंगाबाद और त्रिवेंद्रम।"[67]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत के सभी चार महानगरों में स्वतंत्रता पूर्व आकाशवाणी के केंद्रों की स्थापना हो चुकी थी। "The Delhi Station of the Indian State Broadcasting Service went on the air on January 1, 1936, from the Temporary Studio in 18 Alipur Road."[68] स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात 1948 में 26 जनवरी को पटना 28 जनवरी को कटक, 16 फ़रवरी को अमृतसर, 1 जुलाई को शिलांग, 16 जुलाई को नागपुर, 1 दिसंबर को विजयवाड़ा तथा 16 दिसंबर को बड़ौदा में आकाशवाणी-केंद्रों की स्थापना की गई। "पहली पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक क्षेत्रीय भाषाओं में क्षेत्रीय केंद्रों के प्रसारण होने लगे। अनेक प्रमुख नगरों में स्थित केंद्रों की प्रसारण क्षमता बढ़ाई गई। लखनऊ, बंबई, कलकत्ता, जालंधर तथा अहमदाबाद केंद्रों को 50 किलोवाट शक्ति की क्षमता वाला केंद्र बनाया गया। नए केंद्र जगह-जगह खोले गए जिनमें प्रमुख थे-

पूना - महाराष्ट्र -	2 अक्टूबर 1953
जम्मू - जम्मू -	13 अगस्त 1954
श्रीनगर - श्रीनगर -	16 दिसंबर 1954

राजकोट - सौराष्ट्र -	4 जनवरी 1954
जयपुर - राजस्थान -	9 अप्रैल, 1955
इन्दौर - मध्य भारत -	22 मई, 1955
शिमला - हिमाचल प्रदेश -	16 जून, 1955

.... इसके बाद दूसरी पंचवर्षीय योजनाकाल का आरंभ होता है। प्रसारण की दृष्टि से, इस योजना-अवधि में इस बात पर बल दिया गया कि प्रसारण की सुविधा देश के उन क्षेत्रों में पहुँचाई जाए, जहाँ प्रसारण ठीक से नहीं पहुँच पा रहा था। 31 अक्टूबर 1956 को भोपाल में एक केंद्र की शुरुआत की गई। कुछ अन्य केंद्रों की प्रसारण क्षमता में वृद्धि की गई। इसी के अंतर्गत 22 मार्च 1957 को बंबई में एक 100 किलोवाट का शॉर्ट वेव ट्रांसमीटर चालू किया गया। ....तृतीय पंचवर्षीय योजना में मध्यम तरंग सेवा के विस्तार का कार्यक्रम बनाया गया ताकि स्थानीय तौर पर लोगों को प्रसारण की अच्छी सेवा उपलब्ध हो। इसके अंतर्गत जो नए रेडियो केंद्र खोले गए उनका विवरण निम्न प्रकार है-

कुर्सियांग, पश्चिम बंगाल	2 जून, 1962
कोहिमा, नागालैण्ड,	4 जनवरी,1963
पोर्टब्लेयर, अंदमान-निकोबार,	2 जून,1963
इम्फाल, मणिपुर,	15 जून, 1964
रामपुर, उत्तर प्रदेश,	28 नवंबर, 1965
मथुरा , उत्तर प्रदेश,	23 नवंबर, 1966
ऐजल, मिज़ोरम,	23 नवंबर, 1966

.... पांडीचेरी में 1 नवंबर 1967 को एक आकाशवाणी केंद्र का

उद्घाटन किया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना का काल था 1969 से 1974- इस योजना काल में दो महत्त्वपूर्ण केंद्र खोले गए– 15 जनवरी 1972 को सिल्चर तथा सितंबर 1974 में तवांग। ....1975-76 की वार्षिक योजना अवधि में दरभंगा रेडियो केंद्र का उद्घाटन किया गया।"[69] वर्ष 1988-89 के दौरान दो प्रमुख प्रसारण प्रारंभ किए गए-18 मई, 1988 को दिल्ली में राष्ट्रीय प्रसारण सेवा तथा 8 अप्रैल, 1989 को मेघालय की राजधानी शिलांग में पूर्वोत्तर सेवा। "राष्ट्रीय प्रसारण सेवा का प्रारंभ 18 मई, 1988 को नागपुर स्थित एक मेगावॉट ट्रांसमीटर के उद्घाटन के साथ हुआ।"[70]

आकाशवाणी की विविध भारती सेवा श्रोताओं की जान है– यह सेवा एक प्रमुख प्रसारण है जिसकी स्थापना 3 अक्टूबर,1957 के की गई। "सर्वप्रथम 1957 में 3 अक्टूबर से विविध भारती का प्रसारण किया गया था लेकिन विज्ञापनों का प्रसारण नवंबर 1957 से ही किया जा सका।"[71]

1.(छ). आकाशवाणी से साहित्य के प्रसारण की शुरुआत

आकाशवाणी से साहित्य के प्रसारण की शुरुआत किस निश्चित तिथि को हुई इसका निर्धारण कठिन है, क्योंकि शोध के दौरान जो तथ्य सामने आए उससे पता चला है कि विभिन्न आकाशवाणी-केंद्रों ने अपनी सुविधानुसार अलग-अलग समय पर साहित्य की विविध विधाओं को अपने कार्यक्रमों में शामिल किया। इस क्रम में आकाशवाणी कुछ विधाओं के सृजन में भी प्रयत्नशील दिखाई देती है और साहित्य की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति के अवसरों की तलाश वहाँ दिखाई देती है। उदाहरण के लिए वार्ता (Talk) को अगर लें तो इसके विकास के मूल में रेडियो-विधा की माँग अधिक दिखाई देती है। आकाशवाणी से साहित्यिक प्रसारण की शुरुआत का प्राचीनतम संदर्भ

1928 का मिलता है। "रेडियो नाटकों का प्रसारण 1928 से ही प्रारंभ हो गया था। नई दिल्ली केंद्र से 3 जनवरी 1936 को मनतोष नामक बंगला नाटक का उर्दू रूपांतर प्रसारित हुआ।"[72] इसी तरह "1953 में हिंदी तथा अँग्रेज़ी वार्ताओं का अखिल भारतीय कार्यक्रम प्रारंभ किया गया।"[73] वार्ताओं के साथ परिचर्चा का प्रसारण भी इसी समय प्रारंभ हुआ जिसका उल्लेख रामबिहारी विश्वकर्मा ने अपनी पुस्तक 'आकाशवाणी' में इस प्रकार किया है, "आकाशवाणी के सभी केंद्रों से प्रतिवर्ष वार्ताएँ तथा परिचर्चाएँ प्रसारित की जाती हैं। वार्ताओं तथा परिचर्चाओं का अखिल भारतीय कार्यक्रम 29 अप्रैल 1953 से शुरू हुआ।"[74]

लिखित-साहित्य में जितनी विधाएँ पाई जाती हैं, उससे अधिक विधाओं का ग्रहण आकाशवाणी ने किया है। साहित्य की कुछ विधाओं का प्रसारण तो आकाशवाणी के प्रायः सभी केंद्र अपनी स्थापना के साथ-साथ करने लगे और कुछ केंद्रों ने साहित्य का प्रसारण बाद में आरंभ किया। रेडियो-साहित्य की विधा 'वार्ता' को यदि हम लिखित साहित्य की विधा मान लें तो कह सकते हैं कि 'वार्ता' का प्रसारण आकाशवाणी का प्रत्येक केंद्र प्रमुखता से करता है। "रूपाकत्मक दृष्टि से रेडियो- वार्ता इसके (रेडियो के) वार्तापरक प्रसारणों की श्रेणी में आती है। इसमें किसी भी विषय विशेष से संबंधित अर्थात उस विषय की गहन जानकारी रखने वाले व्यक्ति को बतौर वार्ताकार विषय से संबंधित किसी शीर्षक जो विषय के क्षेत्र को सीमाबद्ध करता है पर एक निश्चित अवधि के लिए अनुबंधित किया जाता है यह व्यक्ति उस विषय पर अपने सारगर्भित विचार आकाशवाणी स्टूडियो में ध्वन्यांकित करवाता है अथवा माइक के सामने बैठकर अपना आलेख पढ़ता है और 'वार्ता' हो जाती है।"[75]

प्रसार भारती द्वारा प्रसारित पुस्तक साक्षी 2003 के आधार पर हम यह

कह सकते हैं कि प्रथम 'अखिल भारतीय सर्वभाषा कवि सम्मेलन' का आयोजन आकाशवाणी ने 25 जनवरी, 1956 को किया था। नाटकों का अखिल भारतीय कार्यक्रम का प्रसारण 14 जुलाई, 1956 को, रूपकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम के प्रसारण की शुरुआत 15 अगस्त, 1956 से की गई, जबकि प्रथम आकाशवाणी साहित्य-समारोह का आयोजन 29 अप्रैल, 1956 को किया गया था।

वैसे आकाशवाणी द्वारा नाटकों के प्रसारण की शुरुआत साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में सर्वप्रथम लगती है। जहाँ तक वार्ता के प्रसारण की शुरुआत का प्रश्न है, इस संबंध में यह लगता है कि 'वार्ता' विधा रेडियो की देन है। वार्ता आकाशवाणी की एक ऐसी विधा है जिसका प्रयोग सामान्य और विशिष्ट श्रोतावर्ग के लिए प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में अक्सर किया जाता है। "आप रेडियो सुनते हैं, तो आपने यह वार्ता शब्द बार-बार सुना होगा। लेकिन साहित्य-दर्पण या रस-गंगाधर या साहित्यशास्त्र के किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इसकी चर्चा नहीं मिलेगी। बात यह है कि अभी 30-35 वर्ष पहले तक वार्ता नाम की रचना का अस्तित्व नहीं था। रेडियो के आविष्कार के बाद इसका जन्म हुआ है। इन पंक्तियों से इस लेखक ने दो-ढाई वर्ष पहले साहित्य के नए रूप वार्ता-क्रम में प्रसारित अपनी 'रेडियो-लेखक' शीर्षक वार्ता प्रारंभ की थी। सचमुच रेडियो के आविष्कार ने रेडियो-नाटक, रेडियो-रूपक आदि जिन नए साहित्य-रूपों को जन्म दिया है, उनमें रेडियो-वार्ता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। देशी या विदेशी, कोई भी रेडियो-स्टेशन नहीं है, जहाँ से रेडियो-वार्ताएँ नहीं प्रसारित की जातीं। इसका महत्त्व इस तथ्य से ही समझा जा सकता है कि 1956 में आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से प्रसारित वार्ताओं एवं परिसंवादों की संख्या 4946 थी।"[76] वार्ता की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए विश्वनाथ पाण्डेय ने लिखा है, "निबंध या लेख के बोझिलपन से बचकर चलने की प्रवृत्ति ही एक वार्ता को रोचकता प्रदान करती है। वार्ता का विषय कुछ भी हो

सकता है। रेडियो से प्रसारित वार्ताओं ने विशाल साहित्य की संरचना की है जो श्रोताओं को ज्ञान के साथ मनोरंजन प्रदान करती है।"[77]

आकाशवाणी की बात कहने या सुनने से यही लगता है यह मनोरंजन का साधन-मात्र है। मनोरंजन तथा सूचना के साथ-साथ आकाशवाणी ने साहित्यकारों की रचनाओं को जन-जन तक पहुँचा कर उन्हें स्थापित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। "रवीन्द्रनाथ टैगौर ने 1938 में कलकत्ता में शॉर्ट वेव ट्रांसमीटर के उद्‌घाटन के समय 'आकाशवाणी' नामक कविता पढ़ी।"[78] नाटकों के प्रसारण की शुरूआत के विषय में डॉ. महावीर सिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत में जन-संवाद' में लिखा है, "आकाशवाणी की प्रमुख विधाओं में रेडियो नाटकों तथा रूपकों का विशेष स्थान है। अखिल भारतीय कार्यक्रमों में रेडियो नाटकों का प्रसारण 1956 में प्रारंभ हुआ। ......1956 में ही 15 अगस्त के दिन रूपकों का अखिल भारतीय कार्यक्रम प्रारंभ किया गया।"[79]

1.(ज). आकाशवाणी की उपादेयता

आकाशवाणी के विविध पक्षों की विवेचना के क्रम में इसकी उपयोगिता के विषय में भी किंचित विचार किया जा चुका है। आकाशवाणी आज भले ही हमें कुछ कम प्रासंगिक या महत्त्वपूर्ण लगती हो, परंतु व्यापक अर्थों में इसने आज भी अपनी महत्ता क़ायम रखी है। "भारत में उपलब्ध जन-संचार के माध्यमों में रेडियो प्रसारण सबसे सशक्त माध्यम है। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ अनेक प्रकार की भिन्नताएँ विद्यमान है, जहाँ मुद्रण-माध्यम की पहुँच अभी बहुत कम है, लोगों को सूचना देने और शिक्षित करने में आकाशवाणी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस समय देश के लगभग 90 प्रतिशत लोगों तक रेडियो प्रसारण पहुँच रहा है। इतने विशाल देश में, जहाँ 68 करोड़ 40

लाख लोग निवास करते हैं, सभी को मनोरंजन उपलब्ध कराना, जानकारी देना और शिक्षित करना विशाल कार्य है। परंतु आकाशवाणी ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।"[80]

आँकड़ों के अनुसार भारत की कुल आबादी का लगभग 20 प्रतिशत लोग ही शहरों के निवासी हैं और संचार के दूसरे माध्यम, जैसे टेलीविजन इत्यादि की पहुँच अभी शहरों तक ही सीमित मानी जा सकती है; जबकि आकाशवाणी की पहुँच आज भारत के वृहत्तर समाज तक है। इसमें समाज का वह वर्ग भी आता है, जो अत्यंत पिछड़ा है और जहाँ सामान्य सुविधाओं का विकास नहीं हो पाया है। इस संदर्भ में पत्रकार सुधीश पचौरी का मानना है, "भारत में दूरदर्शन को सिर्फ़ विशेषाधिकार प्राप्त शहरी, मध्य वर्ग के लिए ही नहीं बनाया जाना चाहिए, जिसकी आबादी कुल बीस करोड़ है और जिसे लगभग संपन्न पश्चिमी जीवन स्तर की तमाम सुविधाएँ मिली हुई हैं। इसके विपरीत, दूरदर्शन को उनके प्रति समर्पित होना चाहिए जो अत्यंत निम्न-जीवन स्तर पर जीने को अभिशप्त हैं, जो इस विशाल देश के अलग-थलग भू-भागों में रहते हैं और जो तमाम तरह की ग़रीबी, दमन और लगभग असाध्य वंचना का जीवन जीते हैं।"[81] इसकी तुलना में रेडियो किस प्रकार अधिक कारगर है, इसका उल्लेख करते हुए विश्वनाथ पाण्डेय ने माना है, "भारत में रेडियो की सेवा आज लगभग 98 प्रतिशत जनसंख्या के पास पहुँच रही है और हम लगभग 91 प्रतिशत देश के भू-भाग को प्रसारणों के माध्यम से कवर कर रहे हैं।"[82]

आकाशवाणी की वास्तविक उपादेयता का आकलन करने के लिए हमें भारत के गाँवों में जाना चाहिए। वहाँ आज भी आकाशवाणी का प्रयोग सबसे प्रमुख रूप में किया जाता है। महात्मा गांधी का यह कथन हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि भारत

की 80 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है। भले ही यह कथन बहुत पहले का हो, फिर भी इससे तो इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय समाज का बहुसंख्यक आज भी तमाम आवश्यक सुविधाओं की पहुँच से बाहर है। ऐसे में आकाशवाणी के महत्त्व को गंभीरता से समझा जा सकता है। "आकाशवाणी जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है जिसका सूत्र वाक्य है- 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय'- आकाशवाणी का यह सूत्र वाक्य बौद्ध-ग्रंथ 'त्रिपिटक' से लिया गया है। हम छोटे-बड़े लगभग 237 केंद्रों के माध्यम से जन-जन के हित और सुख के लिए कार्य कर रहे हैं जो प्रजातंत्र का मूल आधार है।"[83]

जहाँ तक आकाशवाणी के प्रसार का प्रश्न है, आज लगभग पूरा भारतवर्ष इसके प्रसारण-क्षेत्र में आता है। "जागरण वार्षिकी 2003 में दिए गए आँकड़ों के मुताबिक़ वर्तमान में, आकाशवाणी केंद्रों की कुल संख्या 332 (मीडियम वेव-149, शॉर्ट वेव-55 और एफ. एम. 128) है। इसके अलावा चार नए केंद्र तकनीकी दृष्टि से चालू करने के लिए पूरी तरह तैयार हैं। 27 फ़रवरी 2002 को 'डायरेक्ट टु होम' डिजिटल सेटेलाइट ब्रॉडकास्टिंग (उपग्रह से सीधे घर तक प्रसारण पहुँचाने) की शुरुआत हुई। देश का 89.51 प्रतिशत क्षेत्रफल आकाशवाणी के नेटवर्क के दायरे में आता है।"[84]

स्पष्ट है कि आकाशवाणी किस प्रकार से अपने दायित्वों का निर्वाह करती है। "आज का रेडियो ख़ासकर भारत का रेडियो बदलते परिवेश और वर्तमान युग-बोध का एक प्रमुख साधन है।"[85] यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आकाशवाणी की उपयोगिता सिर्फ व्यक्ति या सामान्य आदमी के लिए ही नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए यू. एल. बरुआ ने लिखा है, "The aim of

the external services of All India Radio, is to convey India's point of view in matters of national and international importance, project our life and culture particularly progress in social and economic spheres, and promote international understanding."[86]

अगर हम विचार करें तो भारत में लोकतंत्र की सफलता के मूल में सूचना के जिस तंत्र ने सर्वाधिक भूमिका निभाई, वह आकाशवाणी ही थी। उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त इसकी उपादेयता को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विशेष रूप से देखा जा सकता है—

1.(ज).(1). सामाजिक

आकाशवाणी की पहुँच आज देश की 90 प्रतिशत से अधिक जनता तक हो चुकी है। इसके द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को अधिक से अधिक और दूर से दूर क्षेत्रों में सुने जाते हैं। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों की भाषा उस प्रसारण क्षेत्र की बोलचाल की भाषा होती है; जिसके कारण ऐसे कार्यक्रमों की उपयोगिता सिद्ध होती है। कार्यक्रमों में स्थानीय तथा क्षेत्रीय बोलियों का उपयोग इस बात का प्रमाण है कि समाज की हर इकाई का ध्यान आकाशवाणी के कार्यक्रम-निर्माता रखते हैं। आकाशवाणी की सामाजिक उपादेयता इस बात से और स्पष्ट होती है कि वह प्रत्येक आयु-वर्ग तथा क्षेत्र के लोगों के लिए अलग-अलग तरह के कार्यक्रमों का निर्माण करती रहती है। "रेडियो मनोरंजन के साथ-साथ लोगों को स्थिति की वास्तविकताओं और समस्याओं से अवगत कराता है।"[89] अतः आकाशवाणी विभिन्न वर्गों के लिए तरह-तरह से मार्गदर्शन करने हेतु प्रसारण कर अपनी उपयोगिता सिद्ध करती है। सस्ता और त्वरित माध्यम होने के कारण आकाशवाणी की उपयोगिता आज भी कम नहीं हुई है। "हमारे देश में जन-संचार के

जितने भी माध्यम (रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, समाचारपत्र, प्रकाशन, विज्ञापन, नाटक, कठपुलियाँ आदि) हैं, उनमें रेडियो प्रसारण की पहुँच सबसे अधिक है। आजकल टेलीविजन, यद्यपि अपने श्रव्य-दृश्य गुणों के कारण बड़ी तेज़ी से लोकप्रिय होता जा रहा है, परंतु अभी काफ़ी दिनों तक रेडियो की उपयोगिता बनी रहेगी।"[88]

1.(ज).(2). राजनैतिक

किसी भी देश का विकास वहाँ की राजनैतिक वातावरण पर निर्भर है। भारत एक विकासशील देश है। यहाँ की अधिकांश जनता ग़रीबी रेखा से नीचे स्तर का जीवन-यापन करती है। अधिकांश लोग अर्धशिक्षित ही नहीं, निरक्षर भी हैं। इस दशा में राजनीतिक सूचना आदि की प्रामाणिक एवं त्वरित जानकारी इन्हें नहीं मिल पाती है। अतः इस दशा में भारत जैसे देश की जनता के लिए आकाशवाणी की राजनीतिक उपयोगिता और बढ़ जाती है। "विकासशील राष्ट्रों में भारत पहला देश है, जिसने रेडियो प्रसारण शुरू किया। विकासशील देशों में प्रसारण पर बहुत ज़िम्मेदारियाँ होती है, उसे राष्ट्र के निर्माण और सामाजिक विकास की प्रक्रिया में हमेशा योगदान करना होता है। हमारे देश में लोकतंत्रीय व्यवस्था है, परंतु देश में अशिक्षित लोगों की संख्या बहुल अधिक है, इसलिए उन्हें ज़िम्मेदार नागरिक बनाने के लिए प्रसारण को यथासंभव प्रयास करना चाहिए।"[89]

कहा जा सकता है कि राजनीति में हो रहे परिवर्तन का आकाशवाणी दर्पण है और संवाहक भी। राजनीतिक परिदृश्य को सीधे जनता तक पहुँचाने का कार्य आकाशवाणी द्वारा किया जाता है। अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि इस माध्यम के बिना लोकतंत्र का जीवित रहना कठिन है। लोकतंत्र में आकाशवाणी की भूमिका और उपयोगिता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विश्व में हो रहे राजनैतिक हलचल का

प्रभाव आम जनता पर पड़ता है। रेडियो के कारण विश्व की दूरियाँ कम हो गई है। इसीलिए "विश्व के विकसित देशों ने इसकी शक्ति को स्वीकार किया है, पहचाना है और अपने देश और समाज के विकास के लिए इसका बखूबी उपयोग भी किया है।"[92] अतः राष्ट्र के हित के लिए आकाशवाणी का अवदान महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक एवं राजनीतिक विकास में आकाशवाणी का अवदान निःसंदेह अत्यंत उपयोगी रहा है। "भारत जब आज़ाद हुआ, तो प्रसारण की दृष्टि से हमारी सबसे बड़ी समस्या थी- सूचनाओं की, जो राष्ट्रहित में हैं, त्वरित गति से देश के कोने-कोने तक पहुँचाना और इसके माध्यम से राष्ट्रीय एकता स्थापित करना। भारत के दूरदराज के लोगों को भारत की मुख्य धारा से जोड़ना।"[91] आकाशवाणी इस दायित्व का बखूबी निर्वाह करती रही है तथा राष्ट्र की एकता और अखण्डता को अक्षुण रखने के लिए निरंतर कृतसंकल्प भी रही है। इसका उल्लेख यू. एल. बरुआ ने इस प्रकार किया है, "Akashvani believes that national integration is best achieved by recognising diversity of language, culture and taste in our plural society, rather than by ignoring them. This imposes on it an obligation to be considerate to all minorities."[92] इसके साथ-ही-साथ "आकाशवाणी का उद्देश्य राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन देना भी है। इसके लिए सरकार तथा जनता के बीच संपर्क का प्रमुख माध्यम आकाशवाणी है।"[93]

1.(ज).(3). सांस्कृतिक

भारत की सांस्कृतिक धरोहर को बरक़रार रखने में आकाशवाणी का महत्त्वपूर्ण अवदान है। इसने बड़ी निष्ठा से भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में अपना योगदान दिया है। भारतीय एकता एवं अखंडता का एक ज्वलंत उदाहरण है-

आकाशवाणी, जिसने विभिन्न धर्म, वर्ग और भाषा से जुड़े कलाकारों को एक साथ, एक मंच पर एकत्रित कर भारत की विविधता में एकता का परिचय दिया। उदाहरण के तौर पर विभिन्न शास्त्रीय कलाओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन में इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसमें शब्द-माध्यम के रूप में संगीत को आकाशवाणी ने गंभीरता से अपनाया है। वस्तुतः "भारत में संगीत की परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस गौरव-मयी परंपरा में शास्त्रीय संगीत का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है।"[94] परंतु किसी राजकीय संरक्षण के बिना इसमें निरंतर ह्रास होता जा रहा था। "आज़ादी के बाद रेडियो की भूमिका इस दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई। राजा-राजवाड़े धीरे-धीरे समाप्त हो गए। राजाओं और नवाबों का युग लद गया और शास्त्रीय संगीत को संरक्षण प्रदान करने का भार आकाशवाणी के कंधों पर आ गया। अपने उस दायित्व का निर्वाह आकाशवाणी बखूबी कर रही है और सुदूर उत्तर-पूरब के कुछ केंद्रों को छोड़कर आकाशवाणी के सभी केंद्र, किसी न किसी रूप में शास्त्रीय संगीत का प्रसारण कर रहें हैं।"[95] विभिन्न तरह के भाषायी एवं सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया को आरेखित करते हुए यू. एल. बरुआ ने स्पष्ट किया है, "AIR's cultural role is obvious in the manner it has popularised music. It has also popularised music of the north in the south and vice-versa. AIR has influenced the growth of regional language and literature, particularly prose and drama. It has popularised Hindi, Sanskrit and other classics. Radio has provided encouragement to folk and regional music and served linguistic and ethnic minorities by providing special programmes for them. While encouraging regional languages and culture, it has given a sense of national news service and other programmes radiated throughout the country."[96]

भारत जैसे विशाल और विविध संस्कृतियों से भरे देश के लिए आकाशवाणी जैसी संस्था की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। यहाँ के कलाकारों का अखिल भारतीय क्या विदेशों में भी ख्याति दिलाने में आकाशवाणी की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। यही कारण है कि आकाशवाणी से जुड़े कलाकारों को बहुत कम समय में अखिल भारतीय ख्याति मिल जाती है। "देश की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना और उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तथा एक काल से दूसरे काल तक ले जाने के अद्‌भुत दायित्व के निर्वाह का कार्य मीडिया का रहा है।"[97]

आकाशवाणी द्वारा साहित्यिक कार्यक्रम तो प्रसारित होते ही हैं, इसके अलावा कला-संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यक्रम भी प्रसारित होती हैं। साथ ही राष्ट्रीय कार्यक्रमों का भी प्रसारण होता है। इन कार्यक्रमों में देश और विदेश की अनेक महान हस्तियाँ शामिल हैं। "The recognition of folk music by All India Radio has given much needed sense of confidence in their cultural values and has also arrested the unfortunate process of drifting away of some of the tribal people from their folk-lore and way of life. While folk music constitutes an important element in AIR's programmes schedules, collection, preservation and populerisation of this great heritage of ours have not been systematic."[98]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी ने हमारी कला और संस्कृति का प्रचार-प्रसार देश-विदेश, गाँव, नगर में की है और इस कला और संस्कृति की अमूल्य निधि को धरोहर के रूप में सँजोकर रखा है।

****

संदर्भ

1 हिंदी काव्यधारा (भूमिका), संपादक, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 12-13
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृ. 3
3. हिंदी-साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 41
4. वही, पृ. 62
5. वही, पृ. 110
6. वही, पृ. 268
7. वही, पृ. 277
8. हिंदी-साहित्य का इतिहास, आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, पृ. 168
9. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 436
10. राज भाषा हिंदी, राज कुमार सैनी पृ. 57
11. हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी, पृ. 2
12. वही, पृ. 3
13. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 314
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 437- 438
15. वही-, पृ. 444-445
16. हिन्दी-साहित्य कोश- भाग-1, सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 86-87
17. हिन्दी काव्य-धारा, संपादक, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 8-10
18. वही, पृ. 358
19. रहीम रत्नावली, सं. स्व. पं. दयाशंकर याज्ञिक, बी.ए., पृ. 2
20. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार, हनुमानप्रसाद पोद्दार, पृ. 897
21. रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 71
22. वही, पृ. 71
23. भारत में प्रसारण व्यवस्था, डॉ. आर.पी. यादव, पृ. 14
24. Broadcasting in India, G. C. Awasthy, P 1
25. Broadcasting in India, P.C. Chatterjee, P 39
26. हिंदी पत्रकारिता की दिशाएँ, जोगेन्द्र सिंह, पृ. 62
27. This is All India Radio, U.L. Baruah, P. 1
28. AIR Manual, Volume I, Parts I & II, P. 2
29. Broadcasting in India, G.C. Awasthy, P. 7
30. वही, P. 8
31. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 4
32. Vashali Arora, Mass Communication Journalism (Manual), P. 18.
33. रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 71
34. Broadcasting in India, G.C. Awasthy, P. 9
35. हिंदी पत्रकारिता की दिशाएं, जोगेन्द्र सिंह, पृ. 62
36. साक्षी :2003, प्रकाशक, आकाशवाणी, दिल्ली, पृ.- 51

37. प्रसारण भवन के 60 वर्ष, रामअवतार बैरवा, पृ.- 57
38. प्रसारण भवन के 60 वर्ष, सोम ठाकुर, पृ. 61
39. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 21
40. Basic Radio Journalism, Paul Chaulter & Peter Stewart, P. 9
41. भारत में जनसंवाद, डॉ. महावीर सिंह, पृ. 83
42. वही, पृ.146
43. हिंदी साहित्य कोश (भाग एक), सं. डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 591
44. सम्मेलन पत्रिका, भाग-88, संख्या-4, नजीर अकबराबादी-लोकजीवन का चितेरा कवि, डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, पृ. 79
45. रेडियो और दूर-दर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 73
46. वही, पृ. 75
47. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प (आत्म-निवेदन), विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. XI
48. रेडियो और दूर-दर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 73
49. जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र, जवरीमल्ल पारख, पृ. 29
50. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प (आत्म-निवेदन), विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. XI
51. Basic Radio Journalism, Paul Chautler, Peter Stewart, P. 10
52. भारत में जनसंवाद, डॉ. महावीर सिंह, पृ. 81
53. दूरदर्शन, दशा और दिशा, सुधीश पचौरी, पृ. 72
54. वही, पृ. 72
55. वही, पृ. 74
56. राज्य-सरकार और जनसंपर्क, संपादक, प्रो. वाहीद अहमद काज़ी, पृ. 142
57. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 43
58. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 31
59. रेडियो-पत्रकारिता स्वरूपात्मक अध्ययन, आनन्द प्रकाश, पृ. 39
60. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 22
61 This is All India Radio, U.L. Baruah, P 106
62. Broadcasting in India, G.C. Awasthy, P 91
63. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 32
64. This is All India Radio: U.L. Baruah, P. 108
65. वही, P. 116
66. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 8
67. वही, पृ. 8
68. This is All India Radio, U.L.Baruah, P. 6
69. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 204
70. भारत में जनसंवाद, डॉ. महावीर सिंह, पृ. 78
71. वही, पृ. 78
72. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 44
73. भारत में जनसंवाद डॉ. महावीर सिंह, पृ. 72

74. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 42
75. रेडियो-पत्रकारिता स्वरूपात्मक अध्ययन, आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट, पृ. 53
76. रेडियो-वार्ता-शिल्प, सिद्धनाथ कुमार, पृ. 10
77. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 218
78. भारत में जनसंवाद, डॉ. महावीर सिंह, पृ. 71
79. वही, पृ. 78
80. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 21
81. दूरदर्शन: दशा और दिशा, सुधीश पचौरी, पृ. 17
82. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 207
83. वही, पृ. 207
84. रेडियो-पत्रकारिता स्वरूपात्मक अध्ययन, आनन्द प्रकाश आर्टिस्ट, पृ. 20
85. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 207
86. This is All India Radio, U.L.Baruah, P. 94
87. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 23
88. वही, पृ. 23
89. वही, पृ. 22
90. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 208
91. वही, पृ. 222
92. This is All India Radio, U.L.Baruah, P. 159
93. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 33
94. वही, पृ. 34
95. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 71
96. This is All India Radio, U.L.Baruah, P. 130
97. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 210
98. This is All India Radio, U.L.Baruah, P. 134

****

द्वितीय अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और आकाशवाणी : परस्पर संबद्धता

2.(क). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य से तात्पर्य है, स्वतंत्रता के पश्चात अर्थात सन 1947 के बाद का हिंदी साहित्य। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य स्वरूपगत वैविध्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। इसमें आधुनिक युग की प्रायः सभी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ समान रूप से विकसित हुई हैं। देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हुआ। इस युग के साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता की भावना में योगदान देते हुए भौगोलिक एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक तटस्थता, जातीय एकता, भाषागत एकता तथा राजनैतिक चेतना से संबंधित साहित्य का सृजन किया। इस युग के साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति के उस रूप पर बल दिया है जिसकी अभिव्यक्ति 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'विश्व बंधुत्व', तथा 'विश्व एकता' की भावना में मिलती है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ सामाजिक पुनर्जागरण एवं साहित्यिक नवजागरण के सापेक्ष भारतेन्दु युग से होता है और "आधुनिक काल के प्रथम उत्थान का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके मंडल के लेखकों को दिया जाता है। सन् 1857 के बाद हिंदी भाषा और साहित्य का स्वदेशीकरण आरंभ हो गया। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली गद्य में प्रतिष्ठित हुई और परंपरागत ब्रजभाषा पद्य में। गद्य और पद्य की अनेक विधाओं और शैलियों का सूत्रपात किया गया। भारतेन्दु मंडल के सभी लेखक आश्चर्यजनक रूप से एक ही सोच के थे। वे सभी युगीन समस्याओं से परिचित और चिंतित थे। सभी निबंधकार और पत्रकार थे। सबका प्रयास था कि हिंदी में नए ढंग के

नाटक लिखे जाएँ और उनको नए ढंग के मंच पर प्रस्तुत किया जाए। कुछ लेखकों ने नए ढंग के सामाजिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न भी किया। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग नई चेतना और उसकी अभिव्यक्ति का युग था, जिसमें पहली बार जन-समस्याओं को उठाकर जनभावना को स्वर दिया गया।"[1] स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी साहित्य के केंद्र में जहाँ एक ओर सामाजिक पुनर्जागृति का स्वर दिखाई देता है वहीं समाज की विभिन्न समस्याओं को साहित्य का विषय बना कर उसके माध्यम से जन-संस्कार करने का प्रयास भी निहित है, परंतु स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में चिंतन, विचार एवं अनुभूति के स्तर पर बहुत गहरे परिवर्तन देखे जा सकते हैं। साथ ही अपनी बनावट एवं बुनावट में भी हिंदी साहित्य ने अपने को आमूलचूल परिवर्तित किया। वस्तुतः इसमें एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात साहित्यिक मानसिकता में आने वाले परिवर्तन थे तो दूसरी ओर ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति की अनुभूति भी साफ़ देखी जा सकती है।

कविता के क्षेत्र में प्रयोगवादी विचार-धारा स्वतंत्रता के बाद नए रूपों में अभिव्यक्ति पाने लगी थी और आगे चलकर उसमें मोहभंग जैसी मानसिकता भी दिखाई पड़ने लगी। साथ ही 'लघु मानव' एवं 'महामानव' के रूप में साहित्य की चेतना में 'लोक' एवं 'जन' की विविध रूपों में गहरी पैठ भी हुई। इसी तरह गद्य की विविध विधाओं में भी देखे जा सकते हैं। कहानी, उपन्यास एवं गद्य की दूसरी विधाओं में एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासद परिस्थिति के सापेक्ष विघटित मानवीय मूल्य अभिव्यक्त हुए वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता के साथ-साथ मिली भारत और पाकिस्तान के बँटवारे का दुःखद एहसास भी साहित्य के विविध रूपों में देखा गया। साहित्य के राष्ट्रीय संदर्भ की अगर बात करें तो स्पष्ट होता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का बड़ा हिस्सा या तो भारत-पाकिस्तान के बँटवारे और उससे उत्पन्न सांप्रदायिक समस्याओं से प्रभावित है या आज़ादी से पूरी न हो

सकने वाली अपेक्षाओं के कारण उत्पन्न मोहभंग से।

2. (ख). अभिव्यक्ति की नवभूमिका की तलाश

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के आरेखन-क्रम में जो बात सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करती है, वह यह कि साहित्य के प्रवृत्तिगत विकास में परिवर्तन अत्यंत शीघ्रता से हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आज़ादी प्राप्त होने के पश्चात बदले हुए राजनीतिक परिस्थितियों ने सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को तेज़ी से बदला। यह बदलाव विविध स्तरों पर हो रहा था। सामाजिक और आर्थिक होने के साथ यह वैचारिक एवं मानसिक पहले था। शायद यही कारण है कि साहित्य के विविध रूपों में भी गंभीर अस्त-व्यस्तता दिखाई देती है। कविता का प्रयोगवादी स्वर बदलाव के साथ नई कविता की ओर उन्मुख दिखाई देता है; जहाँ विविध काव्य-आंदोलन, "युयुत्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, क्षुत्कार कविता, सकविता, उत्कविता, एब्सर्ड कविता, ठोस कविता, कोलॉज कविता, युवा कविता, विचार कविता आदि"[2] अभिव्यक्ति के नए-नए साधनों की तलाश करते दिखाई देते हैं। वैसे ही गद्य में भी एक गंभीर छटपटाहट दिखाई देती है। यह छटपटाहट न कह पाने की 'छटपटाहट' है, जिसे उस युग का रचनाकार किसी भी तरह से अभिव्यक्ति देने के लिए बेचैन है। वस्तुतः यह समय साहित्य की नई विधाओं या उपकरणों की खोज का दौर है, जिसमें एक ओर पुराने साधनों का पुनर्संस्कार है, वहीं नए-नए उपकरणों की तलाश भी। यह साहित्य का वह दौर है जिसमें कई नई विधाएँ विकसित हुई। यद्यपि इस विकास में वैयक्तिक अभिरुचि ज़्यादा दिखाई पड़ती है, फिर भी अभिव्यक्ति नव-भूमिका की तलाश तो वहाँ देखी ही जा सकती है। कालांतर में इसी प्रवृत्ति का विकास कुछ नए साहित्य-रूपों के विकास में भी दिखाई पड़ता है।

2. (ग). अभिव्यक्ति में आज़ादी की अनुभूति

आज़ादी के बाद हिंदी साहित्य के साथ-साथ अभिव्यक्ति के अन्य माध्यम अपनी अनुभूति और संवेदना में नए स्तरों की तलाश कर रहें हैं। वास्तव में इस तलाश में दृष्टि के स्वतंत्र विकास एवं स्वाभिमान के नए भाव का उदय महत्त्वपूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। स्वतंत्रता वास्तव में सिर्फ़ राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं थी, बल्कि वह मानव समुदाय की चेतना एवं उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी थी। साहित्य में जिस प्रकार का खुलापन आज़ादी के बाद दिखाई देता है, उतना पहले हिंदी साहित्य में कभी नहीं था। पूरे विश्व से आधुनिक जीवन, दृष्टि एवं चिंतन को ग्रहण करता हुआ, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के साथ-साथ दर्शन की सूक्ष्म सरणियों में जीवन के नए अर्थ संदर्भों की तलाश में वह सन्नद्ध दिखता है। इसके साथ ही संचार के लिखित माध्यम ने भी लोकतंत्रीय स्वतंत्रता को अभिव्यक्ति के सबसे मज़बूत शक्ति के रूप में देखा। अगर ध्यान से देखे तो आज़ादी के बाद साहित्य और संचार के अन्य माध्यमों का रुख़ पूरी तरह स्वातंत्रोन्मुख दिखाई देता है। स्वतंत्रता की इसी नवीन अनुभूति के कारण साहित्य में अनेक प्रवृत्तिगत बदलाव आए और साहित्य सामाजिक जागरण के नवीन सोपानों को पार करता हुआ अभिव्यक्ति के स्तर को प्राप्त किया।

'अभिव्यक्ति' अपनी कलात्मक अथवा सृजनात्मक संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया है। हिंदी शब्द सागर में 'अभिव्यक्ति' शब्द को तीन प्रकार से स्पष्ट किया गया है:- (1) प्रकाशन, स्पष्टीकरण, साक्षात्कार, ज़ाहिर होना, प्रकट होना (2) उस वस्तु का प्रकट होना जो पहले किसी कारण से अप्रत्यक्ष हो। (3) न्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य में आविर्भाव, जैसे बीज से अंकुर का निकलना। हिंदी में 'अनुभूति' शब्द का प्रयोग अँग्रेज़ी के 'कॉन्ससनेस' -Consciousness- (चेतना)

अथवा 'एक्सपेरिएंस'- Experience- (अनुभव) के अर्थ में भी होता है। मनोविज्ञान में 'अनुभूति' को Feeling अथवा Mental experience के रूप में स्वीकार किया गया है। मनोविज्ञान के अनुसार यह एक आंतरिक क्रिया है, जो बाह्य परिणाम उत्पन्न नहीं करती। हमारी इंद्रियाँ बाह्य जगत से जो ग्रहण करती हैं; वह हमारी अनुभूति बन जाती है। जब ये अनुभूतियाँ बुद्धि में तर्क-वितर्क अथवा द्वंद्व के फलस्वरूप एक सोच का रूप धारण कर लेती है तथा भाषा के माध्यम से बाहर आना चाहती हैं तो उसे अभिव्यक्ति की संज्ञा देते हैं, अर्थात बुद्धि से होकर गुज़रती हुई अनुभूति ही अभिव्यक्ति है। ज्ञानेंद्रियों से होकर हमारे भीतर पहुँचती हुई बाहरी दुनिया ही अनुभूति है। बिना अनुभूति के अभिव्यक्ति असंभव है। लेकिन अनुभूति के लिए अभिव्यक्ति कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। "साहित्य-क्षेत्र में कई प्रकार की अनुभूतियों का वर्णन हुआ है: (1) काव्यानुभूति (2) रसानुभूति (3) भावानुभूति (4) प्रत्यक्षानुभूति (5) समानुभूति (6) सहानुभूति (7) सौंदर्यानुभूति (8) रहस्यानुभूति (9) लौकिक अनुभूति (10) आध्यात्मिक अनुभूति ।"[3]

लौकिक अनुभूति का संबंध दृश्य जगत अथवा पदार्थ जगत से है, रूप-रंग-आकार वाले इस संसार से अथवा प्रत्यक्ष जगत से है। यह अनुभूति हमें सांसारिक बनाए रखती है। इसके चलते सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा जैसी स्थाई मनोवृत्तियाँ जन्म लेती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण प्रायः भौतिक अनुभूतियों से ही होता है। ये हमारे व्यक्तित्व को सीमित अथवा असीमित कर सकती हैं। मनुष्य का व्यवहार प्रायः इन भौतिक अनुभूतियों से ही संचालित एवं नियंत्रित होता है। ये क्षणिक भी होती हैं और दीर्घकालिक भी। आध्यात्मिक अनुभूतियों का संबंध हमारी बाह्य इंद्रियों से नहीं बल्कि आंतरिक चेतना शक्ति से है। अर्थात हृदय, मन अथवा आत्मा ही आध्यात्मिक अनुभूतियों का माध्यम है। इसमें आस्था और कल्पना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस अनुभूति का संबंध उस सत्ता से है, जो सच तो है, लेकिन अप्रत्यक्ष है। प्रायः आध्यात्मिक

अनुभूति को ईश्वरीय अथवा दैवी सत्ता से जोड़ दिया जाता है।

मानव जीवन में अनुभूति और अभिव्यक्ति का अंतर सदैव बना रहता है। सांसारिक मनुष्य अपनी अनुभूति को संपूर्ण अभिव्यक्ति न कर पाने के लिए अभिशप्त है। लाभ-लोभ की चिंता, महत्वाकांक्षा और उसका व्यक्तिगत स्वार्थ अपनी अनुभूतियों को शत-प्रतिशत व्यक्त करने से रोक देता है। ये अनुभूतियाँ चाहे व्यक्ति के बारे में हों, चाहे समाज, राजनीति अथवा संस्कृति के विषय में हों, हम उसे गढ़कर, काट-छाँटकर लगभग कृत्रिम तरीक़े से ही अभिव्यक्त करते हैं। अभिव्यक्ति अपने आप में एक मूल्य है; जो व्यक्ति से बहुत साहस की माँग करता है। यह साहस तभी आ सकता है, जब वह व्यक्ति अपने जीवन में ख़तरा उठाने का शौक़ रखता हो। ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा, जो अंधेरगर्दी को, शोषण के तंत्र को और ग़ुलामी के सघन जाल को भीतर ही भीतर न महसूस किया हो। इस तरह के लोग एक-दो नहीं बल्कि लाखों-करोड़ों की संख्या में हैं, लेकिन इन सबके ख़िलाफ़ बोलने का, लड़ने का, संवाद करने का साहस मुश्किल से एक-दो लोग ही कर पाते हैं। इसीलिए मुक्तिबोध अपनी क्लासिक कविता 'अँधेरे में' जब यह कहते हैं:

"अब अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब।"

तो यह दुर्लभ अभिव्यक्ति है। मठों और गढ़ों के इस देश में इन्हें समाप्त कर नए युग के सूत्रपात की पहल करना क्रांतिकारी कदम ही माना जाएगा; जो कि इस देश में सबसे बड़ी चुनौती का कार्य है। साहित्यकार अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच बहुत कम अंतर रखता है, जो इस अंतर को जितना ही पाटता है, वह उतना ही युग प्रवर्तक और महान साहित्यकार होता है। कबीर, मीरा, निराला, मुक्तिबोध और नागार्जुन

अपनी रचनाओं में 'अभिव्यक्ति का प्रतिमान' रचते हैं। इसीलिए इन्हें अपने युग का सच्चा प्रवक्ता सिद्ध किया गया है। सबकी अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति नहीं होती। मूल्यवान अभिव्यक्ति उन्हीं की मानी जाती है, जो सार्वजनिक हित के लिए हो; जिसमें सत्य की ताक़त हो और जो मनुष्यता के पक्ष में खड़ी होती हो। सच्ची अभिव्यक्ति के लिए सच्ची अनुभूति का होना अनिवार्य शर्त की तरह है। अनुभूति अपने आप में कोई स्वतंत्र घटना नहीं है। वह हमारे तर्क, ज्ञान और अनुभव से ही संभव होती है। ये ही अनुभूतियाँ आगे चलकर भाव का रूप धारण करती हैं। जो स्थाई और अस्थायी दोनों रूपों में दिखाई पड़ती हैं। इसे हम मुक्तिबोध की 'ज्ञान संवेदना' से भी जोड़ कर देख सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी 'ज्ञान' को भावना से अभिन्न माना है, जिसका अर्थ है- ज्ञान का विकास भावना के विकास के साथ-साथ होता है। इस प्रकार ज्ञान और संवेदना मुक्तिबोध और शुक्ल जी की दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक तत्व की तरह हैं।

'लोक सामान्य' के स्तर पर अभिव्यक्ति का रूप सरल, सहज, स्वाभाविक एवं प्राकृतिक होता है। उसमें अनगढ़पन होता है। वहाँ पर सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में जैसा और जो कुछ भी महसूस करता है, उसे बिना किसी लागलपेट के, बिना किसी काट-छाँट के सबके सामने व्यक्त करता रहता है। लेकिन हमारी सभ्यता उस अभिव्यक्ति को मूल्य मान नहीं मानती। उसे स्तरहीन कहते हुए एक सिरे से नकार देती है। लेकिन जैसे-जैसे अभिव्यक्ति बौद्धिक समाज में, सभ्य समाज में और विकसित समाज में जगह पाने लगती है; वैसे-वैसे उसका रूप बदलता चला जाता है। आगे बढ़े हुए मनुष्यों के बीच में वह जितनी ही ऊपर चढ़ती है, अनुभूतियों की सचाई से वह उतनी ही ऊपर चढ़ती है। साहित्यकार के यहाँ यह कलात्मक रूप धारण कर लेती है। यह कलात्मकता बनावटी भी हो सकती है और सच्ची भी। रचनाकार के व्यक्तित्व पर यह निर्भर है कि उसकी अभिव्यक्ति कलात्मक होने के बावजूद कितनी मार्मिक और ईमानदार है।

साहित्यकारों में अभिव्यक्ति के कई रूप देखे जा सकते हैं। एक वह रूप है जो सामान्य से नीचे दर्जे का होता है, दूसरा वह रूप है जो सिर्फ़ सामान्य दर्जे का होता है, तीसरा वह रूप है जो सामान्य से ऊपर विशेष दर्जे का होता है। यह विशेष दर्जे की अभिव्यक्ति ही साहित्यकार को बड़ा व्यक्तित्व प्रदान करती है। ऐसा बड़ा रचनाकार जो सार्वभौमिक चेतना का है, मानवतावादी है और लोक मंगल को लक्ष्य बनाकर चलता है, वही अपनी अनुभूतियों को सर्वोत्तम कलात्मक ढाँचे में ढालकर विशिष्ट अभिव्यक्ति दे पाता है। दार्शनिक और महापुरुष भी अपनी अनुभूतियों को अपने ज्ञान और अनुभव को इसी स्तर की अभिव्यक्ति देते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार यदि देखा जाए तो अनुभूति और अभिव्यक्ति व्यक्ति के लिए एक मूल्य, एक चुनौती, एक कसौटी की भाँति है। अभिव्यक्ति का क्षेत्र अनुभूति के क्षेत्र से बहुत सीमित है। यदि अनुभूति जलधारा है तो अभिव्यक्ति तरंग है।

2.(घ). सामाजिक जागरण के नव-सोपान

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के विकास में विविध प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ क्रियाशील थीं। साथ ही विश्व की कई घटनाओं ने इस पर गहरा प्रभाव डाला। युरोपीय नव लेखन के 'न्यू सिगनेचर्स' (1932) एवं 'न्यू कंट्री' (1933) जैसे संग्रहों से नई तरह की रचनाओं का जो सिलसिला वहाँ शुरू हुआ था, स्वतंत्रता के पश्चात अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर हिंदी साहित्य में भी विकसित होती है। दो-दो विश्वयुद्ध झेल चुकी दुनिया की आस्था बहुत कुछ विश्रृंखलित हुई थी और मानव को एक नए रूप में देखने की दृष्टि का विकास हुआ था। धार्मिक आस्थाएँ एवं आध्यात्मिक विश्वास के टूटने के साथ-साथ जीवन और परिवेश के प्रति अधिक यथार्थ पूर्वक सोचने का आग्रह बढ़ा था। पश्चिमी चिंतकों के प्रभाव से साहित्य में मनुष्य की मूलभूत समस्याओं

को लेकर मार्क्सवादी चिंतन को एक नए साँचे में ढालते हुए जीवन की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की कोशिश नए कवियों में दिखाई देती है।

'तार सप्तक' (1943) के प्रकाशन से हिंदी साहित्य में नवलेखन का प्रारंभ माना जा सकता है। इसके मूल में, जो सबने महसूस की, वह इस की भोगे गए यथार्थ और अभिव्यक्ति की अनौपचारिक पद्धति थी। यथार्थ का यह ढाँचा प्रेमचंद के आदर्शात्मक यथार्थवाद से पूरी तरह अलग था। यथार्थ यहाँ अपनी पूरी हक़ीक़त के साथ आदर्श अथवा नैतिकता के आवरण से मुक्त ठीक उसी रूप में था, जैसा लोगों ने उसे महसूस किया। वस्तुतः यह साहित्य-चिंतन और समाज के स्तर पर बहुत क्रांतिकारी पहल थी।

1951 ई. में 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही इसमें अन्य कई चीज़ें भी जुड़ती गईं, जिसमें आज़ादी के बाद का मोहभंग सबसे प्रमुख था। भारतीय जनमानस में आज़ादी का सपना संपूर्णतः सुखी समाज के रूप में था; जहाँ हर व्यक्ति अपनी उन्नति एवं विकास के लिए पराश्रित न रह कर स्वयं अपने को सुखी बना सकेगा। शिक्षा से लेकर उद्योग-धंधों, व्यवसाय इत्यादि सभी पर उसका अधिकार होगा, परंतु ऐसा हो नहीं पाया। विदेशी शासक मुक्त होकर सत्ता दूसरे आभिजात्य शासक के हाथ में आ गई, जिसका रवैया बहुत कुछ वैसा ही था जैसा पूर्ववर्ती शासन का था। वैयक्तिक स्तर पर किसी महत्त्वपूर्ण बदलाव को यहाँ की जनता ने महसूस नहीं किया। जो बदलाव आए वे या तो सामाजिक स्तर पर थे या उनकी पहुँच बहुत कम, एक विशिष्ट वर्ग के लोगों तक ही थी। विकास के नई-नई उद्घोषणाओं ने जनता को भविष्य के प्रति आश्वस्त तो नहीं किया बल्कि उनके मन की निराशा को कुछ अधिक ही तीव्र किया।

2.(घ).1. औद्योगिक विकास

एक ओर निराशा और हताशा की ऐसी मनोवृत्ति और दूसरी ओर स्वतंत्र भारत के विकास के लिए औद्योगीकरण की नई पहल ने जनता के सामने दुविधा-सी उत्पन्न कर दिया। नेहरू ने औद्योगीकरण के रूसी ढाँचे को अधिक उपयुक्त समझते हुए उसे भारत के औद्योगिक प्रगति में इस्तेमाल करने के लिए प्रतिबद्ध थे। जो यहाँ की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी। वास्तव में किसी भी देश के विकास का ढाँचा अथवा औद्योगीकरण उसके अपने अंदर से ही विकसित होता है। किसी दूसरे देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में विकसित विकास का तंत्र अन्य स्थानों पर उतना सफल नहीं हो सकता। इस बात पर भारतीय सामाजिक चिंतकों ने शायद गंभीरता पूर्वक विचार नहीं किया। परिणामतः एक ओर देश की भरपूर ग़रीब जनता, जिसमें अशिक्षा से लेकर अंधविश्वास तक का साम्राज्य था और दूसरी ओर औद्योगीकरण एवं वैज्ञानिक प्रगति के विदेशी फ़ार्मूले से विकसित हो रहे उद्योगधंधों के बीच की दूरी; जो निरंतर बढ़ती गई और सामाजिक एवं आर्थिक अंतराल निरंतर अधिक होता गया। उद्योग-धंधों का यह अचानक विकास भारतीय जन-मानस का विकास नहीं; बल्कि उनकी हीनता को प्रकट करने वाले माध्यम के रूप में आया, जहाँ उसकी भूमिका मज़दूर अथवा अधिक से अधिक क्लर्क तक ही थी।

वस्तुतः यह गंभीर विवेचन का विषय है कि औद्योगीकरण विकास के इस नेहरूवादी फ़ार्मूले ने देश की जनता को दो भिन्न आर्थिक वर्गों के रूप में बाँट कर रख दिया। एक ओर निहायत ग़रीब, रूढ़ि और परंपरा से ग्रस्त गाँव की जनता और दूसरी ओर उद्योग-धंधों में लगी साफ़सुथरी नगर-निवासी उच्च मानसिकता वाली जनता। इन्हीं कारणों से मध्यवर्ग नामक एक तीसरा आर्थिक वर्ग भी क्रमशः तैयार होने लगा; जिसका जन्म मूलतः अल्प-शिक्षित ग्रामीण वर्ग से ही हुआ था।

2.(घ). 2. मोहभंग

वस्तुतः यह बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों ने ही हिंदी साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला और साहित्य में मोहभंग के साथ ही साथ औद्योगिक विकास, नगरीकरण जैसी नई समस्याएँ अभिव्यक्त होने लगी। जिसकी अभिव्यक्ति आगे चलकर खीझ, निराशा, कुंठा इत्यादि मनोभावों में दिखाई पड़ती है। उद्योगों के असंतुलित विकास ने यहाँ के लोगों का मानसिक उन्नयन नहीं किया बल्कि भारत की सामान्य जनता अचानक अपने को मज़दूर की भूमिका में महसूस करने लगी। उसकी नियति यंत्र-पुर्ज़ों की तरह बस लगातार घिसता चला जाना था। हिंदी साहित्य में आम जनता की इस पीड़ा को यांत्रिकता, नीरसता, उदासीनता तथा लोगों के यंत्रवत व्यवहार के रूप में देखा गया। "स्वतंत्रता के प्रारंभिक दशकों में भारत में औद्योगिक प्रगति हुई, लेकिन जनसंख्या का बहुतांश ग़रीबी की सीमा रेखा से नीचे रहने के कारण अभिशप्त हो गया। आगे चलकर मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की बात चली, लेकिन उसमें राजनीतिक घुसपैठ के कारण एक नए वर्ग का प्रवेश हो गया। आगे चलकर समाजवादी व्यवस्था की भी बात आई, किंतु उनका क्रियान्वयन नहीं हो सका। चीनी आक्रमण के पश्चात एक प्रकार की उदासीनता और मोहभंग की स्थिति आई। तत्पश्चात शीतयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हुई। कैलाश बाजपेयी की कविता 'शीत-युद्ध' निम्नलिखित शब्दों में शीत-युद्ध को अंकित करती है।

"सबके पास डंक है
सबको
यह ज्ञात है
डसने के बाद
मधुमक्खी
मर जाती है।"

साठोत्तरी कविता में जो मोहभंग की स्थिति है, वह उसे पूर्ववर्ती कविता से अलग पहचान प्रदान करती है। राजनीतिक अव्यवस्था, मूल्यवृद्धि, नेताओं के झूठे-थोथे आश्वासन, बेरोज़गारी, महँगाई, ताशकंद घोषणा और चीन तथा पाकिस्तान के आक्रमण, भ्रष्टाचार, सरकार की निष्क्रियता आदि ऐसी बातें थीं, जिन्होंने युवा कवियों का मोहभंग कर दिया। उनका धैर्य जवाब दे गया और उन्होंने लिखा-

"मैंने इंतज़ार किया
अब कोई बच्चा भूखा रहकर
स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत
बरसात में नहीं टपकेगी।"

लीलाधर जगूड़ी की इन पंक्तियों में भी मोहभंग की स्थिति को अभिव्यक्ति मिली है-

"सूचना विभाग के हर पोस्टर पर
खुशहाली है। चारों ओर
कंगाली के पास आटा नहीं
गाली है
और जिस पर कोई नहीं
खाना चाहता
आज़ादी एक झूठी थाली है।"

कवियों के आज़ादी के बाद वर्षों तक दिए जाते रहे आश्वासन झूठे प्रतीत हुए।"[4] वस्तुतः इसमें सबसे अधिक जो चीज़ खत्म हुई थी वह आदमी के जीवन के सहजता और सरलता थी। एक औपचारिक एवं बेगाने माहौल ने जहाँ एक ओर सामाजिक

रिश्ते के ताने-बाने को कमज़ोर किया वहीं तनाव, खीझ, ऊब जैसी प्रवृत्तियों ने साहित्य में जगह बनानी शुरू कर दी। यहीं से समाज में एक नए वर्ग - मध्यवर्ग - की उपस्थिति मज़बूत होने लगती है और नगरीकरण की मानसिकता का विकास भी शुरू होता है।

उपर्युक्त विवेचन को यदि किंचित विस्तार दें तो हम यह स्पष्ट देख पाएगें कि अस्तित्ववाद की नकारात्मक प्रवृत्तियों को हिंदी साहित्य में विकसित होने का पूरा अवसर इस नई परिस्थिति ने प्रदान किया । बेगानेपन और ऊब जैसी खतरनाक मनोवृत्ति ने जहाँ सामाजिक संबंधों को कमज़ोर किया वहीं हताशा-निराशा जैसी प्रवृत्तियों ने व्यक्ति के मूल्यगत उन्नयन को बाधित किया। यहाँ यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि अस्तित्ववाद के साथ ही मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव भी काम-कुंठाओं एवं नैतिक विघटन के रूप में दिखाई पड़ता है। मन से अधिक देह और देह से अधिक भोग की मनोवृत्ति कविता की सचाई बनने लगती है। यहाँ हमें कुँवर नारायण की पंक्तियाँ याद आती हैं-

"आमाशय,

यौनाशय,

गर्भाशय.........

जिसकी ज़िंदगी का यही आशय,

यही इतना भोगाय...

कितना सुखी है वह, भाग्य उसका

ईर्ष्या के योग्य ।

हाय, पर मेरे कलपते प्राण,

तुमको मिला कैसी चेतना का विषम जीवन-मान

जिसकी इंद्रियों से परे जाग्रत हैं अनेकों भूख ।"[5]

2.(घ). 3. मध्यवर्ग का उदय

मध्यवर्गीय चरित्र वस्तुतः समाज का वह चरित्र है जिसका कोई चरित्र नहीं होता। एक ढुलमुल पाला बदलता हुआ, नैतिकता-अनैतिकता, अच्छे-बुरे, ईमानदारी-बेईमानी, मूल्य और भ्रष्टाचार इत्यादि के बीच झूलता हुआ-सा एक ऐसा व्यक्तित्व जिसे किसी परिभाषा में बाँधना शायद संभव नहीं। न तो आप इसे मूल्यों एवं आत्मीयताओं का विध्वंसक कह सकते हैं और न ही उसका रक्षक; क्योंकि समाज का यही वह वर्ग है जो इन तमाम सामाजिक प्रतिमानों का संरक्षण भी करता है और उसे तोड़ता भी है। मध्यवर्ग की इस मानसिकता ने वस्तुतः समाज में चेहरा ओढ़े हुए नक़ाबपोश चरित्रों की संख्या में ज़बरदस्त इज़ाफ़ा किया; जिसके परिणामस्वरुप जीवन की मूलभूत अवधारणाओं में बहुत गिरावट आई। इसके साथ ही समाज में एक तरह का गैर-जिम्मेदारीपन भाव भी बढ़ने लगा। जहाँ हर व्यक्ति दूसरे पर ज़िम्मेदारी थोपकर खुद बरी होना चाहता है। इन सबसे एक बात तो एकदम स्पष्ट है कि समाज में मूल्यगत अपघटन की प्रक्रिया अत्यंत तीव्र हो गई।

2.(घ). 4. नगरीकरण

औद्योगिक विकास के चलते एक ओर जो विशेष परिवर्तन समाज में हुआ वह नए-नए नगरों का विकास है। उद्योग-धंधों के विकास के साथ भारत की अपढ़ और ग़रीब जनता को आसानी से धन कमाने का अवसर मिल गया। सूखा, बाढ़ एवं अन्य समस्याओं से जूझ रही ग्रामीण जनता अपने समस्त सांस्कृतिक परंपरा को छोड़कर नक़द धन के लिए मीलों और कारखानों में, मज़दूर एवं क्लर्क बनने के लिए अधिक महत्त्व देने लगी और अपने मूल स्थान से उनका पलायन औद्योगिक केंद्रों की ओर होने लगा। परिणामतः जहाँ एक ओर नए-नए शहरों की संख्या बढ़ने लगी, वहीं भारत की

अर्थ-व्यवस्था के आधार 'कृषि' की उपेक्षा भी होनी शुरू हुई। कालांतर में इसका परिणाम बड़े-बड़े नगरों एवं महानगरों के रूप में सामने आया।

2.(घ).5. खीझ और निराशा

नगरीकरण की इस प्रक्रिया ने लोगों में एक सांस्कृतिक शून्यता उत्पन्न की। अब लोगों के स्थानीय उत्सव, रंग, पर्व एवं त्योहार महानगरों की भीड़ में गुम होने लगी। अर्थ प्राप्ति तो हुई लेकिन मनुष्य के मन से उसकी लोक-संवेदना छीजती गई और वह जैसे मशीन में तब्दील होता गया। खीझ और निराशा अथवा हताशा इन्हीं परिस्थितियों की सामूहिक परिणति थी। स्वतंत्रता के बाद की हिंदी कविता का उत्तरार्द्ध इन्हीं तमाम मानसिकताओं के बीच विकसित होता है।

2.(घ).6. राजनैतिक सन्नद्धता

इन्हीं सब के बीच भारत की राजनीतिक व्यवस्था लोकतंत्रीय ढाँचे में बँधकर आगे बढ़ती रही। परंतु वास्तव में इसका चरित्र पूरी तरह लोकतंत्रात्मक पूँजीपति वर्ग स्वतंत्रता के बाद से ही भारतीय राजनीति पर हावी रहा। लोकतंत्रीय चुनाव, धन और शक्ति के आधार पर लड़े और जीते जाते रहे।

"1. एक सिल तरह जैसे गिरी है स्वतंत्रता
और पिचक गया है पूरा देश।
2. राजपथ की वनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और आरक्षित हूँ

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था से असंतुष्ट युवा कवि कभी तो सपाटबयानी के ज़रिये अपना आक्रोश व्यक्त करता है और कभी अपने विरोध को प्रभावशील और धारदार

बनाने का लिए उपयुक्त बिंबों की रचना करता है। रमेश गौड़ की निम्नलिखित पंक्तियाँ किंचित अतिरेक के साथ राजनीतिक यथार्थ के एक विशिष्ट पहलू को उद्घाटित करती हैं।

'भेड़ों का जुलूस पूरे ज़ोर से गाता है
राष्ट्रीय गान सदन में
विभीषणों का राजतिलक हो रहा है और
सदन के बाड़े में आवारा साँड़ चबा रहे हैं
देश का नक़्शा और संविधान और राष्ट्रध्वज।'

1960 के बाद ऐसी अनेक सामाजिक, राजनीतिक घटनाएँ हुईं, जिनके कारण आम आदमी नव स्वतंत्रता और उससे मिलने वाले काल्पनिकों की स्थिति से ऊबकर एक नई सोच के लिए प्रयासरत था। यह सोच आई, लेकिन उसने आते ही स्वयं को सत्ता के विरोध में खड़ा कर लिया, क्योंकि आम आदमी का राजनीति से मोहभंग होने लगा था। 1962 के चीनी आक्रमण, 1964 में नेहरू की मृत्यु, 1965 के भारत-पाक युद्ध तथा 1966 में लाल बहादुर शास्त्री की आकस्मिक मृत्यु के कारण देश में राजनीतिक रिक्तता और तिक्तता का प्रभाव लक्षित होने लगा। 1967 में अनेक राज्यों में संविद सरकारें बनीं, जिनमें नेतृत्व समाजवादियों के हाथ रहा। उसके बाद से लगातार राजनीतिक विकृतियाँ बढ़ने लगीं और सत्ता तथा आम आदमी के बीच की खाई चौड़ी होती गई।"[6]

वास्तव में लोकतंत्र की सफलता आम जनता की सुशिक्षितता एवं जागरूकता से ही निश्चित हो सकती है। इन दोनों के अभाव में भारतीय लोकतंत्र के चुनाव विविध जातीय समीकरणों एवं लोभ, लालच और झूठे वायदे के गिरफ़्त में फँसकर

रह गए। यदि स्पष्ट कहा जाए तो यह कि भारतीय राजनीतिक तंत्र ने आम जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप अपने दायित्व का निर्वाह नहीं कर सकी। लेकिन इन सबके बावजूद इतना तो एकदम स्पष्ट है कि इसने आम जनता के बीच राजनीतिक समझदारी बढ़ाई और लोगों ने राजनीतिक तंत्र के प्रति अपना गुस्सा अथवा प्रेम अपने-अपने ढंग से व्यक्त करना शुरू किया। उनमें एक तरह का सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ अपनी ताक़त का एहसास भी बढ़ा। वास्तव में ये परिस्थितियाँ भारतीय समाज का साकारात्मक रूप प्रस्तुत करतीं हैं; परंतु इनमें इतने पेंच और इतने नुस्ख़ थे कि सही ढंग से इसका प्रभाव समाज पर कम ही पड़ा।

2. (ख) सामाजिक जागरण में आकाशवाणी का अवदान

साहित्य समाज का दर्पण है और आकाशवाणी द्वारा साहित्य का प्रसारण इस बात का परिचायक है कि आकाशवाणी समाज में जागृति लाने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित समसामयिक वार्ता, परिचर्चा, नाटक, कविता इत्यादि सामाजिक जागरण में चेतना पैदा करने में सहायक होते हैं। विभिन्न साहित्यकारों की रचनाएँ आकाशवाणी द्वारा प्रसारित की जाती हैं और इन रचनाओं में निहित विचार श्रोताओं को उत्प्रेरित करते हैं और प्रेरणा-स्रोत बनते हैं। प्रसारण के माध्यम से व्यक्त किए गए विचार श्रोता-समुदाय के मानस-पटल पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। कई बार वे बहुत कुछ सोचने के लिए श्रोताओं को मजबूर करते हैं। कई बार तो यह मजबूरी उनके पत्रों के माध्यम से भी व्यक्त होती है। श्रोता अनुसंधान विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि श्रोता किस तरह किसी कार्यक्रम को सुनकर प्रभावित होता है। इस तरह हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी सामाजिक-जागरण की परिचायक है। "सामाजिक चिंतन के बदलाव और मीडिया-ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सच कहा जाय तो

सामाजिक चिंतन और उससे जन्म लेने वाले परिवर्तन को समाज तक ले जाने में मीडिया की भूमिका अहम है। इस तथ्य पर हम अगर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट रूप से पाएँगे कि परिवर्तन एक धारा है और उस चिंतन को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य मीडिया का भी है। यह कार्य मीडिया प्रारंभ से करती आई है- चाहे तत्कालीन सामाजिक परिवेश में यह कार्य पारंपरिक मीडिया द्वारा किया जाता रहा हो या आज की बदलती परिस्थितियों में यह भूमिका आधुनिक मीडिया ने ग्रहण कर ली हो।"[7] अतः कहा जा सकता है कि एक तरफ़ समाज में हो रहे परिवर्तनों का दर्पण है आकाशवाणी तो दूसरी तरफ़ यह सामाजिक परिवर्तनों का संवाहक भी है। आकाशवाणी इन सामाजिक परिवर्तनों को दिशा प्रदान करती है, इसलिए इसका अवदान महत्त्वपूर्ण है।

आकाशवाणी द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों के लोग एक-दूसरे से जुड़ते हैं। समाज के विभिन्न वर्गों की दूरी को कम कर उनके बीच संबंध स्थापित करने में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है आकाशवाणी। समाज में त्वरित और प्रभावशाली ढंग से सूचनाएँ देने और विकासशील समाज में विकास की गति को तीव्रता प्रदान करने कार्य आकाशवाणी ही करती है। आकाशवाणी द्वारा व्यापक विश्व-बन्धुत्व की भावना का संचार किया जाता है। मानव-मूल्यों और शांति की स्थापना के लिए आकाशवाणी सदैव तत्पर रहती है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में, साहित्यिक सांस्कृतिक जागरण में , सोई हुई जनता में राजनीतिक चेतना जागृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने देश के कोने-कोने में समता और भाईचारे का संदेश पहुँचाकर सामाजिक जागरण में विशेष योगदान दिया है। आकाशवाणी की उपयोगिता समाज को शिक्षित कर जागरूक बनाने में

है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विकास, विज्ञान, शिक्षा आदि क्षेत्रों में हो रहे नए-नए प्रयोगों, उपलब्धियों आदि की जानकारी समाज तक पहुँचाना आकाशवाणी का उद्देश्य है। "पत्रकारिता रेडियो के माध्यम से शिक्षा, सामाजिक जागरूकता, सामाजिक परिवर्तन और स्वस्थ मनोरंजन के क्षेत्र में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा रही है।"[8]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देशवासियों के प्रति आकाशवाणी का दायित्व और बढ़ गया। उस समय संचार का एकमात्र सस्ता और सहज साधन रेडियो ही था। समाज के हर वर्ग के लोगों को राष्ट्र के नवनिर्माण में सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का दायित्व आकाशवाणी के ऊपर आ गया। तबसे लेकर आज तक इस माध्यम ने जो अवदान किया वह स्मरणीय रहा है। "रेडियो तथा टेलीविजन को अपने मौलिक कार्यों को वास्तव में प्रभावी तथा सार्थक ढंग से पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रसारण को आधुनिक तथा गतिशील समाज बनाने में, मूल उद्देश्यों को पूरा करने के मामले में, सभी सरकारी तथा गैरसरकारी एजेंसियाँ महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य शक्ति मानें। जानकारी देने, सूचनाओं का प्रसार करने तथा रचनात्मक दिशाओं में जनमत को प्रभावित करने के मामले में प्रसारण के अंदर महान संभावनाएँ भरी पड़ी है और इन संभावनाओं का उपयोग इस आधुनिक समाज को बनाने के लिए अपेक्षित कौशल की जानकारी देने तथा सामाजिक वातावरण पैदा करने के लिए किया जाना चाहिए।"[9] इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि समाज के प्रति किसी प्रसारण माध्यम का क्या दायित्व है और इस उत्तरदायित्व का निर्वाह सामाजिक जागरण के लिए कितना आवश्यक है ? देश का कुछ भाग ऐसा भी है जहाँ कुछ गाँवों में रेडियो उपलब्ध नहीं है। इस दशा में हम यह कह सकते हैं कि उन क्षेत्रों जागरूकता पैदा करने और लोगों को जानकारी देने का उद्देश्य पूरा करने में आकाशवाणी पूरी तरह सफल नहीं हो पाई है। संविधान में प्रदत्त लोगों के अधिकारों की जानकारी आकाशवाणी के माध्यम से आम जनता को प्राप्त होती है। जब

लोग अपने अधिकारों के बारे में सचेत होते हैं, तब उनमें जागरूकता आती है। इस तरह हर वर्ग के लोगों को अपने अधिकारों के विषय में जानकारी होनी चाहिए और यह जानकारी किसी माध्यम से ही लोगों को मिल सकती है। यदि हमें अपने अधिकारों और सामाजिक दायित्वों के बारे में जानकारी नहीं होगी तो हम अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सचेष्ट नहीं हो सकते हैं। लोगों को उनके अधिकारों का एहसास दिलाना आकाशवाणी के लिए एक चुनौती-भरा कार्य है। सांप्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता-निवारण, परिवार-कल्याण आदि कार्यक्रमों के विषय में लोगों तक जानकारी पहुँचा कर आकाशवाणी ने समाज में जागरूकता पैदा करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 20 सूत्री कार्यक्रमों को प्रोत्साहन देने में आकाशवाणी का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

2.(च). 1. राजनैतिक क्षेत्र में

लोकतंत्र की मज़बूती और उसकी सफलता का आधार जनसामान्य में राजनीतिक विचारों का प्रसार और उनकी जागृति में सन्निहित है। उचित-अनुचित के संबंध में बहस , उन पर विचार-विनिमय और उसके आधार पर मत के निर्माण से ही लोकतंत्रीय परंपरा सफल होती है। इस कार्य में विभिन्न संचार माध्यमों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका निःसंदेह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। जहाँ तक आकाशवाणी का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि वह इसमें केंद्रीय भूमिका निभाती है, क्योंकि उसकी पहुँच बहुत दूर तक, बहुत अधिक लोगों के बीच तक संभव है। सुदूर ग्रामीण इलाक़ों में, पर्वतीय रेगिस्तानी कस्बों और गाँवों में या फिर वनीय प्रदेशों में सूचना के लिए आकाशवाणी सबसे आसान और सुलभ साधन माना जाता है। तमाम तरह के राजनीतिक आंदोलन, वैचारिक बहस एवं अन्य राजनीतिक सूचनाओं को आकाशवाणी सहजता से मुहैया कराती है। साथ ही किसी सरकार की नई-नई योजनाओं, परियोजनाओं, कार्यक्रमों, उद्देश्यों को भी आकाशवाणी जनसमुदाय में प्रसारित कर लोगों की वैचारिक

बहस की आधारभूमि तैयार करती है।

विभिन्न स्रोतों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी के प्रसारण अब लगभग 98 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुँच रहे हैं। पहुँच की दृष्टि से आकाशवाणी जन-जन तक पहुँचने का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित सूचना या किसी भी कार्यक्रम को समझने के लिए अथवा सुनने के लिए साक्षर होना आवश्यक नहीं है। "आकाशवाणी आज अपने प्रसारणों के माध्यम से देश के लगभग 98 प्रतिशत आबादी तक पहुँचता है। उपग्रह के माध्यम से प्रसारण की शुरुआत से देश के लगभग 97 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र में आकाशवाणी अपनी आवाज़ पहुँचा रही है।"[10]

आकाशवाणी समाचार प्रसारित कर जनमत को जागृत करती है। आकाशवाणी ने संसार के प्रत्येक विषयों की जानकारी देकर लोगों को जागरूक बनाया है। राजनैतिक क्षेत्र में आकाशवाणी का महत्त्वपूर्ण अवदान है। युद्ध, आपातकाल या अन्य दुर्घटनाओं के विषय में जानकारी देने का कार्य आकाशवाणी द्वारा संपन्न किया जाता है। विपरीत परिस्थितियों में आकाशवाणी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ या सरकारी निर्देश प्रसारित कर महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। चाहे द्वितीय विश्वयुद्ध का समय हो या पाकिस्तान-युद्ध तथा बांग्लादेश की स्वतंत्रता के समय हो, आकाशवाणी ने अपने सभी स्तर पर राजनैतिक क्षेत्र में योगदान दिया है। आकाशवाणी के कार्यक्रमों के माध्यम से जन समुदाय के ज्ञान तथा परिवेश के प्रति जागरूकता बढ़ी है। उनका दृष्टिकोण अत्यधिक व्यापक हुआ है तथा राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखने की ओर उनका रुझान बढ़ा है।

2.(च). 2. सांस्कृतिक क्षेत्र में

आज संचार माध्यमों के विस्तार के कारण मनोरंजन के बहुत-से साधन हो

गए हैं; किंतु सांस्कृतिक क्षेत्र में आकाशवाणी का अवदान आज भी है और सदैव प्रासंगिक रहेगा। इसे सुनने के लिए अलग से समय निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रम अब मनोरंजन की अपेक्षा जनहित को ध्यान में रखकर निर्मित होते हैं। इन्हें अधिक उपयोगी और स्वस्थ मनोरंजनप्रद बनाया जाता है, जो अपनी कला एवं संस्कृति की रक्षा कर सके। शुरू से ही आकाशवाणी का संबंध संस्कृति से था और इसके विकास के लिए आकाशवाणी हमेशा तत्पर रही है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह ध्वनि की चित्रात्मकता शब्दों के माध्यम से पूरे वातावरण और 'मूड' को जीवंत प्रस्तुत करती है। नाटक, कहानी, कविता, संगीत रूपक आदि विविध विधाओं के माध्यम से आकाशवाणी सांस्कृतिक धरोहर को सँजोकर रखती है।

2.(च). 3. वैचारिक क्षेत्र में

जहाँ एक ओर आकाशवाणी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भूमिका निभाती है वहीं लोगों के वैचारिक उन्नयन में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। ज्ञान-विज्ञान की नई प्रविधियों, शोधों की जानकारी, देश एवं विश्व में हो रहे बदलावों की सूचना भी सुदूर स्थित व्यक्तियों तक आकाशवाणी के माध्यम से ही पहुँचती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक मुद्दों पर आधारित कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों में वैचारिक परिपक्वता आती है।

2.(छ). आकाशवाणी से जुड़े प्रमुख चिंतक और साहित्यकार

आकाशवाणी सिर्फ़ सूचनापरक सरकारी संचार माध्यम ही नहीं रहा; बल्कि वह जनरुचि के संस्कार एवं उसमें परिवर्तन-परिवर्द्धन का माध्यम भी बना। राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जागृति में उसने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और यह महज़ संयोग नहीं

था कि हिंदी साहित्य के तमाम वरिष्ठ साहित्य-चिंतक आकाशवाणी से जुड़े। दुष्यंत कुमार, जगदीशचंद्र माथुर, रामधारी सिंह दिनकर, चिरंजीत, मोहन राकेश, उदयशंकर भट्ट, नरेश मेहता, डॉ. सिद्धनाथ कुमार आदि जैसे सैकड़ों हिंदी साहित्य-चिंतकों की लंबी सूची तैयार की जा सकती है जिन्होंने आकाशवाणी को साहित्य-चिंतन की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में चुना।

आकाशवाणी संचार की स्वतंत्र विधा होते हुए भी अपने प्रारंभिक समय से ही साहित्य से जुड़े रही। साहित्य इसके लिए अभिव्यक्ति का माध्यम भी बना है और कहीं न कहीं प्रेरणा का स्रोत भी। हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकारों का निरंतर जुड़ाव इस तथ्य को प्रकट करता है। आकाशवाणी का प्रचलन भारत में जबसे हुआ, उस समय से हिंदी साहित्य की जन-चेतना का विस्तार दिखाई देता है। अपने समय के प्रसिद्ध नाटककार जगदीशचंद्र माथुर जैसे साहित्यकार का 'कलिंग विजय' नाटक सन् 1937 में आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र से प्रसारित हुआ। वस्तुतः यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि आकाशवाणी अपने प्रारंभ से ही हिंदी साहित्य के लोगों से जुड़ी रही। इस जुड़ाव के पीछे सिर्फ़ व्यावसायिक हित काम कर रहा हो, ऐसा नहीं माना जा सकता; बल्कि साहित्य और आकाशवाणी के बीच भावाभिव्यक्ति की कुछ समानताएँ अवश्य महसूस की गई होगी, जिसके चलते तमाम बड़े साहित्यकार आकाशवाणी के प्रति आकृष्ट हुए। अनुभूति और संवेदना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में दोनों में समानता थी। इस संदर्भ में विश्वानाथ पाण्डेय अपनी पुस्तक 'सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प' में उल्लेख करते हैं, "आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों पर हिंदी के विद्वानों की नियुक्ति की गई। कुछ नाम गिनाए जा सकते हैं- डॉ. नगेन्द्र, श्रीनारायण चतुर्वेदी, मोहन सिंह सेंगर, (नया समाज के पूर्व संपादक), मनोहर श्याम जोशी, रघुवीर सहाय, चिरंजीत, शिवसागर मिश्र (दिल्ली केंद्र), भगवतीचरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, केशवचंद्र वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क (इलाहाबाद केंद्र),

सुमित्रा कुमारी सिन्हा, अमृत राय, आरसी प्रसाद सिंह (लखनऊ), प्रफुलचन्द्र ओझा 'मुक्त', फणीश्वरनाथ 'रेणु' (पटना), राधाकृष्ण, डॉ. सिद्धनाथ कुमार (राँची)। इनके अतिरिक्त हिंदी के कुछ अन्य साहित्यकार भी शासकीय पदों पर विभिन्न माध्यमों से नियुक्त हुए। इनमें जगदीशचंद्र माथुर, रजनी पनिक्कर, कृष्ण चन्द्र शर्मा 'भिक्खु', गिरिजा कुमार माथुर, नरेंद्र शर्मा आदि के नाम अत्यंत आदर के साथ लिए जा सकते हैं।"[11]

देश के लगभग सभी साहित्यकार किसी न किसी रूप में आकाशवाणी से जुड़े रहे हैं। किसी को स्थाई पद मिला तो किसी ने नैमित्तिक कलाकार या वार्ताकार के रूप कार्य किया है। प्रसिद्ध नाटककार एवं निर्माता चिरंजीत का मानना है कि कई साहित्यकारों ने मात्र आकाशवाणी के लिए लेखन-कार्य आरंभ किया। उन दिनों अख़बार या पत्रिका में छपना आसान था, लेकिन पारिश्रमिक नहीं मिलता था, यदि मिलता भी था तो बहुत कम था। आकाशवाणी द्वारा कोई रचना प्रसारित किए जाने पर रचनाकारों को अच्छा मानदेय मिलने के कारण रचनाकारों का उत्साह बढ़ता और वे आकाशवाणी से जुड़ते। उनके अनुसार हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी का विशेष रूप से अवदान रहा। वे यह भी मानते हैं कि आरंभ में साहित्यकार अपनी रचना सिर्फ़ आकाशवाणी के लिए ही लिखते थे। बाद में उसका रूप या शीर्षक बदलकर पुस्तक का आकार दे दिया करते थे। वैसे आज भी हम देखते हैं कि अख़बार या पत्रिका द्वारा दिए जाने वाला पारिश्रमिक आकाशवाणी की तुलना में कम है। इस कारण रचनाकार अपनी रचना आकाशवाणी को ही देना अधिक पसंद करता है।

ऑल इंडिया रेडियो पटना की स्थापना 26 जनवरी, 1948 को हुई। उसी के बाद 10 फ़रवरी, 1948 को डॉ. सिद्धनाथ कुमार की पहली कविता का प्रसारण इस केंद्र से किया गया। यह कविता राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के निधन पर प्रसारित की गई,

जिसका शीर्षक था- 'देवता धरा का चला गया, पूजो पाषाणों को जाकर'। यह आकाशवाणी पटना की एक विशेष उपलब्धि कही जा सकती है कि भारत में प्रसारण आरंभ होने के दो सप्ताह बाद डॉ. सिद्धनाथ कुमार का जन्म होता है और आकाशवाणी पटना केंद्र की स्थापना के ठीक दो सप्ताह बाद ही डॉ. सिद्धनाथ कुमार की कविता प्रसारित हुई। "स्पष्टतः मुख्य रूप से डॉ. सिद्धनाथ कुमार रेडियो-नाटककार हैं। वे आकाशवाणी से संबद्ध रहे हैं और उनका नाट्यलेखन मुख्यतः उसी के लिए है। उन्होंने अपने चुने हुए रेडियो नाटकों के, जिनमें कथ्य, रूप और शिल्प की दृष्टि से वैविध्य है, कुछ संकलन प्रकाशित कराए हैं, फलतः रेडियो-नाटकों की शक्ति उनके नाटकों की शक्ति और सीमा उनके नाटकों की भी सीमा है।"[12]

आकाशवाणी ने साहित्यकारों को नियमित पद पर नियुक्ति देकर साहित्य के विकास में भारी योगदान दिया है। "पन्त जी की नियुक्ति आकाशवाणी के इलाहाबाद केंद्र पर हिंदी सलाहकार एवं प्रोड्यूसर के रूप में हुई। इसी प्रकार भाषाई असमानता को दूर करने के लिए हिंदी के दूसरे विद्वान डॉ. नगेन्द्र की नियुक्ति विशेष अधिकारी के रूप में दिल्ली केंद्र पर हुई। एक अन्य शिक्षाविद तथा हिंदी के विद्वान श्रीनारायण चतुर्वेदी आकाशवाणी के उप-महानिदेशक के रूप में वर्ष 1948 में नियुक्त हुए।"[13]

आज के जाने-माने कवि अशोक चक्रधर अपनी 16 वर्ष की आयु से ही आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र से जुड़े रहे। सन् 1972 ई. से 83 ई. तक युवाओं के लिए कार्यक्रमों का निर्माण किया। प्रख्यात कथाकार व पूर्व प्रसारण कर्मी (सेवा निवृत्त अपर महानिदेशक दूरदर्शन) कमलेश्वर आकाशवाणी से सन् 1953 ई. से जुड़े रहे। "तब आकाशवाणी से कृष्ण चंदर, राजेन्द्र सिंह बेदी, सआदत हसन मंटो, उपेन्द्रनाथ अश्क, हरिकृष्ण प्रेमी जैसे दिग्गज लेखक, साहित्यकार और ब्रॉडकास्टर जुड़े हुए थे। तब यह

ऑल इंडिया रेडियो था, आकाशवाणी नहीं। ....ऑल इंडिया रेडियो और बाद में आकाशवाणी नामांतरण के बाद मेरा इससे संबंध सन् 1953-54 में शुरू हुआ।"[14]

हिंदी ही नहीं, प्रायः सभी भारतीय भाषाओं और जन भाषाओं के साहित्यकार और चिंतक आकाशवाणी से जुड़ कर अपना योगदान दिया। हिंदी से जुड़े साहित्यकारों की माँग पर आकाशवाणी ने कई साहित्यकारों को ऊँचे-ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित किया और अनेक को सलाहकार समिति में शामिल कर लिया। "कौन बड़ा बुद्धिजीवी, कवि, कथाकार, लेखक होगा जो आकाशवाणी से न जुड़ा हो। शुरू के जमाने में मंटो, बेदी, कृष्णचन्दर, नूनमीन राशिद, इस्मत चुग्ताई, मज़ाज़, फैज़, सू किसी न किसी रूप से ऑल इंडिया रेडियो से जुड़े रहे थे। दो-तीन नाम प्रसारण-भवन के गलियारों में बहुत गूंजा करते थे। डॉ. नगेन्द्र और जोश मलीहाबादी। ये दोनों साहित्यकार थे, जिनके नामों की तख़्तियाँ बरामदे के स्टैंड पर लगी रहती थीं। जोश चले गए तो डॉ. आबिद हुसैन उर्दू के सलाहकार हुए।"[15]

प्रख्यात कथाकार एवं रंगकर्मी भीष्म साहनी सन् 1937 ई. से, प्रख्यात वैज्ञानिक एवं स्तंभ लेखक प्रो. यशपाल सन् 1947 ई. से, प्रख्यात कथाकार एवं हंस के संपादक तथा पूर्व सदस्य 'प्रसार भारती' राजेन्द्र यादव सन् 1957 ई. से, प्रख्यात नाटककार रेवती शरण शर्मा सन् 1945 ई. से, प्रख्यात मंचीय कवि सोम ठाकुर सन् 1955 ई. से आकाशवाणी से जुड़े रहे। पूर्व प्रसारण कर्मी एवं उर्दू के साहित्यकार डॉ. कमाल अहमद सिद्दीकी का पहला ब्राडकास्ट सन् 1943 ई. में लखनऊ केंद्र से किया गया। सन् 1953 ई. में रेडियो कश्मीर श्रीनगर में स्क्रिप्ट राइटर के तौर पर इनकी भर्ती हुई। 1 नवंबर सन् 1943 ई. से साहित्यकार गोपालदास ने आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र पर अपनी सेवा आरंभ की। "बात मई, 1947 की है, मुझे पहली बार आकाशवाणी के

प्रसारण भवन स्थित दिल्ली, केंद्र से एक चर्चा में भाग लेने का निमंत्रण मिला था। इस गौरव की गरिमा इसलिए और बढ़ जाती है कि बिना किसी रिहर्सल के मुझे सीधे माइक के सामने बैठकर बोलना पड़ा था। इस चर्चा का विषय था कवि सम्मेलनों से हिंदी साहित्य का कोई हित नहीं हो रहा। भाग लेने वाले थे डॉ. नगेन्द्र और मैं। ....मुझे सुमित्रानंदन पन्त और जगदीशचन्द्र माथुर जी ने बहला-फुसलाकर, 1955 में प्रोड्यूसर ड्रामा नियुक्त करवा दिया। हम प्रसारण भवन में हिंदी वार्ता के श्री टंडन जी के साथ एक ही कमरे में बैठते थे, मेरे साथ चिरंजीत, सत्येन्द्र शरत्, ओंकार नाथ श्रीवास्तव आदि थे। उस समय अनेक साहित्यकारों और कलाकारों को आकाशवाणी पर काम करने के लिए आमंत्रित किया गया था। साहित्य सम्मेलन, कवि सम्मेलन, संगीत सम्मेलन, जनता के सामने नाट्य प्रदर्शन तथा विभिन्न प्रतियोगिताएँ, ऐसा लगता था जैसे आकाशवाणी सचमुच साहित्य और संस्कृति का केन्द्र है।"[16]

हिंदी के श्रेष्ठतम गद्य रचनाकारों में सादर स्वीकृत एक नाम है- श्री विष्णु प्रभाकर का। साहित्य की अनेक विधाओं में अपने उत्कृष्ट अवदानों के लिए इनका नाम सदैव उल्लेखनीय हैं। अनेक कालजयी श्रेष्ठ पुस्तकों के रचनाकार विष्णु जी मानव-जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभवों के मर्मस्पर्शी प्रभाव रचने वाले लेखक हैं। इनके साहित्य में समय ने अपनी समग्र अभिव्यक्ति पाई है। हिंदीतर पाठक-समाज में भी व्यापक रूप से लोकप्रिय तथा सम्मानित हैं। इनकी कुछ प्रमुख रचनाएं हैं- 'आदि और अन्त' (1945 ई.), 'संघर्ष के बाद' (कहानी संग्रह-1953 ई.), 'ढलती रात' (1951 ई.), ''स्वप्नमयी' (उपन्यास-1956 ई.), 'नव प्रभात' (सम्पूर्ण नाटक), 'डॉक्टर' (1958 ई.), 'प्रकाश और परछाइयाँ' (एकांकी नाटकों का संग्रह-1955 ई.)

हिंदी साहित्य कोश के दूसरे भाग के अनुसार, "विष्णु प्रभाकर- जन्म 21

जून, 1912 ई., मीरनपुर ग्राम, जिला मुजफ्फर नगर (उत्तर प्रदेश) में। पंजाब से बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपने हिंदी लेखन के क्षेत्र में प्रवेश किया। लगभग दो दर्जन पुस्तकों के लेखक हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में आपने एक साथ प्रयोग किए हैं- कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, स्केच और रिपोर्ताज इत्यादि में आपकी विभिन्न रचनाएँ हमें सर्वथा नयी भावभूमि से परिचित कराती हैं।"[17] इसी पुस्तक के अनुसार, "जगदीश चन्द्र माथुर-जन्म 1917 ई. खुर्जा जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा खुर्जा में हुई। 1939 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. (अंग्रेजी) करने के बाद 1941 ई. में 'इंडियन सिविल सर्विस' में चुन लिए गये। सरकारी नौकरी में 6 वर्ष बिहार शासन के शिक्षा सचिव के रूप में, 1955 से 1962 ई. तक आकाशवाणी भारत सरकार के महासंचालक के रूप में, 1963 से 1964 ई. तक उत्तर बिहार (तिरहुत) के कमिश्नर के रूप में कार्य करने के बाद 1963-64 में हावर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका में विजिटिंग फेलो नियुक्त होकर विदेश चले गये। वहाँ से लौटने के बाद विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर काम करते हुए 19 दिसंबर, 1971 ई. से भारत सरकार के हिंदी सलाहकार रहे।"[18] इस बात की पुष्टि अन्यत्र भी मिलती है- "संगीत, नाटक अकादमी, आकाशवाणी महानिदेशक तथा अन्य सरकारी विभागों में ऊँचे पद विभूषित किए हैं।"[19] जगदीश चन्द्र माथुर की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं- 'भोर का तारा' (1946 ई.), 'कोणार्क' (1950 ई.), 'ओ मेरे सपने' (1950 ई.), 'दस तसवीरें' (1962 ई.), 'परम्पराशील नाट्य' (1968 ई.), 'पहला राजा' (1970), 'जिन्होंने जीना जाना' (1972 ई.)। "उपेन्द्रनाथ अश्क- जन्म पंजाब प्रांत के जालन्धर नामक नगर में 14 दिसम्बर, 1990 को एक मध्यवित्त के ब्राह्मण परिवार में हुआ। ....बचपन से ही अश्क अध्यापक बनने, लेखक और संपादक बनने, वक्ता और वकील बनने, अभिनेता और डायरेक्टर बनने और थियेटर अथवा फिल्म में जाने के अनेक सपने देखा करते थे। .....1941 में दूसरा विवाह

किया। उसी वर्ष ऑल इंडिया रेडियो में नौकरी की। 1945 के दिसम्बर में बम्बई के फिल्म-जगत के निमंत्रण को स्वीकार कर वहाँ फिल्मों में लेखन-कार्य करने लगे। ....अश्क ने कहानी, उपन्यास, निबंध, लेख, संस्मरण, आलोचना, नाटक, एकांकी, कविता आदि के क्षेत्रों में कार्य किया है।"[20] नरेश मेहता का जन्म 15 फरवरी, 1922 को शाजापुर मालवा के ब्राह्मण परिवार में हुआ और मृत्यु 23 नवंबर, 2000 को इलाहाबाद में हुई। छः वर्षों तक आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिकारी के पद पर कार्यरत रहे। इनके द्वारा लिखे गए नाटक, कहानियाँ, आलोचनात्मक ग्रंथ आदि एक से एक श्रेष्ठ हैं। इसीलिए उन्हें समस्त साहित्यधर्मिता के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला है।

दुष्यंत कुमार का जन्म 1 सितंबर, 1933 को बिजनौर जिले के नवादा गाँव में भूमिहार ब्राह्मण परिवार में हुआ और मृत्यु 30 दिसंबर, 1975 को भोपाल में हुई। आकाशवाणी में विभिन्न पदों पर कार्य किया। इनका लिखा हुआ 'और मसीहा मर गया' एक प्रसिद्ध रेडियो-नाटक (ध्वनि-नाटक) है। इसका धरातल 'छोटे-छोटे सवाल' है, जो सन् 1964 में प्रकाशित उपन्यास है। यह 'छोटे-छोटे सवाल' के संपूर्ण कथानक रेडियो रूपांतर है, जिसे भोपाल आकाशवाणी से प्रसारण के लिए लेखक ने स्वयं की आवाज में रिकार्ड किया था। "गिरिजा कुमार माथुर- जन्म अगस्त 1919 में, अशोक नगर (म. प्र.) में। एम.ए. (अंग्रेजी), एल-एल. बी.। 1943 से आकाशवाणी से सम्बद्ध। आप निदेशक, विविध भारती, आकाशवाणी, दिल्ली रहे। तार सप्तक के कवि। गिरिजा कुमार माथुर रंग, रस, रोमान, प्रगति, इतिहास-बोध और शिल्पगत नूतन प्रयोगों के कवि हैं।"[21] 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार' नामक अपनी पुस्तक में डॉ. नामदेव उतरकर ने गिरिजा कुमार माथुर के विषय में लिखा, "नवंबर 1943 में दिल्ली रेडियो स्टेशन में नियुक्ति, सन् 1950 में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी प्रसाराधिकारी, सन् 1953 में लखनऊ आकाशवाणी-उपनिदेशक, सन् 1956 में नेपाल यात्रा, चेकोस्लोवाकिया और स्विट्जरलैंड

की यात्रा, भोपाल, इलाहाबाद, दिल्ली, उड़ीसा के आकाशवाणी केंद्रों पर कार्य, सन् 1962 में जालंधर में निदेशक, सन् 1967 में दिल्ली आकाशवाणी पर 'विविध भारती' के निदेशक, स्टाफ ट्रेनिंग आकाशवाणी के निदेशक।"[22]

इसी तरह भगवतीचरण वर्मा भी आकाशवाणी से जुड़े हुए थे। इनका "जन्म 1903 ई.। शिक्षा बी.ए., एल-एल. बी. तक प्रयाग विश्वविद्यालय से। लेखन तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में ही प्रमुख रूप से कार्य किया। बीच-बीच में फिल्म तथा आकाशवाणी से भी सम्बद्ध रहे। बाद में स्वतंत्र लेखन की वृत्ति अपनाकर लखनऊ में बस गये।"[23] भगवतीचरण वर्मा की कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं- 'इंस्टालमेण्ट', 'दो बाँके' तथा 'राख और चिनगारी' (कहानी संग्रह- 1953 ई.), 'रुपया तुम्हें खा गया' (नाटक- 1955 ई.), भूले-बिसरे चित्र' (उपन्यास- 1959), 'आखिरी दॉव', 'अपने खिलौने', 'मॉर्डन सोसायटी', ' 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' (उपन्यास), रेडियो रूपक- 'महाकाल', 'कर्ण' और 'द्रौपदी' (1956) में 'त्रिपथगा' नामक संकलन में संकलित।

शोधार्थी द्वारा भेजे गए एक पत्र के उत्तर में आकाशवाणी भोपाल के उद्घोषक एवं साहित्यकार श्री राजुरकर राज लिखते हैं- "आकाशवाणी से अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यकार जुड़े रहे हैं, जिनका हिंदी साहित्य में गौरवपूर्ण उल्लेख होता है। आकाशवाणी भोपाल के पहले केंद्र प्रमुख के रूप में प्रख्यात साहित्यकार श्री गिरजा कुमार माथुर नियुक्त किए गए थे। वे श्री अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' के कवियों में से एक थे। इसी तरह 'तार सप्तक' के एक और कवि श्री हरिनारायण व्यास भी आकाशवाणी भोपाल में ड्यूटी ऑफिसर रह चुके हैं। इन दिनों चर्चित बाल साहित्यकार श्री हरिकृष्ण देवसरे भी आकाशवाणी भोपाल में ड्यूटी ऑफिसर रह चुके हैं। इन दिनों दूरदर्शन दिल्ली में उप-महानिदेशक श्री लीलाधर मण्डलोई प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। वे भी आकाशवाणी

भोपाल के निदेशक रह चुके हैं। वैसे देखा जाए तो आकाशवाणी भोपाल से ही जुड़ कर जिन लोगों ने हिंदी की सेवा की है, उनकी संख्या दो दर्जन से अधिक ही होगी।"[24]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का नाटक 'सीता स्वीकार' 16 मार्च 1940 को तथा डा. रामकुमार वर्मा लिखित नाटक 'औरंज़ेब की आखिरी रात' 8 जून 1942 को आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से प्रसारित हुआ। उदयशंकर भट्ट का नाटक 'विश्वामित्र' 1938 ई. में तथा 'मुक्तिपथ' नाटक 1944 ई0 आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किए गए। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर 1960 के आसपास आकाशवाणी से जुड़े। चिरंजीत का 'हम हिन्दुस्तानी' नाटक 29 नवम्बर 1970 को, मुद्राराक्षस का नाटक 'विद्रूप' 26 फरवरी 1976 को तथा 'काले सूरज की शवयात्रा' नाटक 24 जुलाई 1975 को प्रसारित किए गए।

आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र के अलावा अन्य कई केन्द्रों से भी हिन्दी के साहित्यकारों की रचनाएँ प्रसारित की जाती रहीं। इस तरह आकाशवाणी से साहित्यकारों का सम्बन्ध बढ़ता रहा। आकाशवाणी और साहित्यकारों के संबंध की विस्तृत चर्चा करते हुए विश्वनाथ पाण्डेय लिखते हैं, "रेडियो ने पिछले पचास वर्षों में हिन्दी नाटक लेखकों की अच्छी खासी टीम तैयार कर ली है जो रेडियो विधा के अनुसार नाटक लिखते रहे हैं। उनमें से कुछ नाम यहाँ आदर के साथ गिनाये जा सकते हैं- सहादत हसन मंटो, कृष्ण चन्दर, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, डा. रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्द दास, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर, चिरंजीत, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, हंसकुमार तिवारी, राधाकृष्ण प्रसाद।

पटना का केन्द्र वर्ष 1948 में उद्घाटित हुआ था और इस केन्द्र से सबसे पहले नाटक के रूप में हंसकुमार तिवारी लिखित एक संगीत नाटिका प्रसारित हुई थी-

'कच देव्यानी'। आकाशवाणी पटना तथा बाद में राँची से अनेक हिन्दी नाटक प्रसारित हुए। रामेश्वर सिंह काश्यप लिखित 'लोहा सिंह' नाटक की आत्मा यद्यपि भोजपुरी की थी लेकिन इसे सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। मोहनलाल महतो वियोगी, रामवृक्ष बेनीपुरी, राधाकृष्ण प्रसाद, रेवतीरमण शर्मा, प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', चतुर्भुज, डा. सिध्दनाथ कुमार, डा. जितेन्द्र सहाय, हंसकुमार तिवारी, जगदीशचन्द्र माथुर, द्वारका प्रसाद, सत्यनारायण अस्थाना, जनार्दन राय, हिमांशु श्रीवास्तव आदि विद्वान लेखकों के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।"[25]

ऑल इन्डिया रेडियो सन् 1935 में ब्रिटिश सरकार द्वारा आरंभ किया गया था, उस युग में अंग्रेजों तथा अंग्रेज-परस्त लोगों के मनोरंजन के लिए कार्यक्रम प्रसारित किये जाते थे। जब ब्रिटिश शासन के खिलाफ देश में नारे बुलंद होने लगे तब तत्कालीन कन्ट्रोलर लियोनेल फील्डेन वापस चले गए और रेडियो के पहले महानिदेशक के रूप में उर्दू के प्रख्यात व्यंग्य लेखक ए. एस. बुखारी सन् 1940 से कार्य करने लगे। आजादी के बाद तक बुखारी का नियंत्रण रेडियो पर चला। "श्री फ़ील्डन के बाद 1940 में श्री अहमद साह बुखारी ने ऑल इण्डिया रेडियो के डायरेक्टर-जनरल के रूप में पद भार संभाला।"[26] इस तथ्य की पुष्टि अन्यत्र भी मिलती है, "A.S. Bhokhari took over from Fielden in 1940 and renamed at the helm of affairs till the eve of Indian Independence."[27]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आकाशवाणी के प्रथम दिनों से ही साहित्यकारों का जुड़ाव इसके साथ रहा है। साहित्यिक अभिरुचि के लोगों को आकाशवाणी ने प्रोत्साहित किया, उनकी रचनाओं को जन-जन तक पहुँचाया। नये-नये पदों पर वरिष्ठ लेखकों को नियुक्ति दी गयी। "डा. केसकर ने आकाशवाणी का स्वरूप

ठीक करने के लिए हिन्दी के सुप्रसिध्द नाटककार श्री जगदीशचन्द्र माथुर को महानिदेशक नियुक्त किया।"[28] 'समकालीन समाचार' के अनुसार, मधुप शर्मा– "1954 से 1967 तक आकाशवाणी, मुंबई में कार्यरत। 'विविध भारती' के जन्म (1957) से ही उससे जुड़े। 'हवा महल' के लिए नाटक निर्देशन के अलावा नाटक, गीतों-भरी कहानियाँ तथा कुछ अन्य कार्यक्रमों का लेखन। फिल्मी कलाकारों से मुलाकातें। पिछले कुछ वर्षों से केवल साहित्यिक लेखन में व्यस्त। 1998 में उपन्यास 'एक थी रुक्मा' के लिए 'जैनेन्द्र कुमार' पुरस्कार एवं 2003 में उपन्यास 'अँधेरे-उजाले' के लिए 'साहित्य पुरस्कार' प्राप्त।"[29] अमृतलाल नागर ने प्रायः रेडियो पर प्रसारित करने वाले नाटकों की रचना की है। "रंगमंच के लिए उन्होंने 'युगावतार' और 'नुक्कड़ पर' ये दो नाटक लिखे हैं। 'बात की बात', 'चंदन वन', 'चक्करदार सीढ़ियाँ और अँधेरा', 'उतार-चढ़ाव' आदि आपके प्रकाशित रेडियो नाटक हैं। रेडियो नाटकों में ध्वनि-प्रभाव पर विशेष बल दिया जाता है। इन्हें हम सुनते हैं, देखते नहीं।"[30]

आकाशवाणी ने साहित्यकारों को अभिव्यक्ति के अधिक लोकोन्मुख माध्यम से जोड़ा और उनके रचनात्मक विकास में भी प्रयत्क्ष या परोक्ष ढंग से प्रेरक की भूमिका निभाई। इससे यह बात भले ही प्रमाणित न हो कि तमाम साहित्यकारों की रचनात्मकता के पीछे आकाशवाणी की भूमिका रही है, परंतु इतना तो स्पष्ट है कि आकाशवाणी से जुड़े रचनाकारों ने अपनी रचनाओं को इस अनुरूप अवश्य तैयार किया होगा कि वह आकाशवाणी के दायरे में 'फिट' हो सके। इसमें रचनाओं की लम्बाई और उसकी समयावधि को विशेषतः लक्षित किया जा सकता है। यहाँ यह बात पुनः जोर देने की है कि यह जुड़ाव मात्र व्यावसायिक न होकर अभिव्यक्ति के दो अलग-अलग माध्यमों से जुड़ना भी था।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सुधींद्र कुमार, पृ. 179
2. आलोचना, 'समकालीनता का प्रश्न और कविता', राजेश जोशी, अंक 23, पृ. 31
3. हिंदी साहित्य कोश (भाग-2), डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 27
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतकर, पृ. 30
5. हिंदी नवलेखन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 71
6. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतकर, पृ. 29
7. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 208
8. रेडियो और दूर-दर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 76
9. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 25-26
10. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 222
11. वही- पृ. 224
12. नाटककार-नाट्यलोचक सिद्धनाथ कुमार, सं. डॉ. सुंदरलाल कथूरिया, पृ. 21
13. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 223
14. साक्षी 2003, आवाज और अल्फाज का यह मंदिर, कमलेश्वर, पृ. 33
15. वही, यादें प्रसारण भवन की, प्रो. गोपीचंद नारंग, पृ. 33
16. वही, प्रसारण भवन के संस्मरण, विष्णु प्रभाकर, पृ. 33
17. हिंदी साहित्य कोश (भाग-2), डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 576
18. वही, पृ. 198
19. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार : डॉ. नामदेव उतकर, पृ.- 142
20. हिंदी साहित्य कोश (भाग-2), डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ.- 53
21. वही, पृ. 129
22. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतकर, पृ. 144-145
23. हिंदी साहित्य कोश (भाग-2), डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ.- 399
24. आकाशवाणी भोपाल के उद्घोषक एवं साहित्यकार श्री राजुरकर राज का पत्रोत्तर, दिनांक 27 अक्टूबर, 2003
25. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 229
26. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 24
27. Broadcasting in India, G. C. Awasthy, P. 59
28. हिंदी पत्रकारिता की दिशाएँ, जोगेंद्र सिंह, पृ. 6
29. समकालीन समाचार- संपादक- सत्यव्रत, वर्ष-16, अंक-1, जनवरी, 2007, पृ. 2
30. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ. 718

****

तृतीय अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की विविध विधाएँ और आकाशवाणी

3.(क) विविध विधाएँ

साहित्य के अनेक रूप होते हैं। साहित्यकार अपनी रुचि के अनुसार अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए साहित्य के किसी रूप का चुनाव करता है। इन्हीं रूपों के साहित्य की विधा कहते हैं। ये साहित्यिक विधाएँ वातावरण और काल के अनुसार जन्म लेती और विकसित होती हैं। स्वतंत्रता के बाद साहित्य की कई विधाओं का जन्म हुआ। कविता पहले से थी, फिर भी इसकी कई शैलियाँ स्वतंत्रता के बाद विकसित हुईं। इसी प्रकार गद्य की कई विधाओं का जन्म और विकास स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुआ। इनमें कुछ विधाएँ प्रमुख हैं, जैसे एकांकी, भेंटवार्ता, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक इत्यादि।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का विकास गद्य और पद्य दोनों ही में बड़ी प्रमुखता से दिखाई पड़ता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात की परिस्थितियों के साथ-साथ भारत की 'स्वतंत्रता प्राप्ति' ने हिंदी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। इस सबके सम्मिलित प्रभाव के फलस्वरूप कविता में यह आस्तित्विक अनुभूतियों के विकास के साथ-साथ मनोविश्लेषणवाद की कुंठाग्रस्त मानसिकता के रूप में दिखाई पड़ता है। परिणाम-स्वरूप साहित्य में नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव कुछ अधिक ही हुआ। इसके साथ-साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उपजे 'मोहभंग' की मनोवृत्ति ने साहित्य की 'नकारात्मक सोच' को अधिक सघन किया। कविता में जहाँ एक ओर हताशा और विकृति

का साहित्य सृजित हुआ, वहीं उसके शिल्प में एक 'नीरस गद्यात्मकता' भी फैलती गई। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के पश्चात की परिस्थितियों के कारण हिंदी काव्य में गद्यात्मकता बढ़ी। जहाँ तक हिंदी गद्य का प्रश्न है- स्वतंत्रता के पश्चात देश की मानसिकता को अभिव्यक्त करने में यह सर्वाधिक सफल हुआ और इसकी विविध विधाओं का विकास अभिव्यक्ति की माँग के चलते बड़ी तीव्र गति के साथ हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक इत्यादि के साथ-साथ गद्य की अन्य कम चर्चित विधाएँ भी बहुत प्रमुखता से अपना स्थान बनाने लगी और उनमें बृहद साहित्य की रचना प्रारंभ हुई। स्वातंत्र्योत्तर युग में हिंदी पद्य और गद्य का सर्वांगीण विकास हुआ है। देश ने पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर स्वाधीनता की सुखद एवं स्फूर्तिदायक साँस ली। इस समय विभिन्न गद्य-विधाओं में भी अभूतपूर्व और बहुमुखी विकास देखने को मिलता है। देखा जा सकता है कि इस युग के लेखकों ने कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि क्षेत्रों में नए आयामों का उद्‌घाटन तो किया ही साथ-ही-साथ अपनी अभिव्यक्ति के लिए रिपोर्ताज, एकांकी, इंटरव्यू आदि नवीन विधाओं को भी जन्म दिया। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में देश के नवनिर्माण पर बल दिखाई देता है।

3.(क).1. कविता

कविता मूलतः एक शाब्दिक कला है, पर कविता है क्या, इसका स्वरूप क्या है, इसे परिभाषित करने का प्रयत्न लंबे समय से चला आ रहा है। किंतु यहाँ हम डॉ. हरिमोहन का विचार रखना चाहेंगे, "कविता मानव-मन की अभिव्यक्ति की सर्वाधिक आरंभिक कला है। इस साहित्यिक रूप में मानव-जीवन की आशाओं-आकांक्षाओं का द्वंद्वात्मक चित्र विद्यमान रहता है। मानव-सभ्यता के विकास के साथ जोड़ कर देखे तो कविता का संबंध उत्पादन श्रम से दिखाई देगा। फलतः इस शाब्दिक कला का निश्चित

103840
NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
103840
Date...101......

प्रभाव मनुष्य की भौतिक समृद्धि पर भी पड़ता है, इसमें संदेह नहीं। अपनी प्रारंभिक अवस्था में कविता ने श्रमरत हाथों से जुड़ कर विकास पाया तथा मनुष्य को निरंतर ऊर्जा एवं विश्वास के साथ कर्मरत रहने की प्रेरणा दी; फिर निरंतर उसके सांस्कृतिक अथवा वैचारिक विकास को प्रभावित किया। ये दो बिंदु ऐसे हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि कविता का प्रभाव मनुष्य द्वारा किए जाने वाले उत्पादन-कार्य पर भी पड़ता है, इसलिए समाज के विकास की दिशा का निर्धारण भी इससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कविता ने ही मनुष्य बनाया है और कविता मनुष्यता की पहचान है।"[1]

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिंदी कविता का स्वरूप विविधता की दृष्टि से विशेष महत्त्व का है, क्योंकि इसमें आधुनिक युग की प्रायः सभी प्रवृत्तियाँ समान रूप से विकसित हुई हैं। प्रयोगवाद, नई कविता तथा साठोत्तरी कविता के अतिरिक्त अनेक काव्य धाराओं का विकास भी इस युग में हुआ है। इस युग के प्रमुख कवियों में अज्ञेय, रामविलास शर्मा, नरेंद्र शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, विनोद रस्तोगी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस संदर्भ में डॉ. नामदेव उतरकर का विचार है, "नई कविता की मुख्य उपलब्धि भाषा शैली शिल्प पक्ष में अधिक है। गद्य का काव्यात्मक मार्जन इसकी मुख्य विशेषता है। रूपों और बिंबों की योजना भी इसका एक क्रियाशील पक्ष है। सन् 1950 के आसपास विदेश में समसामयिक कविता को 'न्यू पोयट्री' का फ़ैशन निकल पड़ा, जैसा कि श्री एस. फ्रेजर ने अँग्रेज़ी कविता के नवीनतम अध्याय को 'न्यू मूवमेंट्स' कहा है। दूसरी ओर डेनाल्ड हाल ने अमरीकी कविता के विगत पंद्रह वर्षों की प्रगति को 'न्यू पोयट्री' संज्ञा दी है (हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास पृष्ठ 402)। नई कविता का प्रवर्तक सामान्यतः निराला को माना जाता है। तदनुसार नई

कविता की सीधी सहज धारा निराला से प्रवर्तित होकर दुष्यंत, अजित, केदारनाथ सिंह, कीर्ति चौधरी, नागार्जुन, त्रिलोचन और सिद्धनाथ कुमार तक जाती है।"[2]

इस युग की कविता मूलतः अपने युग की संवेदना को ही मुखरित करती है। अतः यह युग बोध की जीवंत कविता है। इस युग के कवियों के अलंकरण पर जान बूझ कर ध्यान नहीं दिया। वे नहीं चाहते थे कि रस, रीति और अलंकार के चक्कर में पड़कर अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हों। कविता की कोमल प्रकृति की रक्षा करने वाले समीक्षकों के लिए यह कविता एक सशक्त चुनौती है। काव्य को लक्ष्य कर इस युग के कवियों ने जो कहा है, वह किसी परंपरावादी बिंब-प्रतीक का मुखापेक्षी नहीं है। इनके अपने बिंब हैं, इनके बिंबों में सृजनात्मक शक्ति है, सजीव कल्पना है और वस्तुगत वर्णन के साथ अनुभूति और यथार्थ का अंकन है। इस युग के कवियों के पास अपने युग की सभी चित्रविचित्र स्थितियाँ रही हैं और उनको इन्होंने यथार्थ के स्तर पर भी इस्तेमाल किया है। यही इस युग की कविता की शक्ति और सीमा भी है।

प्रायः समीक्षकों की धारणा है कि स्वातंत्र्योत्तर कविता का लक्ष्य समाजोन्मुख होकर, सामाजिक तनाव को झेलकर सामाजिक मूल्यों से काव्य-संस्कार पाकर, सामाजिक वैषम्य और कुंठाओं को वाणी देना है। स्वातंत्र्योत्तर कविता की आधारभूमि पर दो दृष्टियाँ दिखाई पड़ती हैं। पहली दृष्टि विद्रोह से विकसित होने वाले जीवन को इंगित करती है तो दूसरी दृष्टि प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रतिरोध में खड़े होने की प्रेरणा देती है।

3.(क). 2. कहानी

"कहानी का प्राचीन नाम संस्कृत में 'गल्प' या 'आख्यायिका' मिलता है, लेकिन आधुनिक युग में कहानी के नाम से जिन रचनाओं का अवतरण हुआ वे संस्कृत साहित्य में गल्प अथवा 'आख्यायिका' के नाम से मिलने वाली रचनाओं से अलग है। इसलिए कहा जा सकता है कि आजकल की हिंदी कहानियाँ हैं तो भारत की पुरानी कहानियों की संतति; किंतु विदेशी संस्कार लेकर आई हैं।"[3]

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी मुख्यतः दो धाराओं में विकसित हुई है। एक तो परंपरागत रूप में और दूसरी परंपरा-मुक्त रूप में। पहली में प्राचीन आदर्शों और रूढ़ियों का समर्थन है और दूसरी में आर्थिक-हीनता और ह्रासोन्मुखता का चित्रण है। स्वतंत्रता के प्रारंभिक काल में देश के विभाजन की घटना को लेकर अनेक श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी गई। अज्ञेय की 'शरण दाता', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है, 'मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', चंद्रगुप्त विद्यालंकार का 'मास्टर साहब' आदि कहानियों में विभाजन की पीड़ा को दर्शाया गया है। इस युग में प्राचीन और नवीन कहानी की प्रवृत्तियों के विकास में योग देने वाले लेखकों में मुख्य रूप से विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, रामवृक्ष बेनीपुरी, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, सुदर्शन, कमलेश्वर, उषा प्रियंवदा, मनु भण्डारी, कृष्णा सोबती, मोहन राकेश, फणीश्वर नाथ 'रेणु', निर्मल वर्मा, नरेश मेहता, श्रीकांत शर्मा, शैलेश मटियानी आदि के नाम उल्लेखनीय है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के क्षेत्र में मुख्य रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक और आंचलिक कहानी की प्रवृत्तियों का विशेष रूप से विकास हुआ है। "1947 में देश की स्वतंत्रता ने जहाँ जनमानस पर व्यापक प्रभाव डाला था, वहाँ बुद्धिजीवियों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। हिंदी कहानी में नए स्वर उभरे। नई

आशा जगी। नया भावबोध भरा गया। विश्व स्तर पर कहानी जिन आंदोलनों से परिचित हो रही थी, हिंदी कहानी में भी उन आंदोलनों का निनाद उठा। आशा और निराशा, अस्तित्व और अनास्तित्व - ये दो परस्पर विरोधी स्वर हिंदी कहानी में सुनाई पड़ने लगे। 1950-55 के बाद हिंदी कहानी 'नई कहानी' कहलाने लगी। छठे दशक में कहानी फिर ग्रामांचल की ओर लौटी।"[4]

वास्तव में स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार युग-चेतना के प्रति इतना जागरूक है कि भारत विभाजन, सांप्रदायिक दंगों, राजनीतिक हत्याओं, युद्ध की विभीषिका, बेरोज़गारी, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कुंठा, घुटन, धार्मिक आडंबर, दूषित राजनीति, सामाजिक भ्रष्टाचार आदि ने स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार की संवेदना को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। जीवन और उसकी जटिलताओं के प्रति साहस-पूर्ण दृष्टिकोण रखते हुए भी वह विषम परिस्थितियों में अपने आपको असहाय-सा अनुभव करता है। इसलिए उसका दृष्टिकोण धीरे-धीरे अनास्था-वादी होता जाता है। "नए भारत के परिवर्तित हो रहे रूप का भी सजग और कलात्मक चित्र हमें स्वातंत्र्योत्तर कहानी-लेखन में देखने को मिलता है। सन् 1952 के आसपास हिंदी कहानी के क्षेत्र में नई कहानी का नारा लगाया गया और कुछ लेखकों की कहानियों को नई कहानी नाम दिया गया। डॉ. नामवर सिंह ने इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका `कहानी' में इस संबंध में अनेक लेख लिखे, जिसमें उन्होंने निर्मल वर्मा की कहानियों से नई कहानी का आरंभ माना (हिंदी साहित्य का इतिहास डॉ. चातक, पृष्ठ 404)। `सन् 1950 के बाद हिंदी कहानी ने करवट बदली और उसने अपनी परंपरागत रीति में परिवर्तन उपस्थित किया', यह मत डॉ. लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय का है। स्वाधीनता के युग में नई कहानी का आंदोलन पहला आंदोलन है। नई कहानी वास्तव में यथार्थवादी धारा की कहानी है।"[5]

इस प्रकार से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का स्वरूप वैविध्यपूर्ण है; जिसमें समकालीन जीवन के प्रायः सभी पक्षों का समावेश हुआ है। दृष्टिकोण गत बौद्धिकता और नव-चेतना के प्रति जागरूकता इसमें विशेष रूप से लक्षित होती है, जो इसके भावी विकास की दिशाओं की ओर संकेत करने में समर्थ है।

3.(क). 3. उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास वैचारिक विशिष्टता, शिल्पगत प्रयोगात्मकता और विषयगत विविधता की दृष्टि से महत्त्व रखता है। इस काल में बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आंचलिक उपन्यास लिखे गए। जिन लेखकों ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास के विकास में योग दिया है, उनमें चतुरसेन शास्त्री, इलाचन्द्र जोशी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, अमृतलाल नागर, प्रभाकर माचवे, हिमांशु जोशी, नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन उपन्यासकारों ने मुख्य रूप से सामाजिक प्रवृत्ति के अंतर्गत विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है। राजनैतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति के अंतर्गत राजनीति, क्षेत्रीय विचार-धाराओं और आंदोलनों का चित्रण किया है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति के अंतर्गत मुख्य रूप से उन मानवतावादी जीवन-दर्शन संबंधी संकेतों को प्रस्तुत किया है, जिनकी सार्थकता वर्तमान काल के संदर्भ में है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास की प्रवृत्ति के अंतर्गत मुख्य रूप से मानसिक कुंठाओं और विकृतियों का चित्रण है।

स्वतंत्रता के बाद देश का दो टुकड़ों बँट जाना एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। इस परिवेश को लेकर लेखकों ने उपन्यासों की रचना की और बँटवारे की पीड़ा को अंकित किया। "समसामयिक परिवेश को लेकर कथा-लेखकों ने कुछ उपन्यास लिखे हैं। इस विभाजन की पृष्ठभूमि के उपन्यासों में 'आधा गाँव', 'तमस' (1976) आदि नाम गिनाए जा

सकते हैं। विभाजन की पृष्ठभूमि से संबंधित विशेष उपन्यासों में भगवती चरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' का महत्त्व है। इसी पृष्ठभूमि से यशपाल के 'मेरी तेरी बात' उपन्यास का भी संबंध बताया जा सकता है।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास केवल विकसित ही नहीं हुआ बल्कि कथानक और शिल्प की दृष्टि से भी वह पर्याप्त परिपक्व होता गया। जैसे-जैसे जीवन की जटिलता बढ़ती गई उपन्यास की अभिव्यक्ति जटिल रूप धारण करती गई। पाश्चात्य उपन्यासों की विविध शैलियों को आत्मसात करता हुआ इस युग का उपन्यास कथ्य की दृष्टि से भी पर्याप्त प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका है। जीवन की जटिल से जटिल विसंगतियों को सफलता से चित्रित करने का उपन्यासकारों ने प्रयास किया है और निर्विवाद रूप से वे इस दिशा में पर्याप्त सफल रहें हैं।

3. (क). 4. नाटक

साहित्य की समस्त विधाओं में नाटक एक प्राचीन विधा है। इस विधा के अंतर्गत एकांकी, रेडियो रूपक, टी.वी. नाटक आदि को भी शामिल किया जा सकता है। "नाटक नाट्यवर्ग की सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है"[7] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य साहित्य वैचारिक विशिष्टता और शिल्पगत प्रयोगात्मकता की दृष्टि से महत्त्व रखता है। जिन नाटककारों ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य-साहित्य को समृद्ध बनाने में योगदान दिया है, उनमें डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेंद्र नाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, नरेश मेहता आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने विशेष रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, धार्मिक और पौराणिक

नाटकों की प्रवृत्ति के विकास में योगदान दिया है। सामाजिक नाटकों की प्रवृत्ति के अंतर्गत मुख्य रूप से सामाजिक, आर्थिक और नैतिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक नाटकों की प्रवृत्ति के अंतर्गत भारत के विभिन्न युगीन इतिहास के आधार पर राष्ट्रीय भावना, कर्त्तव्यपालन, अहिंसा और क्षमाशीलता आदि राष्ट्रीय आदर्शों का निरूपण है। मनोवैज्ञानिक नाटकों की प्रवृत्ति के अंतर्गत मानसिक कुंठाओं, विकृतियों और विद्रुपताओं का विश्लेषण हुआ है। राजनैतिक नाटकों का प्रवृत्ति के अंतर्गत व्यवहारिक सूत्रों का निदर्शन हुआ है। धार्मिक और पौराणिक नाटकों की प्रवृत्ति में धार्मिक पाखंडों का विरोध करते हुए सेवा या सबसे बड़ा धर्म निर्दिष्ट किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई विषयों को लेकर नाटकों की रचना की गई। सामाजिक और राजनीतिक विषय तो पहले से ही विद्यमान थे, परंतु आज़ादी के बाद के नाटकों में स्त्री-पुरुष के संबंधों को भी अच्छी तरह से उकेरा गया तो दूसरी ओर हास्य-व्यंग्य नाटक भी लिखे गए। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक से जीवन का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा। "पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगों की नई दृष्टि से अभिव्यक्त, सामाजिक युग में औद्योगिक विकास के अभिशाप और आर्थिक विषमताओं से टूटते-जीवन-मूल्यों और मानवीय संबंधों की सशक्त अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर प्रयोगधर्मी नाटकों में मिलती है।"[8] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य साहित्य आधुनिक युगबोध के साथ ही जुड़ता नहीं दिखाई देता वरन शिल्प के प्रति अधिक सजग भी हो गया है।

3.(क). 5. एकांकी

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी एकांकी का स्वरूप विविधता-युक्त है। इसके अंतर्गत एकांकी के प्राचीन रूपों के विकास के साथ-साथ अभिनव रूपों का उद्‌भव भी दृष्टिगत होता है। इस युग में एकांकी साहित्य को समृद्ध बनाने में मुख्य रूप से गोविंद वल्लभ

पंत, वृन्दावनलाल वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती आदि ने विशेष अवदान दिया है। इस युग में हिंदी एकांकी के क्षेत्र में मुख्य रूप से सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, पौराणिक एकांकी की प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। इनमें सर्वप्रमुख प्रवृत्ति सामाजिक विषयवस्तु से संबंधित है, क्योंकि सामाजिक नवजागरण और परिवर्तनशीलता की दृष्टि से यह युग विशेष महत्त्व का है। इस युग के सामाजिक एकांकीकारों ने मुख्य रूप से सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित समस्याओं का चित्रण विभिन्न दृष्टियों से किया है। इनमें आर्थिक व्यवस्था, कुंठाग्रस्त, शोषण और वर्गगत वैषम्य प्रमुख है। इस प्रसंग में यथार्थ को प्रश्रय देने के साथ-साथ आदर्शपरक निदान भी प्रस्तुत किए गए हैं। ऐतिहासिक एकांकी की प्रवृत्ति के अंतर्गत मुख्य रूप से त्याग, उत्सर्ग और बलिदान की भावनाओं का निरूपण है। राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक और पौराणिक एकांकियों की प्रवृत्तियों के अंतर्गत भी प्रायः उदात्त भावनाओं का अनुगमन हुआ है। "सामाजिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति, समस्याओं का सूक्ष्म समाधान और रंगमंचीय सार्थकता उनके एकांकी नाटकों की सहज उपलब्धियाँ हैं।"[9] निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी एकांकी का विषयगत विस्तार बहुत अधिक है।

3.(क). 6. निबंध

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी निबंध साहित्य में पूर्ववर्ती और नवीन प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। इस युग में प्रमुख निबंधकारों में डॉ. गुलाब राय, पदुमलाल पन्नालाल बख़्शी, रामवृक्ष बेनीपुरी, जैनेन्द्र कुमार, नन्ददुलारे बाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, रामविलास शर्मा, सियाराम शरण गुप्त, डॉ. नगेन्द्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने विचारात्मक, विवरणात्मक, सामयिक,

वर्णनात्मक, भावात्मक, संस्मरणात्मक और आलोचनात्मक निबंधों के विकास में योगदान दिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी निबंध साहित्य 'कथ्य' तथा 'शिल्प' दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त वैविध्यपूर्ण है; क्योंकि निबंध का आरंभ और विकास पत्र-पत्रिकाओं से हमेशा से जुड़ा रहा है और अब भी जुड़ा हुआ है। जितनी पत्र-पत्रिकाएँ हैं, उतने ही निबंध सामने आ रहे हैं। यह कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इसलिए विशेष महत्त्व है क्योंकि इसमें हिंदी पद्य और गद्य की प्रायः सभी पूर्ववर्ती प्रवृत्तियों के विकास के साथ अनेक नई प्रवृत्तियों की भी उद्भावना हुई है।

3.(क). 7. जीवनी

वर्तमान काल में गद्य के अन्य रूपों के समान ही जीवनी साहित्य भी अनेक रूपों में विकसित हुआ है। 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' इस क्रम की सर्वोत्तम रचना है। डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा लिखित 'निराला की साहित्य साधना', विष्णु प्रभाकर द्वारा 'आवारा मसीहा' में उपन्यास लेखक शरत् बाबू की जीवनी प्रस्तुत की गई है। "जीवनी का अर्थ किसी के द्वारा किसी अन्य के जीवन और कार्यों के बारे में लिखा गया वृत्त। जीवन-वृत्त उसी का लिखा जाता है, जो उल्लेखनीय हो। गद्य विधा में जीवनी-लेखन सुकर होता है और आज हम केवल बड़ों के बारे में ही नहीं, उल्लेखनीय छोटों के जीवन के बारे में भी जानना-समझना चाहते हैं, इसीलिए जीवनी-लेखन विधा खूब पनपी है। जीवनी वास्तविक व्यक्ति पर लिखी अथवा लिखवाई जाती है। इसमें कहानी, उपन्यास, निबंध आदि तत्वों का सम्मिश्रण होता है। अंतर केवल इतना है कि इस विधा में सत्य आधार होता है, अन्य में कल्पना। जीवनी में कल्पना नहीं, यथार्थ होता है।"[10]

वर्तमान राजनीतिक जीवनियों को आगे बढ़ाने का श्रेय राहुल सांकृत्यायन

को दिया जाता है। जीवनी का मूलाधार रचना के अंत तक विषयगत बना रहना है। जीवनी में व्यक्ति विशेष का चित्र प्रस्तुत करने में व्यापकता एवं गहराई होती है तथा जीवनी में चित्रकार आगे न आकर हमेशा व्यक्ति विशेष को ही आगे रखता है। हिंदी के साहित्यकारों में विष्णु प्रभाकर का 'आवारा मसीहा' ने सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की है। जीवनी आत्मकथा के अत्यंत निकट है, परंतु यह आत्मकथा से भिन्न है। इन दोनों गद्य विधाओं में सबसे बड़ा अंतर यह है कि आत्मकथा स्वयं के द्वारा लिखी जाती है और जीवनी किसी और के द्वारा। जीवनी लिखते समय जीवनीकार चरितनायक के जीवन का घटनाओं में तोड़ मरोड़ नहीं कर सकता। उसे घटनाओं का तटस्थ भाव से क्रमिक वर्णन करना पड़ता है, परंतु जीवनी इतिहास नहीं है। सरसता, रोचकता और साहित्यिक कलात्मकता ही जीवनी को सफल बनाती है।

3.(क). 8. भेंटवार्ता

भेंटवार्ता हिंदी गद्य की सर्वथा नवीन विद्या है। इसको अँग्रेज़ी में 'इंटरव्यू' कहा जाता है। इसके शिल्प, स्वरूप को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है- "साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान विभूति से मिलकर किन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोण को जानने और उन्हें उन्हीं की भाषा-शैली की भंगिमा में व्यक्त करने की साहित्यिक रचना इंटरव्यू है।"[11] स्वातंत्र्योत्तर काल में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के साथ-साथ आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा भी समाज के प्रमुख व्यक्तियों से ली गई भेंटवार्ताएँ प्रकाशित एवं प्रसारित हुईं। यहाँ तक कि इस क्रम में आम आदमी से भी भेंटवार्ताएँ ली गई और उसे जन-जन तक पहुँचाया गया। हिंदी-साहित्य में इस विधा की शुरुआत भारतेंदु-काल से माना जाता है। "'हंस' पत्रिका के दिसंबर 1947 के अंक में श्री नरोत्तम नागर द्वारा पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से ली

गई एक महत्त्वपूर्ण भेंटवार्ता प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था, 'अपने ही घर में सरस्वती का अपमान।' इस भेंटवार्ता में निराला ने दो टूक शब्दों में इस बात पर रोष व्यक्त किया था कि राजनेताओं के समक्ष साहित्यकारों को तुच्छ समझा जाता है। पाँचवें दशक के भेंटवार्ता साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बेनीमाधव शर्मा रचित 'कविदर्शन' नामक पुस्तक का प्रकाशन है।"[12]

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आने के बाद भेंटवार्ता के चरित्र में काफ़ी बदलाव आया है। इस दौर में विशिष्ट व्यक्ति की भेंटवार्ता का सीधा प्रसारण इस बात का सबूत है कि यह विधा आज कितनी लोकप्रिय हुई है। "अतः भेंटवार्ता, साक्षात्कार या समालाप एक कला है, जिसमें कतिपय बौद्धिक कौशल का इस्तेमाल किया जाता है। यह एक प्रविधि है जिसमें कुछ ख़ास विधियों का प्रयोग होता है। और, एक अंश में तो इसे एक उभरती हुई मानव-वैज्ञानिक प्रक्रिया भी माना जा सकता है क्योंकि नियोजित एवं नियंत्रित किया जा सकता है। कुशल भेंटकर्ता इसके परिणामों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं या इसे अभीष्ट परिणामों की ओर बहुत हद तक निर्देशित कर सकते हैं।"[13] इस विधा के प्रमुख रचनाकार हैं- डॉ. पद्मसिंह शर्मा कमलेश, देवेंद्र सत्यार्थी, अक्षय कुमार जैन, रामावतार, कन्हैया लाल नंदन, विष्णुकांत शास्त्री, डॉ. धर्मवीर भारती, सुशील कपूर, सावित्री परमार, वीणा अग्रवाल, ओम प्रकाश सिंहल, सतीश शर्मा, डॉ. शचि रानी गुर्टू, मालती शंकर आदि।

3.(क). 9. संस्मरण

संस्मरण आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के संबंध में लिखित रचना संस्मरण है। वर्ण्य वस्तु व्यक्ति के अतिरिक्त लेखक स्वयं देखता है, अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है

उसमें लेखक की, स्वयं की अनुभूतियाँ, संवेदना भी रहती है। शैली की दृष्टि से संस्मरण निबंध के अधिक निकट होता है। "संस्मरण का संबंध स्मृति से है। लोगों, घटनाओं, प्रसंगों आदि के बारे में प्रेरक, रोचक, द्रावक, शामक अथवा सभी प्रकार की एकल या मिश्रित बातें हम सबके पास स्मृति में सुरक्षित होती हैं। जिनमें लेखन-प्रतिभा होती है, वह उन्हें लेखनीबद्ध कर देता है। इसमें आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि सभी विधाओं का मेल हो जाता है, इन सबकी विशेषताएँ आ मिलती हैं। यह विधा आत्मकथा के अधिक निकट होती है।"[14] संस्मरण घटनात्मक अधिक होते हैं, किंतु ये घटनाएँ प्रायः सत्य होती है और वर्णित व्यक्ति वस्तु के चरित्र का परिचय देती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में संस्मरण की बाढ़ आ जाने पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलाई। बनारसी दास चतुर्वेदी (संस्मरण), विनोदशंकर व्यास (उनकी स्मृतियाँ) जैनेन्द्र कुमार (ये और वे), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरें) महादेवी वर्मा (पथ के साथी), बलराज साहनी (यादों के झरोखे), उपेंद्र नाथ अश्क (मण्टो, मेरी दुश्मन), आदि युग प्रसिद्ध संस्मरणात्मक लेखक हैं। इनमें सबसे अधिक सूझबूझ तथा उच्चकोटि की संवेदनशीलता उपेंद्र नाथ अश्क के संस्मरण में हैं।

3.(क). 10. रेखाचित्र

रेखाचित्र गद्य के नवीन रूपों में प्रमुख है। रेखाचित्र में रेखाएँ बोलती हैं। जिस प्रकार कुछ रेखाओं का प्रयोग कर रेखा-चित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु की मूलभूत विशेषताओं को उभार देता है उसी प्रकार थोड़े से शब्दों का प्रयोग करके साहित्यकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी मूलभूत विशेषताओं के साथ सजीव कर देता है। रेखांकन करते समय वह अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को ही महत्त्व देता है। विषय को रूपायित करता है रेखाचित्र में वास्तविकता पर बल, वर्णित पात्र के

संवेदनशील रूप की पकड़, आकृति तथा वेशभूषा आदि का जीता जागता, कथात्मकता, पात्रों में स्नेह, मोह का त्याग तथा संक्षिप्त आकार आदि इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। हिंदी के रेखा चित्रकारों में बनारसी दास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, महादेवी वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, जगदीशचंद्र माथुर आदि महत्त्वपूर्ण प्रतिभाएँ हैं। संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित्र इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है। कहा जा सकता है कि रेखाचित्र एक ऐसी रचना को कहते हैं जिसमें किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या स्थान का संक्षिप्त किंतु तथ्यात्मक अंकन किया जाता है। इस रचना को पढ़ने या सुनने के बाद हमारे मानस पटल पर उसका चित्र साकार हो उठता है। किसी व्यक्ति या दृश्य का सजीव अंकन रेखाचित्र कहलाता है।

3.(क).11. रिपोर्ताज

यह शब्द फ़्रेंच भाषा का है। किसी घटना विशेष को अपनी मानसिक इमेज की पृष्ठभूमि में पुनः मूर्त रूप में प्रस्तुत करना रिपोर्ताज का सहज धर्म है। वास्तविक घटना को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देना `रिपोर्ट' है। हिंदी में इसे `रिपोर्ट लिखना' कहते हैं। जब सफल पत्रकार या साहित्यकार वास्तविक घटना को अपने भीतर निहित मूल्यों के अनुसार एक विशेष दृष्टिकोण से उपस्थित करके प्रभावपूर्ण बना देता है तो वह `रिपोर्ताज' की कला सृष्टि करता है। कोई रिपोर्ताज-लेखक कल्पना के अनुसार नहीं लिख सकता। इस विधा का संबंध पत्रकारिता से है। शब्द का स्रोत ही बता रहा है कि यह अँग्रेज़ी पत्रकारिता से हिंदी में आया है। यह भी एक प्रकार की निबंध-शैली है। इसमें आँखों-देखी तथा कानों-सुनी बात को लिखित रूप दिया जाता है। यह लिखित रूप निश्चित रूप से प्रकाशन के लिए होता है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार कल्पना की अपेक्षा वस्तुगत

सत्य को प्रधानता देना, जन-जीवन की सहानुभूति, आकार का सीमित होना, प्रभाव की एकता, कथा संबंधी कटाव, तराश तो नहीं, किंतु घटना तत्व का समावेश आवश्यक आदि प्रमुख तत्व हैं।

श्री कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर को हिंदी में रिपोर्ताज का सूत्रपात करने का श्रेय प्राप्त है। इस विधा का तेज़ी से विकास हो रहा है। रांगेय राघव, अमृत राय, प्रभाकर माचवे, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती आदि ने श्रेष्ठ रिपोर्ताज लिखे हैं। जब एक पत्रकार पत्रकारिता के स्तर से उठकर संवेदनशील साहित्यकार बन जाता है तो वह प्रभावपूर्ण रिपोर्ताज का सृजन करता है। रिपोर्ताज का लेखक युद्ध, महामारी, अकाल, बाढ़ आदि के दुष्परिणामों का आँखों देखा समाचार वर्णन करता है पर उसका उद्देश्य केवल सूचना देना ही नहीं होता। इसके पीछे उसकी एक विशेष दृष्टि होती है। लेखक का मुख्य उद्देश्य महामारी, बाढ़, अकाल आदि से उत्पन्न विषम स्थितियों से लाभ उठाने वाले मुनाफ़ाख़ोरों पर व्यंग्य करना होता है। जब कोई समाचार केवल समाचार नहीं रहता वरन मानव मूल्यों से जुड़कर साहित्य की स्थाई संपत्ति बन जाता है तब उसे रिपोर्ताज कहते हैं। हिंदी के रिपोर्ताज लेखकों में शिवदान सिंह चौहान, अमृत राय, प्रभाकर माचवे, फणीश्वरनाथ रेणु, धर्मवीर भारती आदि के नाम लिए जा सकते हैं। हिंदी में रिपोर्ताज ने 35-40 वर्षों में ही महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। हमारे अनुमान से पत्रकारिता के विकास के साथ-साथ यह परंपरा और अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती जाएगी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रिपोर्ताज स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गद्य की एक सशक्त विधा है। समाचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कोई घटना जब साहित्यकता से युक्त हो जाती है तब वह रिपोर्ताज बन जाती है। इसमें केवल तथ्य महत्त्वपूर्ण नहीं होता बल्कि शैली और कलात्मक अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण होती है। इस विधा में कल्पना तत्व का अभाव

रहता है। इस विधा का प्रभाव सजीव, रोचक तथा विश्वसनीय होता है।

3.(क).12. यात्रावृत्त

जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों का वर्णन करता है तो उसे 'यात्रावृत्त' या 'यात्रा साहित्य' कहते हैं। लेखक वर्ण्य विषय का वर्णन आत्मीयता तथा निजता के साथ करता है। जिस विषय का वर्णन करता है उसके साथ उसका जुड़ाव होता है तथा उसके अपने जीवन-संदर्भ भी उसमें आते हैं। यात्रावृत्त की वर्णन-प्रकिया निबंध की सी होती है, फिर भी यात्रावृत्त निबंध नहीं है। क्योंकि इसमें जिस किसी विषय का समावेश नहीं हो सकता। इसमें तो यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों का वर्णन अपेक्षित है। यात्रावृत्त में संस्मरण की प्रवृत्ति भी रहती है। फिर भी यात्रावृत्त और संस्मरण एक दूसरे से भिन्न है। यात्रावृत्त में समय तथा स्थान का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है। यात्रावृत्त में यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों, दृश्यों अथवा घटनाओं से जुड़ी सामयिक स्मृतियों का वर्णन होता है, जबकि संस्मरण में स्थाई एवं अमिट स्मृतियों का वर्णन किया जाता है। यह विधा आकाशवाणी में भी प्रचलित है। स्थापित साहित्याकर अपने अनुभवों को इस विधा के माध्यम से श्रोताओं तक पहुँचाते हैं।

हिंदी में यात्रावृत्त विधा को समृद्ध करने वालों में अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), मोहन राकेश (आख़िरी चट्टान तक, 1953), भागवत शरण उपाध्याय (वो दुनिया), राहुल सांकृत्यायन (रूस में 25 मास, 1952), रामवृक्ष बेनीपुरी (उड़ते चलो, उड़ते चलो- 1954), अमृता प्रीतम (इक्कीस पत्तियों का गुलाब- 1968), डॉ. नगेन्द्र (अप्रवासी की यात्राएँ- 1972), विष्णु प्रभाकर (ज्योतिपुंज हिमालय- 1982), राजेन्द्र अवस्थी (हवा में तैरते हुए- 1976), रामदरश मिश्र (तना हुआ इन्द्रधनुष- 1990), रामधारी सिंह दिनकर

(देश-विदेश- 1952) आदि प्रमुख हैं। कई साहित्यकारों ने यात्रा पुस्तकें भी लिखी हैं। जो इस विधा के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। "द्विवेदी युग के बाद यात्रा-वृत्तों का लेखन और प्रकाशन तेज़ी के साथ हुआ। भारतीय धर्म, संस्कृति, शिक्षा, पर्यटन का फैलाव होने पर इस देश के बहुसंख्य लोगों के पैर देश-विदेश की सीमाएँ लाँघने लगे। वे अनुभव लिखने लगे। अमरीका, युरोप और एशिया के देशों तथा क्षेत्रों के बारे में विस्तृत जानकारी पाठकों को मिलने लगी। अनेक यात्रियों के बीच कुछ महत्त्वपूर्ण यात्रियों में सत्यदेव परिव्राजक ने अपने यात्रा-वृत्तों में जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र आदि सभी विधाओं का मिश्रण कर दिया है।"[15] यात्रावृत्त में जीवन में की गई अनेक छोटी-बड़ी यात्राओं के अनुभवों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसमें यात्रा के दौरान पड़े विविध प्रभावों की सहज अभिव्यक्ति होती है। यात्रावृत्त में स्थान विशेष की विशिष्टता, प्राकृतिक सुंदरता, ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी, वहाँ की कला एवं संस्कृति आदि का वर्णन साहित्यिक ढंग से लेखक द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

3.(ख). आकाशवाणी द्वारा प्रमुख साहित्यिक विधाओं का ग्रहण

आकाशवाणी के माध्यम से साहित्य के प्रसारण ने आकाशवाणी के चरित्र में कई मूलभूत बदलाव किए। पहले आकाशवाणी, जो मात्र एक सरकारी सूचना-तंत्र के रूप में थी, उसमें सामान्य जनता की अनुभूतियों और उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति होने लगी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी सही अर्थों में जनता से जुड़ी। वह सिर्फ़ नीरस और शुष्क सूचनाओं के संप्रेषण का माध्यम ही नहीं रही बल्कि लोगों के हर्ष-विषाद की अनुभूतियों को व्यक्त करने के माध्यम के साथ-साथ जनता के पर्व-त्योहार एवं उनकी रुचियों को भी व्यक्त करने लगी। कहने का आशय यह कि आकाशवाणी का चरित्र पूरी तरह से एक नई भूमिका में सामने आया। उसमें मनोरंजन के

साथ-साथ शिक्षा एवं संस्कार की शक्ति भी आई और अपने इस नए दायित्व के निर्वाह के लिए आकाशवाणी ने उन तमाम साहित्यिक विधाओं को स्वीकारा, जिनका सामान्य या आम जनता पर गहरा प्रभाव हो सकता था। इन विधाओं में प्रमुख रूप से कविता, कहानी, भेंटवार्ता, नाटक, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि। जनता में अपनी गहरी पैठ बढ़ाने के लिए आकाशवाणी ने साहित्यिक विधाओं को ग्रहण किया, जिसके कारण लोग उससे जुड़े और इससे लोगों को दोहरा लाभ मिला। साहित्यिक विधाओं को ग्रहण करने के फलस्वरूप अनेक साहित्यकारों ने आकाशवाणी से जुड़कर इसके माध्यम से साहित्य के विकास में योगदान दिया। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य ने राष्ट्र की एकता के सूत्र को मज़बूत किया है और देश की सांस्कृतिक वैभव को सुरक्षित रखा है। "हमारे देश में प्राचीन काल से ही कथा कहने और सुनने की परंपरा रही है। यह संचार का बड़ा ही सशक्त माध्यम प्रारंभ से ही रहा है। कथा कहने वाला और उसे सुनने वाले में अत्यंत आत्मीय संबंध स्थापित हो जाता है, जहाँ संप्रेषण का प्रभाव अत्यंत गहरा होता है। माँ के मुख से बचपन में सुनी अनेक क़िस्सा-कहानियाँ, बच्चे के दिल और दिमाग़ पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। आजीवन ये कहानियाँ उनके स्मृतिपटल पर रहती हैं और उनके जीवन को संस्कारित करती है। रामायण की कथा, महाभारत की कथा, क़िस्सा तोता मैना, राजा भर्तृहरि की कहानी, सारंगा-सदावृक्ष या फिर आल्हा-ऊदल की कहानी हम सबने अपने बचपन में अपने माता-पिता या बुज़ुर्गों से सुनी होगी। ये क़िस्सा-कहानियाँ अगर लोककंठ पर जीवित नहीं रहतीं, तो कब की लुप्त हो गई होतीं। आज भी सत्यनारायण की कथा कहने और सुनने की परंपरा है। यह अलग बात है कि संचार की सुविधा के लिए इसे धर्म के परिधान में लपेटा गया। जनसंचार का यह प्रारंभिक रूप था, जो आधुनिक संचार साधनों के आगमन से भी नष्ट नहीं हुआ। इसकी उपादेयता आज भी बनी हुई है। बहुत सारे संदेश समाज को इस माध्यम से दिए जाते हैं और शायद दिए जाते रहेंगे। प्रारंभ में संचार की गति

अत्यंत सीमित थी। नाट्य कृतियों को मंचन के माध्यम से रचित अमूल्य कथा-साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य रंगमंच के माध्यम से संभव है। `अभिज्ञान शाकुंतलम्`, `रघुवंशम्`, `स्वप्नवासदत्त`, `मृच्छकटिकम्` आदि अनेक ख्यातिप्राप्त नाट्य रचनाएँ मंचित होकर जनमानस तक पहुँची। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संचार के पारंपरिक माध्यमों ने साहित्य को एक सीमित दायरे से बाहर निकाल कर लोकहित और लोकरंजन की दिशा में इसे आगे बढ़ाया। इसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि संरक्षण के कार्य की रही। साहित्य और उसके माध्यम से संस्कृति का संरक्षण इसके द्वारा संभव हो सका।"[16]

आकाशवाणी द्वारा जहाँ एक ओर सुगम और शास्त्रीय संगीत, समाचार एवं सूचनाओं का प्रसारण होता है तो दूसरी ओर नाटकों, कविताओं के अतिरिक्त साहित्य की अन्य विधाओं का प्रसारण कर आम जनता की साहित्यिक रुचियों को तुष्ट करने का प्रयास भी किया जाता है। आकाशवाणी द्वारा वैसी रचनाओं का प्रसारण किया जाता है जो उस विधा का प्रतिनिधित्व करती हों। आकाशवाणी द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ सूचना भी प्रदान किया जाता है, पर इसके द्वारा साहित्य-सृजन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित भी किया जाता है। "पत्रकारिता रेडियो के माध्यम से शिक्षा, सामाजिक जागरूकता, सामाजिक परिवर्तन और स्वस्थ मनोरंजन के क्षेत्र में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा रही है। रेडियो से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की श्रृंखला लंबी है। सभी प्रसारण-विधाएँ व्यापक जनसमुदाय द्वारा रुचिपूर्वक सुनी जाती है। चाहे शास्त्रीय संगीत का कोई कार्यक्रम हो या हलके मनोरंजन का, ज्ञानवर्द्धक वार्ता हो अथवा हलका-फुलका हास्य कार्यक्रम, नाटक हो या डॉक्यूमेंट्री, न्यूज़रील हो अथवा समाचार, विज्ञान का कोई कार्यक्रम हो या महिला जगत का, साहित्यिक पत्रिका हो अथवा कृषि जगत का कोई कार्यक्रम, फ़िल्मी गीतों का कार्यक्रम हो या लोकगीतों का.....इन सब में पर्याप्त रुचि रखने

वाले श्रोता मौजूद हैं।"[17]

अफ़सोस के साथ यह यहाँ बात लिखनी पड़ रही है कि जो साहित्य आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया गया उसका आलेख लिखित रूप में प्राप्त करना बहुत कठिन है। इस शोधछात्र ने कई आकाशवाणी केंद्रों पर स्वयं पहुँच कर आलेख प्राप्त करना चाहा, किंतु निराशा ही हाथ लगी। "समाचारों के अतिरिक्त जिनमें केंद्रीय एवं प्रादेशिक समाचार सम्मिलित हों, उच्चरित शब्द यानी स्पोकन वर्ड के अंतर्गत वार्ता, परिचर्चा, काव्य पाठ, कहानी, नाटक, रूपक, भेंटवार्ता, परिसंवाद आदि विधाओं के माध्यम से ये केंद्र हिंदी की समृद्धि एवं विकास में अपना योगदान दे रहे हैं। इनमें से कुछ विधा रेडियो की अपनी है। इसकी शैली बिल्कुल अपनी है और प्रिंट मीडिया से अलग करती है। रेडियो के नाटकों की भी अपनी विशेषता है। इस दृष्टि से यानी हिंदी के विकास में, इसके प्रचार-प्रसार में रेडियो के योगदान का आकलन अलग से किया जाना चाहिए। यह क्षेत्र आज तक अछूता है। विभिन्न आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारित विधाओं के श्रेष्ठ साहित्य का संकलन भी उपलब्ध नहीं है। अतः बड़े साहित्य का भंडार पाठकों तथा अध्येताओं की पहुँच से बाहर रह गया है।"[18]

निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य की अनुपलब्धता के कारण हिंदी साहित्य के विकास में इसने जो योगदान किया है, उसका आकलन करना कठिन अवश्य है। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य का अंकन किया जाना चाहिए और लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध होना चाहिए। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य की रिकार्डिंग इसके संग्रहालय में उपलब्ध है, किंतु इसका अनुशीलन तभी संभव है जबकि यह लिखित रूप में उपलब्ध हो; परंतु अब इस दिशा में कुछ प्रयास अवश्य किए जा रहे हैं। "अभी हाल में

आकाशवाणी महानिदेशालय ने इस दिशा में एक छोटा-सा प्रयास किया है। प्रसिद्ध साहित्यकार अज्ञेय तथा बनारसी दास चतुर्वेदी से ली गई भेंटवार्ता को पुस्तक का स्वरूप देकर प्रकाशित किया गया है। अज्ञेय की पुस्तक का नाम है- 'अज्ञेय अपने बारे में'। दोनों अमूल्य भेंटवार्ताओं की रिकार्डिंग दिल्ली स्थित संग्रहालय में उपलब्ध है। आकाशवाणी दिल्ली स्थित संग्रहालय में हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारों का साहित्य, टेप में सुरक्षित है। इसे साहित्य-संसार को मुद्रित कर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। विद्वानों की सूचना के लिए यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा कि राष्ट्रकवि दिनकर के स्वर की चार घंटे की रिकार्डिंग आकाशवाणी के संग्रहालय में उपलब्ध है।"[19]

3.(ग). प्रमुख विधाओं की टेकनीक में परिवर्तन और उनकी रूपरेखा

आकाशवाणी अभिव्यक्ति का एक ध्वन्यात्मक माध्यम है अर्थात ध्वनि माध्यम से साहित्य का पूरा प्रभाव अथवा उसकी रस-बोधात्मकता को ध्वनि प्रभाव से ही आम जनता में प्रचलित किया जाता है। इसीलिए तमाम विधाओं में ध्वन्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए निश्चित परिवर्तन की आवश्यकता थी और वे परिवर्तन किए गए। 'आकाशवाणी' का जो ध्वनि द्वारा संप्रेषण का तरीक़ा है, वह संचार का एक अति प्राचीन माध्यम है। इस माध्यम का विकास शनैः-शनैः हुआ है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस माध्यम की 'टेकनीक' में निरंतर परिवर्तन होता आया है। चाहे वह सूचनाओं के संप्रेषण की बात हो या साहित्य संप्रेषण की- इसकी टेकनीक में परिवर्तन किया गया है। "भारत के कुछ आदिवासी समाज में जनसंचार का एक नायाब तरीक़ा अपनाया जाता था जब 'चिल्लाहट', 'चीख' या उच्च स्वर में आवाज़ लगाकर सूचनाएँ संप्रेषित की जाती थीं। सुनने वाला व्यक्ति इसी प्रक्रिया को अपना कर उसे आगे की ओर संचरित कर देता था। यह क्रिया तब तक दुहराई जाती थी जब तक एक समुदाय या गाँव के सभी लोगों तक

यह सूचना नहीं पहुँच जाती थी। शत्रु के आक्रमण के समय लोगों को सचेत करने में संचार की यह पद्धति अत्यंत कारगर सिद्ध होती थी। ढोल, नगाड़े, तुरही जैसे वाद्य, जिनकी ध्वनि तीव्र होती है, के उपयोग का उल्लेख भी, हमें ऐतिहासिक वृत्तांतों, पौराणिक कहानियों में मिलता है।"[20]

समाज ज्यों-ज्यों विकसित होता गया, त्यों-त्यों युगीन परिस्थितियों के कारण संप्रेषण की तकनीक में परिवर्तन आता गया। आकाशवाणी द्वारा पत्रकारिता तथा साहित्यिक विधा की रचनाओं में अपनी सुविधानुसार 'टेकनीक' में परिवर्तन कर प्रसारित किया जाता है। समाचार, फ़ीचर, आँखों देखा हाल, न्यूज़ रील, रेडियो रिपोर्ट, समाचार दर्शन, फ़ोकस आदि ऐसी रेडियो-विधाएँ हैं जो पत्रकारिता से संबंध रखती हैं। वहीं वार्ता, साक्षात्कार, कवि सम्मेलन, विविधा, विचार गोष्ठी, काव्यपाठ, नाटक, एकांकी, कहानी आदि ऐसी कई साहित्यिक विधाएँ हैं जिनके 'टेकनीक' में परिवर्तन कर आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया जाता है। इनके अतिरिक्त बच्चों का कार्यक्रम, महिला कार्यक्रम, युवा कार्यक्रम, कृषकों के लिए, जवानों के लिए, आज का विचार, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम आदि समय-समय पर प्रसारित किए जाते हैं।

साहित्य और कला की जो भी परिभाषा हो, उसके दो स्वरूपों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता, एक आत्माभिव्यक्ति और दूसरा, अभिव्यक्ति का संप्रेषण। आत्माभिव्यक्ति सर्वथा कला ही हो, यह कहना मुश्किल है, किंतु इतना निश्चित है कि वह एक 'स्वयं-जन्मी प्रक्रिया' है, जबकि संप्रेषण एक सुनियोजित पद्धति की अपेक्षा रखता है। साहित्य के किसी भी विधा को जन-जीवन तक पहुँचाने के लिए संप्रेषण के उपादानों की आवश्यकता होती है। साहित्य का सृजन करना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उस साहित्य को जन-जीवन तक पहुँचाना। संप्रेषण के उपादन के रूप में रेडियो तो

कार्य कर सकता है, परंतु साहित्य के क्षेत्र में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि का संप्रेषण मुख्यतः मुद्रण माध्यम के ज़रिये होता है; किंतु जहाँ तक आकाशवाणी द्वारा संप्रेषण की बात है उसके द्वारा संप्रेषण का अपना एक अलग ढंग है, एक अलग 'टेकनीक' है, जो अन्य माध्यमों से सर्वथा अलग है। साहित्य की कोई भी विधा जब आकाशवाणी द्वारा प्रसारित की जाती है तो इस 'टेकनीक' का ख्याल रखा जाता है और परिवर्तन के बाद ही उसे प्रसारित किया जाना संभव हो पाता है। यही विशेषता आकाशवाणी को अन्य माध्यमों से अलग करती है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कोई भी विधा जो पहले साहित्यिक विधा थी, 'टेकनीक' में परिवर्तन के बाद रेडियो की विधा बन जाती है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य का अपना एक अलग शिल्प होता है। इस शिल्प को साहित्यिक विधाओं में रूपायित करने के लिए कई कौशलों और उपायों की आवश्यकता पड़ती है, जिन्हें हम 'रेडियो की टेकनीक' कह सकते हैं। उदाहरण के लिए इसमें किसी बात को वाचक द्वारा कहने के बजाए उसे ध्वनि-प्रभावों (sound effects) के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। आकाशवाणी का प्रसारण शुरू ही होता है संकेत-ध्वनि (AIR Signature Tune) से। आकाशवाणी की संकेत-ध्वनि सुनकर ही श्रोता समझ जाते हैं कि अब प्रसारण शुरू होने वाला है। हर कार्यक्रम के लिए अलग-अलग संकेत-ध्वनियों का निर्माण आकाशवाणी केंद्रों द्वारा किया जाता है। विशेष कार्यक्रमों की शुरुआत में और अंत में इन संकेत-ध्वनियों का प्रसारण होता है। कार्यक्रमों की पहचान कराती हैं ये संकेत-ध्वनियाँ। "नाटक को जीवंत बनाने तथा आवश्यक वातावरण की सृष्टि के लिए ध्वनि प्रभाव का उपयोग रेडियो नाटक में किया जाता है। बिना ध्वनि प्रभाव के नाटक छूँछा, एवं प्रभाव हीन लगेगा। उदाहरण के लिए अगर नायक और नायिका समुद्र किनारे टहल रहे हैं, तो उनकी बातचीत के पीछे समुद्र के लहरों की ध्वनि अवश्य सुनाई देनी चाहिए, अन्यथा यह अस्वाभाविक लगेगा और श्रोता को समुद्र का किनारा और किसी अन्य निर्जन

प्रदेश में हो रही बातचीत में कोई अंतर ही नहीं मालूम पड़ेगा। इसी प्रकार, अगर नाटक का कोई पात्र ट्रेन की यात्रा कर रहा हो, तो स्वाभाविकता की सृष्टि के लिए 'ट्रेन की आवाज़', 'पटरी बदलने का स्वर', 'ट्रेन की सीटी', 'स्टेशन पर का शोर' आदि की ध्वनि का उपयोग आवश्यक होगा, अन्यथा नाटक का यह अंश 'फ़्लैट' माना जाएगा और श्रोता पर आवश्यक प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम होगा। रात्रिकाल की नीरवता को दर्शाने के लिए 'झींगुर की झनझनाती आवाज़', 'कुत्तों का बीच-बीच में भूंकना', ग्रामीण अंचल में 'सियार की दिल-दहलाने वाली आवाज़' सीन को रूपायित (Establish) करने के लिए आवश्यक होती है। नाटक की प्रस्तुति में 'ध्वनि-प्रभाव' का नियोजन दो प्रकार से किया जाता है- पहले ध्वनि-प्रभाव को हम 'स्पॉट साउण्ड इफेक्ट' या 'सद्यः ध्वनि-प्रवाह' की संज्ञा दे सकते हैं। दूसरे प्रकार के ध्वनि प्रभाव 'पूर्व ध्वन्यांकित ध्वनि-प्रभाव' होते हैं, जिन्हें 'साउण्ड लाइब्रेरी' से प्राप्त कर नाटक के संपादन के समय उपयोग में लाया जाता है।"[21]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रम अपनी प्रकृति में मुद्रण-माध्यम तथा श्रव्य-दृश्य-माध्यम की प्रकृति से सर्वथा भिन्न हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि उसकी भाषा भी अपनी प्रकृति में इन माध्यमों से भिन्न है। इस भिन्नता का कारण आकाशवाणी की ध्वन्यात्मकता है। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी की अपनी भाषा है। इस भाषा की विशेषता आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों की लेखन-शैली में देखा जा सकता है। हम यह भी कह सकते हैं कि रेडियो द्वारा 'भाषा' नहीं, 'ध्वनि' प्रसारित की जाती है। 'ध्वनि-प्रभाव' के द्वारा ही हम जीवन की विविधता को दर्शाने में सफल हो सकते हैं।

डॉ. हरिमोहन ने अपनी पुस्तक 'रेडियो और दूर-दर्शन पत्रकारिता' में 'ध्वनि-प्रभाव' की विस्तृत चर्चा की है। वे लिखते हैं, "ध्वनियाँ, जो एक रेडियो कार्यक्रम का

निर्माण करती हैं, कटिंग के द्वारा आपस में अंतर्ग्रथित रहती हैं। इस प्रक्रिया में प्रोड्यूसर प्रत्येक ध्वनि के कार्य को अच्छी तरह समझता है। वह यह निर्णय लेता है कि अमुक ध्वनि समूचे ढाँचे में शब्द का अथवा वाक्य विधान का एक हिस्सा बन सकेगी अथवा नहीं। ध्वनि प्रभाव जब किसी कहानी का हिस्सा कहते हैं, तो शब्द का काम करते हैं। उदाहरण के लिए घड़ी का टिक-टिक के बाद पाँच बार घंटी बजती है, तो वह एक वाक्य बन जाती है- कि पाँच बज गए। यानी उससे बिना किसी वाक्य के पाँच बजने की सूचना मिल जाती है। और जब किसी संवाद को उस ध्वनि से पहले अथवा बाद में बोल दिया जाता है, तो 'वाक्य' पूरा हो जाता है। हमें यह भी पता चल जाता है कि एक्शन कौन पात्र कर रहा है, और क्यों? इस तरह हमारे मानस-पटल पर एक स्पष्ट दृश्य बन जाता है। उदाहरण के लिए मेरे एक रेडियो नाटक में घड़ी का टिक-टिक के बाद बारह घंटे बजते हैं। एक स्त्री-स्वर, "बारह बज गए...वे अभी नहीं आए..."। बीच में ही, बच्चे के कराहने का धीमा स्वर। हलका-सा उसे थपथपाने की ध्वनि, और स्त्री-स्वर, "सो जा बेटे, पापा आते ही होंगे, तुझे डॉक्टर को दिखा देंगे...चिंता मत कर जल्दी ठीक हो जाएगा"।

इतने से ही एक दृश्य हमारे भीतर बन जाता है कि कोई माँ घर पर अकेली है, उसका बच्चा बीमार है। रात के बारह बज गए हैं, किंतु अभी तक उसका पति घर पर नहीं लौटा है।

ध्वनि-प्रभाव, बेशक जब शब्द व संगीत के माध्यम से पैदा किए जाते हैं, पात्र की मनोदशा को व्यक्त करते हैं।"[22]

आकाशवाणी द्वारा जो भी कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है, उसके लिए पहली अनिवार्य शर्त है कि वह लिखित रूप में होनी चाहिए। लिखित आलेख के बिना

किसी भी विधा का प्रसारण न तो संभव है और न इसके लिए अनुमति दी जा सकती है। अल्प उद्‌घोषणा से लेकर लंबी अवधि के कार्यक्रम तक का आलेख तैयार करना हर प्रस्तुतकर्ता के लिए अनिवार्य होता है। रेडियो प्रसारण के लिए आलेख के लेखन में एक विशेष तकनीक की आवश्यकता होती है। रेडियो एक श्रव्य माध्यम होने के कारण इसकी संप्रेषणीयता इतनी सशक्त होती है कि वह किसी भी श्रोता के कानों में पड़ते ही अपना चित्र श्रोता के मस्तिष्क में बना लेती है। यहाँ शब्द ध्वनिरूप में श्रोताओं के कानों में पड़ते हैं। ये शब्द ऐसे होते हैं जो सहज रूप से श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लेने में सक्षम होते हैं।

रेडियो की भाषा में भी परिवर्तन किया जाता है। रेडियो नाटक हो, वार्ता हो या कोई भी अन्य विधा जो रेडियो में उपयोग के लिए लिखी जा रही होती है, उसमें उन शब्दों का प्रयोग होता है जो सामान्य बोलचाल के होते हैं और आम आदमी, जिसको आसानी से समझ सकता है, उसे किसी शब्दकोश की ज़रूरत नहीं पड़ती है और न किसी शिक्षित व्यक्ति से शब्दार्थ पूछने की। वाक्य सरल, छोटे-छोटे, शुद्ध तथा रोचक होते हैं। विषयानुसार उनमें प्रभाव-क्षमता होती है। प्रत्येक कार्यक्रम के लिए समयसीमा पहले से ही निर्धारित रहती है। इसलिए निर्धारित समय के भीतर ही लेखक को अपनी पूरी बात कहनी पड़ती है और यहाँ तक कि निर्धारित समय से कम से कम एक मिनट पूर्व ही अपना आलेख, वार्ता, कहानी, कविता, नाटक या कोई अन्य विधा समाप्त करना पड़ती है, क्योंकि इस एक मिनट में उद्‌घोषक को उद्‌घोषणा देनी होती है। किसी-किसी कार्यक्रम में तो उस विशेष कार्यक्रम के लिए शुरुआत और अंत में संकेत-ध्वनि का प्रसारण किया जाता है, जिसे 'Signature Tune' कहा जाता है। यदि संकेत-ध्वनि का प्रसारण करना होता है तो कार्यक्रम को और छोटा बनाया जाता है। रेडियो के लिए लिखे गए आलेख में एक और विशेष बात का ध्यान रखा जाता है, वह यह कि जिस श्रोता वर्ग के लिए लेखन किया

जाता है, उस वर्ग की भाषा और संस्कृति को ध्यान में रखा जाता है; क्योंकि आकाशवाणी में विभिन्न वर्गों के लिए अलग-अलग कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। "रेडियो की शब्दावली तीन तरह की सामग्री से निर्मित होती है : वाक् (speech), ध्वनि-प्रभाव (जिसमें संगीत भी शामिल है) (sound effects including music), और मौन (silence) अथवा चुप्पी।

यों तो 'वाक्' यानी वाणी, बिना ध्वनि-प्रभावों के ही सूचना और विचार संप्रेषित करने में सक्षम है, लेकिन रेडियो पर इसका प्रयोग विशेष ढंग से करना पड़ता है। इसमें सरलता ज़रूरी होती है, क्योंकि अमूर्त वाक्यांश जो किसी तरह का दृश्यात्मक बिंब नहीं जगाते, वे हवा में अपना असर खो देते हैं। जटिल तर्क दुबारा पढ़े नहीं जा सकते, यह सुविधा तो मुद्रित वाक्यों को खूब लगातार पढ़ने और उनका अर्थ समझने में है। सरलता ही नहीं, अपितु श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए वक्ता को उतार-चढ़ाव या सुर (pitch), ताल (tempo) और स्वर (tone) में विविधता लानी होती है। दूसरी तरफ़, तथ्यों को सरल रूप में प्रस्तुत करने में एक कठिनाई है, कि रेडियो वाणी की विलक्षणताओं को अतिरंजित कर देता है। लेकिन नाटक के लिए यह एक अच्छी चीज़ है। नाटक में ऐसा करने से चरित्रों का अंतर स्पष्ट करने में सहायता मिलती है, उनके मनोभाव प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हो जाते हैं।"[23]

किसी भी भाषा का तीन रूप है- पहला लिखित रूप, दूसरा मौखिक रूप और तीसरा सांकेतिक रूप। वाणी का संबंध ध्वनि से है। मनुष्य में यह क्षमता है कि वह ध्वनियों को जोड़ कर नए-नए शब्द, नए-नए वाक्य बना सकता है और इन्हीं सार्थक ध्वनियों के योग को हम भाषा कहते हैं। किसी भी भाषा के शुद्ध उच्चारण के लिए ध्वनियों का ज्ञान अनिवार्य है। यदि उच्चारण ग़लत होगा तो श्रोता बात को समझने में पूरी तरह

असमर्थ रहेगा और प्रसारण की उपयोगिता सिद्ध नहीं हो पाएगी। हर ध्वनि का अपना निजी गुण होता है। किसी ध्वनि को कम बल लगा कर बोला जाता है, किसी को अधिक बल लगा कर, किसी ध्वनि के उच्चारण में अधिक समय लगाया जाता है तो किसी में कम। "रेडियो मुख्य रूप से एक ध्वनि माध्यम है। उच्चारण उसका मूल है। हम जो उच्चरित करते हैं, वही संप्रेषित होता है। अगर उच्चारण त्रुटिपूर्ण होगा तो संप्रेषण खंडित होगा। अतः चाहे हम किसी भी भाषा के माध्यम से संप्रेषण करते हों, उनके शब्दों के उच्चारण में शुद्धता अति आवश्यक है अन्यथा अर्थ में भेद होगा और कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।"[24] शुद्ध उच्चारण के बल पर ही हम अपनी बात में वज़न डाल सकते हैं तथा प्रभावोत्पादक बना सकते हैं। भाषा में उच्चारण-शुद्धि के साथ-साथ एकरसता भी नहीं होनी चाहिए। एक सुर और सपाट लय में बोलने के कारण कार्यक्रम कभी-कभी श्रोताओं को अप्रिय भी लग सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में 'ध्वनि' का विशेष महत्त्व है और यही इसकी टेकनीक में परिवर्तन की रूपरेखा है। प्रसारण में मौन अर्थात 'पॉज' एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। यह 'पॉज' शब्दों पर ज़ोर दे सकता है और सुनने वाला इतना समय पाकर कही गई बात को समझने में देर नहीं लगाता। लगातार एक ही तरह की ध्वनियों के प्रवाह से नीरसता उत्पन्न हो सकती है, किंतु 'पॉज' लय पैदा करने और समग्र ध्वनि-संरचना को संतुलित करने में अत्यंत सहायक होता है। यह 'पॉज' लिखित साहित्य में नहीं होता और न इस बात पर कोई ध्यान देता है। अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रेडियो एक 'ध्वनि माध्यम' है और इसके बिना यह माध्यम बिल्कुल उपयोगी नहीं है।

3.(घ). विशिष्ट विधाओं का विकास

जो विधाएँ साहित्य में प्रचलित हैं उनमें से कई विधाओं को आकाशवाणी ने ग्रहण किया साथ ही साथ कई विशिष्ट विधाओं को जन्म भी दिया। समाज के विभिन्न वर्गों के लिए उनकी रुचियों को ध्यान में रखकर आकाशवाणी द्वारा कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। अतः विभिन्न वर्ग के श्रोता अपनी-अपनी रुचियों के अनुसार कार्यक्रमों को सुनते हैं। किसी को फ़िल्म संगीत पसंद है तो किसी को शास्त्रीय संगीत, कोई नाटक सुनना चाहता है तो कोई वार्ता, किसी को खेल से संबंधित कार्यक्रम पसंद है तो किसी को शिक्षा संबंधी कार्यक्रम। इन्हीं विभिन्न वर्गों की रुचियों को ध्यान में रख कर आकाशवाणी ने कई विशिष्ट विधाओं को विकसित किया और वे विधाएँ सामान्य श्रोताओं से लेकर विशिष्ट वर्ग के श्रोताओं के बीच लोकप्रिय हुईं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और इस नाते वह समाज में घटित घटनाओं के विषय में जानकारी लेना चाहता है। इन घटनाओं से हम प्रभावित भी होते हैं। समाचार के माध्यम से व्यक्ति समाज और देश से जुड़ता है और आकाशवाणी सूचना देने का कार्य बखूबी करती है। सूचना के साथ-साथ मनोरंजन और शिक्षा प्रदान करना भी आकाशवाणी के दायित्वों में शामिल है। सूचना के क्षेत्र में 'साप्ताहिकी', 'न्यूज रील', 'रेडियो रिपोर्ट', 'वर्ल्ड दिस विक' आदि कार्यक्रमों को आकाशवाणी द्वारा विकसित किया गया हैं। इसी तरह शिक्षा के क्षेत्र में साहित्य की कई विधाओं को आकाशवाणी ने स्वयं विकसित किया है। जैसे- रेडियो वार्ता, परिचर्चा, साक्षात्कार, रेडियो रूपक इत्यादि। "रेडियो से जो कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, उनमें प्रमुख हैं संगीत, समाचार, समीक्षा, नाटक, रूपक, वार्ता, परिचर्चा, सूचना आदि। रेडियो नाटक, रूपक, समीक्षा, वार्ता, परिचर्चा, आदि कुछ ऐसी विधाएँ हैं, जिनका जनक रेडियो ही माना जाता है।"[25]

3.(घ).1. वार्ता

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में वार्ता रेडियो की एक ऐसी विधा है जो हर वर्ग के श्रोताओं के लिए प्रसारित की जाती है। "रेडियो-वार्ता का क्षेत्र भी रेडियो से प्रसारित विभिन्न प्रकार की रचनाओं की अपेक्षा बहुत व्यापक है, कविता, कहानी, नाटक आदि का रचना केवल साहित्यकार ही करते हैं, पर रेडियो-वार्ता साहित्य से परे रहने वाले वैज्ञानिक, राजनीतिक, प्राध्यापक आदि सभी वर्गों के व्यक्तियों को प्रसारित करनी पड़ती है।"[26] आकाशवाणी द्वारा प्रसारित वार्ताओं की भाषा सरल एवं बोधगम्य होती है। रेडियो चूँकि वाचिक और श्रव्य माध्यम है इसलिए इसके सभी कार्यक्रमों की भाषा बोलचाल की भाषा होती है। "इस रेडियो वार्ता की शैली तो बातचीत की रहती है, या रहनी चाहिए, पर इसमें भागीदारी मात्र एक व्यक्ति की होती है।"[27] यह कहा जा सकता है कि 'वार्ता' रेडियो की अपनी विधा है। किसी भी विषय पर अपने श्रोता को कम से कम समय में अधिक से अधिक जानकारी देने की कला वार्ता है। अधिकारी द्वारा निर्धारित समय में वार्ताकार को अपनी पूरी बात को समेटना कम आसान काम नहीं है। "The most important department, the most difficult to manage successfully, and the most difficult to describe simply is the Talks Department, which has to deal with immense variety of subjects in a variety of ways."[28]

रेडियो-वार्ता की अपनी एक ख़ास विशेषता होती है जिसे रेडियो-श्रोता सुनने के लिए बाध्य होते हैं। यदि श्रोता को 'वार्ता' समझने में कोई रुचि नहीं है, तो वह उस प्रसारण को सुनना नहीं पसंद करेगा और हो करता है वह रेडियो का 'स्विच ऑफ़' कर दे या किसी अन्य केंद्र से प्रसारित कार्यक्रम को सुनने लगे। इसलिए वार्ताकार 'वार्ता' को लिखते समय सरसता, सरलता और बोधगम्यता पर ध्यान देता है और 'वार्ता' को

प्रसारित करते समय सहजता पर। "अतः रेडियो की वार्ता को सहज, सरल, सरस तथा बोधगम्य होना चाहिए। कठिन शब्द, लंबे-लंबे वाक्य अत्यधिक आँकड़ों का प्रयोग, वार्ता को नीरस बनाते हैं। ध्यान रहे वार्ता को सुनने वाला श्रोता, शब्दकोश का मुहताज नहीं बन सकता। वार्ता तो इतनी बोधगम्य होनी चाहिए कि वार्ता की आत्मा को वह बिना मस्तिष्क पर दबाव डाले समझ ले।"[29] वार्ता के विषय में कुछ इसी तरह का विचार अन्यत्र मिलता है, जिससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है, "वार्ता प्रसारित करते समय ऐसा मानकर चलना चाहिए कि हम आत्मीयतापूर्वक एक या दो व्यक्तियों से प्रत्यक्ष होकर बातचीत कर रहें हैं, तभी वार्ता में आत्मीयता का आभास होगा तथा श्रोता को भी अपनापन लगेगा।"[30]

आकाशवाणी से प्रसारित किसी वार्ता को सफल तभी माना जाएगा, जबकि वार्ता को सुनने के बाद कोई भी श्रोता तुरंत अपने मस्तिष्क में चित्र बना ले, उसे बिना किसी रुकावट के वह उस वार्ता को समझ ले। शब्दकोश की सहायता न लेनी पड़े या किसी विद्वान से संपर्क न करना पड़े। वैसे वार्ता की समय 10 मिनट से 15 मिनट तक निर्धारित की जाती है। परंतु आजकल यह समय 4 से 5 मिनट तक रह गया है। लंबी अवधि की वार्ता आज का कोई श्रोता सुनना पसंद नहीं करता है। " A talker is allotted only a limited time, say 10 or 15 minutes (sometimes even 5) and he has to say all that he wants to during this period. Within this time-limit the talker has no scope for beating about the bush. He must have a direct approach to his subject and grip the listener's attention with a lucid and gripping exposition of the subject."[31]

'वार्ता' आकाशवाणी की मूल विधा है जो प्रत्येक कार्यक्रम के लिए, प्रत्येक

क्षेत्र के लिए उपयोगी है। इसके निर्माण में सबसे कम समय लगता है। कभी-कभी तो इसकी रिकार्डिंग की ज़रूरत भी नहीं पड़ती है। इसका सीधा प्रसारण कार्य पर उपस्थित उद्घोषक ही कर देता है, परंतु वार्ताकार अपनी आवाज़ में इसे प्रसारित करे तो इसे समझने में और आसानी होती है। " After a talk has been written it has to be broadcast by the writer."[32] 'वार्ता' की शैली को आकर्षक बनाना एक कुशल वार्ताकार का दायित्व होता है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका प्रयोग वार्ता में नहीं किया जाता है। जैसे उपर्युक्त, निम्नलिखित, इत्यादि। वार्ता का उद्देश्य अधिकाधिक लोगों का कल्याण और मनोरंजन होना चाहिए। "रेडियो-वार्ता अधिकाधिक लोगों की समझ में आ सके, इसके लिए आवश्यक है कि वार्ता की भाषा उन लोगों की भाषा हो, जिनके लिए वार्ता प्रसारित की जा रही है।"[33]

आकाशवाणी से जुड़े कुछ प्रमुख वार्ताकार हैं:- डॉ. धर्मवीर भारती, रामनरेश पाठक, फणीश्वरनाथ रेणु, विष्णु प्रभाकर, विनोबा भावे, रामवृक्ष बेनीपुरी, जयप्रकाश नारायण, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', डॉ. सिद्धनाथ कुमार, हरिभाऊ उपाध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, विश्वम्भरनाथ पाण्डेय, जैनेन्द्र कुमार इत्यादि।

3.(घ) 2. परिचर्चा

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों में परिचर्चा एक प्रमुख कार्यक्रम है तथा इस कार्यक्रम की शुरुआत आकाशवाणी द्वारा ही की गई है। आकाशवाणी द्वारा सर्वप्रथम अँग्रेज़ी में वार्ताओं और परिचर्चाओं के राष्ट्रीय कार्यक्रम के प्रसारण की शुरुआत 29 अप्रैल, 1953 से की गई तथा हिंदी में वार्ताओं और परिचर्चाओं का अखिल भारतीय कार्यक्रम के प्रसारण की शुरुआत अगस्त, 1963 ई. से की गई।

परिचर्चा का विषय समसामयिक होता है तथा इसका चयन तात्कालिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर किया जाता है। इस परिचर्चा में उन्हीं लोगों को अनुबंधित किया जाता है, जो उस क्षेत्र के अधिकृत व्यक्ति हैं। परिचर्चा में संचालक के अतिरिक्त तीन-चार व्यक्ति भाग लेते हैं। परिचर्चा की प्रसारण-अवधि 20 मिनट से 30 मिनट तक निर्धारित की जाती है। "परिचर्चाएँ स्वाभाविक, जीवंततापूर्ण तथा ज़ोरदार होनी चाहिए। इनमें संजीदगी के साथ-साथ सचाई होनी चाहिए। ये विषय से हटकर नहीं होनी चाहिए। वार्ता का मुख्य उद्देश्य किसी ख़ास विषय पर दिलचस्प तरीक़े से जानकारी देना है न कि उसे साहित्यिक मोड़ देना। प्रसारण का उद्देश्य केवल संप्रेषित ही नहीं करना है, बल्कि उसे कार्य के लिए प्रेरित भी करना है। यदि आकाशवाणी से सामयिक और विवादास्पद मामलों पर स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से विचार नहीं किया जा सकता तो वार्ताओं और परिचर्चाओं के कार्यक्रम की कोई विशेष उपयोगिता नहीं रह जाती।"[34]

'परिचर्चा' की विस्तृत चर्चा करते हुए अपनी पुस्तक 'Broadcasting in India' में जी. सी. अवस्थी ने इस प्रकार उल्लेख किया है, "A discussion is in many ways an extension of a talk. A discussion should be as natural, lively and vigorous as possible. It should not be allowed to become digressive, long drawn-out, enameled in minor irrelevancies, as often happens in a drawing-room discussion. A radio discussion should have the freshness, sincerity and contour of a drawing-room discussion but not its laxity. A well- produced discussion can be a rewarding listening. The participants are in a more natural frame of mind, discussing as they are amongst themselves, a subject of their liking, quite oblivious of the fact that they are being listened to by others. But we should not

imagine that a discussion implies the bringing together of few persons and throwing a subject amidst them."[35]

3.(ख).3. साक्षात्कार

आकाशवाणी द्वारा विशिष्ट व्यक्तियों से लिया गया साक्षात्कार समय-समय पर प्रसारित किया जाता है। किसी विशेष कार्य के लिए सम्मान या पुरस्कार प्राप्त व्यक्तियों के विषय में आम व्यक्ति जानना चाहता है। ऐसे विशिष्ट लोगों से बातचीत करने के लिए आकाशवाणी के अधिकारी या बाह्य व्यक्ति को अनुबंधित किया जाता है। "साक्षात्कार मोटे तौर पर दो प्रकार के होते हैं। एक, व्यक्तित्व संबंधी साक्षात्कार। दो, ठोस समाचारों के लिए साक्षात्कार। दोनों प्रकार के साक्षात्कार किसी नवीन जानकारी की खोज में किए जाते हैं। किंतु, व्यक्तित्व संबंधी साक्षात्कार में रोचकता, स्थाई महत्त्व की जानकारी अथवा ज्ञान के किसी विशिष्ट क्षेत्र के इतिहास के अभिलेख को समृद्ध करने वाली बातें उजागर होने की अपेक्षा और संभावना विशेष रूप से रहती है। दूसरे प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य ही नई जानकारी निकलवाना, साक्ष्य एकत्र करना, प्राप्त जानकारी की पुष्टि करना, घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी विवरण लेना, उन पर प्रतिक्रियाएँ प्राप्त करना, घटनाओं के कारण और उनसे जुड़े पात्रों की भूमिकाओं का पता लगाना होता है।"[36]

साक्षात्कार रेडियो का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है। इसमें किसी विषय विशेष पर प्रश्नकर्ता विभिन्न व्यक्तियों और समुदायों की राय जानने की कोशिश करता है। इसे भेंटवार्ता भी कहते हैं। "साक्षात्कार का शाब्दिक अर्थ है- देखना, अनुभव करना। 'इंटरव्यू' वह है जो विचारों से जुड़ा है। पारिभाषिक शब्द के रूप में यह शब्द उस विधा के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसमें बातचीत के द्वारा किसी विशिष्ट व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, दृष्टिकोण, जीवन-दर्शन आदि को समझा जाता है। उन्हें सामने लाया जाता है।

यह भेंटवार्ताएँ होती हैं, जिनका उद्देश्य जिज्ञासा-पूर्ति और व्यक्तित्व का उद्‌घाटन होता है। इंटरव्यू या भेंट में किसी व्यक्ति से मिल कर किसी विशेष दृष्टि से प्रश्न पूछे जाते हैं। इसमें इंटरव्यू-लेखक जीवन का पुट देता है और उत्तरों को द्वारा इंटरव्यू के नायक के बाहरी तथा आंतरिक स्वरूप का विशेष अध्ययन भी हो जाता है।"[37]

साक्षात्कार किसी साहित्यकार, कलाकार, राजनैतिक वैज्ञानिक तथा किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्ति का लिया जा सकता है। इसमें उस व्यक्ति की विषय विशेष में क्या राय है इसकी जानकारी ली जाती है। कभी-कभी आम व्यक्ति की भी राय ली जाती है जब समस्या आम आदमी से संबंधित हो; जैसे पर्यावरण, शिक्षा या कोई सरकारी नीति। साक्षात्कार या भेंटवार्ता विचार-विमर्श से भिन्न है। विचार-विमर्श में शामिल सभी व्यक्ति अपनी राय प्रस्तुत करते हैं; जबकि भेंटवार्ता में केवल साक्षात्कारी की बात पर ज़ोर दिया जाता है। प्रश्नकर्ता की भूमिका इस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है कि वह कुरेद-कुरेद कर प्रश्नों के माध्यम से सचाई की तह तक पहुँच सकता है। वस्तुतः साक्षात्कार एक सेतु है जो व्यक्ति और समाज को जोड़ता है। एक अच्छी भेंटवार्ता के लिए आवश्यक है कि जो विशेषज्ञ है वह प्रश्नकर्ता के साथ मिलकर 'नोट्स' तैयार कर ले। वे नोट्स विषय की ख़ास जानकारी संबंधी बिंदुओं पर आधारित हो। साथ ही यह आवश्यक है कि जो प्रश्नकर्ता है, उसे विषय की जानकारी होनी चाहिए। "साक्षात्कार अँग्रेज़ी भाषा के शब्द `interview` का हिंदी रूपांतर है। `interview` को दो भागों (inter=भीतर) तथा (view=देखना)- में विभाजित किया जा सकता है। इसका शाब्दिक अर्थ हुआ, अंतर-दर्शन-आंतरिक रूप से देखना। अर्थात आंतरिक तथ्यों को जानने की प्रक्रिया साक्षात्कार (interview) कहलाता है।"[38]

यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिस विषय को हम वार्ता के माध्यम से

स्पष्ट करने में कठिनाई महसूस करते हैं, उस विषय को साक्षात्कार के माध्यम से सरलता पूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है। यही कारण है कि कई वार्ताकार वार्ता लिखने के बजाय साक्षात्कार देना अधिक पसंद करते हैं। दो व्यक्तियों के वार्तालाप से संबंधित विषय ज़्यादा स्पष्ट हो पाता है। साक्षात्कार के माध्यम से उस विषय की पूरी जानकारी तो श्रोता को मिलती ही है, साथ ही साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व भी उजागर होता है। "साक्षात्कार विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साक्षात्कारकर्ता एवं उत्तरदाता के मध्य आमने-सामने का वार्तालाप या उत्तर-प्रति-उत्तर है। इस प्रविधि में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा सूचना एकत्र की जाती है तथा क्रमबद्ध रूप से लिखी जाती है। इसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति परस्पर आमने-सामने की स्थिति में संवाद या बातचीत करते हैं। इसे सामाजिक प्रक्रिया भी कहा गया है, जिसके द्वारा उत्तरदाता की भावनाओं, विचारों, आंतरिक जीवन का अध्ययन किया जाता है।"[39] इस विधा के विषय में चर्चा करते हुए जोगेन्द्र सिंह लिखते हैं, "साक्षात्कार प्रायः उसी व्यक्ति का लिया जाता है जो चर्चित हो, जिसका किसी भी क्षेत्र में नाम हो, काम हो। जिसका कृतित्व बड़ा हो। वह व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में विख्यात होना चाहिए। इसी स्थिति में उसके उत्तर मूल्यवान होते हैं और श्रोताओं या दर्शकों का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। श्रोताओं या दर्शकों के मन में उस व्यक्ति के व्यक्तित्व, कार्यशैली, विचार दर्शन, दृष्टिकोण, रहन-सहन, आदतों इत्यादि से जुड़ी जिज्ञासाएँ होती हैं। साक्षात्कार उन जिज्ञासाओं को शांत करता है और नई धारणाओं को जन्म देता है।"[40]

साक्षात्कार एक साहित्यिक विधा है। रेडियो में इसकी अच्छी पकड़ है। यह एक अत्यंत महत्त्व वाला कार्यक्रम है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इस विधा का एक ख़ास महत्त्व है। साहित्यिक प्रतिभासंपन्न व्यक्ति तो आकाशवाणी में साक्षात्कार देने के लिए बुलाए ही जाते हैं, साथ ही नेता, अभिनेता, खिलाड़ी, गायक, कलाकार, ख्यातिप्राप्त

चिकित्सक आदि को भी आकाशवाणी समय-समय पर भेंटवार्ता के लिए अनुबंधित करती है। साक्षात्कार के लिए किसी भी प्रकार के विषय का चयन किया जा सकता है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साक्षात्कार 'व्यक्तित्व' प्रधान होते हैं या 'विषय' प्रधान या फिर 'समस्या' प्रधान। किसी भी विषय को साक्षात्कार का विषय बनाया जा सकता है। इसकी प्रसारण अवधि 15 से 30 मिनट तक की होती है। वार्ता की तरह इसमें एकरसता नहीं होती, जिसके कारण श्रोता रुचिपूर्वक सुनते हैं। साक्षात्कार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हम उस कार्य क्षेत्र या विषय के संबंध में उससे सीधा संबंध रखने वाले विशेषज्ञ से उसी के शब्दों में उससे जानकारी प्राप्त करते हैं। इस कार्यक्रम के माध्यम से प्राप्त जानकारी पूर्णतः तथ्यपरक और प्रमाणिक होती है।

3.(घ).4. रेडियो-रूपक

आकाशवाणी ने रेडियो-रूपक का विकास ही नहीं किया बल्कि इसने इस विधा का जन्म भी दिया है। शोधकार्य के दौरान आकाशवाणी से जुड़े एक अवकाशप्राप्त रेडियो नाटक के मशहूर लेखक और प्रस्तुतकर्ता श्री चिरंजीत से शोधार्थी की मुलाक़ात उनके निवास स्थान (मुनिरका, नई दिल्ली) पर दिनांक 9.6.2004 को हुई। रेडियो रूपक के उद्भव और विकास पर गहन विचार-विमर्श हुआ। उनके अनुसार, 'हिंदी का जो आधुनिक नाटक है उसके जन्म और विकास में आकाशवाणी का बहुत बड़ा हाथ है। इसमें आकाशवाणी दिल्ली, पटना और लखनऊ का विशेष योगदान माना जा सकता है। पहले कोई विशेष रंगमंच नहीं था। अतः रंगमंच का स्थान आकाशवाणी ने लिया। नाटककार जयशंकर प्रसाद को छोड़कर बाक़ी सभी नाटककारों को रेडियो ने दिया। रेडियो-नाटकों को ही बाद में 'रंगमंचीय' बनाया गया। पहले रेडियो के लिए ही नाटक लिखे गए। नाटक पढ़ने की चीज़ नहीं है, देखने और मंचित करने की चीज़ है। नाटक कलाकारों द्वारा

अभिनीत होकर समाज तक संप्रेषित होता है। पहले शौक़िया रंगमंच था, व्यावसायिकता रेडियो की देन है। हम यह विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि आधुनिक नाटक रंगमंच से नहीं आया है, रेडियो से आया है।'

रेडियो-रूपकों में पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक, समस्या-मूलक आदि विषयों का चयन किया जाता है। साथ ही रूपक की गति सहज और सटीक होती है, जिसके फलस्वरूप श्रोता इस विधा का स्वागत करने के साथ-साथ भरपूर आनंद उठाते हैं। रेडियो-रूपकों की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं क्योंकि रेडियो-रूपकों को केवल सुना जा सकता है। इसकी एक स्वतंत्र कला है। रंगमंचीय रूपकों की तरह यहाँ कोई संसाधन नहीं होता, मात्र ध्वनि होती है, इसीलिए रेडियो रूपक को 'ध्वनि -रूपक' भी कहा जाता है। यहाँ न तो रंगमंच होता है और न सजावट आदि। सामने दर्शक भी नहीं होते जो कलाकारों के हाव-भाव को देख सकें। यहाँ होती है सिर्फ़ आवाज़ और ध्वनि। आवाज़ से पता चलता है कि पात्र बच्चा है या जवान, बूढ़ा है या बीमार। ध्वनि से पता चलता है कि घर है या बाज़ार, दफ़्तर है या दूकान। ध्वनि के माध्यम से दृश्य परिवर्तन होता है; क्योंकि यहाँ यवनिका नहीं होती।

रंगमंचीय रूपक में कुछ ऐसे दृश्य होते हैं जिसे दिखाया जाना संभव नहीं होता है, परंतु रेडियो-रूपक में ध्वनि के माध्यम से हर तरह का दृश्य उपस्थित करना बिल्कुल आसान होता है। इसमें किसी भी प्रकार के दृश्य, स्थान, काल, पात्र, वातावरण, वेशभूषा आदि की कल्पना श्रोताओं के मन में आसानी से कराया जा सकता है। रेडियो रूपक के तीन प्रधान तत्व हैं- भाषा, संगीत और ध्वनि-प्रभाव। इसकी भाषा अत्यंत सरल, सहज और मधुर होती है जो श्रोताओं को मुग्ध तो करती ही है, साथ ही साथ उन्हें रूपक को सुनने के लिए बाध्य भी करती है। रेडियो-रूपकों में दो रूपों की भाषा का प्रयोग किया

जाता है- कथोपकथन अथवा संलाप और प्रवक्ता के कथन के रूप में। पहला लेखक के कथोपकथन के माध्यम से दृश्यों को प्रस्तुत करना तथा दूसरा घटना-स्थल का वर्णन करना और वातावरण का चित्रण करना। "रेडियो से प्रसारित साहित्य-रूपों में रेडियो-रूपक भी है। यह रेडियो की देन है, और उसकी विशिष्ट विधा है। कविता, कहनी, उपन्यास, नाटक आदि की परंपरा पहले से चली आ रही थी, और या तो उन्हें मूल रूप में या उनके रूपांतर को रेडियो से प्रसारित किया जाता है, पर रेडियो-रूपक नाम की विधा पहले नहीं थी। इस विधा को रेडियो ने ही जन्म दिया है."[41]

रेडियो-रूपक में संगीत का उपयोग विशेष महत्त्व रखता है। विशेषकर वाद्य संगीत का उपयोग। संगीत पात्रों के भावों की अभिव्यक्ति देने और वातावरण का निर्माण करने में सहायक होता है। "संगीत का प्रयोग भोजन में नमक की तरह है। जिस प्रकार अत्यधिक नमक भोजन के स्वाद को बर्बाद कर देता है, उसी प्रकार कम नमक भोजन को रसहीन बना देता है अतः भोजन बनाने वाले को नमक के प्रयोग के समय सावधानी बरतनी पड़ती है। नाटक में संगीत के उपयोग के समय उसी सावधानी की आवश्यकता होती है- न ज़्यादा, न कम। बिल्कुल नपा-तुला।"[42] इसमें दो प्रकार से संगीत का उपयोग किया जाता है। स्वतंत्र रूप में और कथोपकथन के पृष्ठभूमि में (Background Music)। संगीत का प्रयोग आरंभ और अंत में तो निश्चित तौर पर होता है। इसीलिए इसे संगीत रूपक भी कहते हैं। लेकिन संगीत रूपक साहित्यिक विधा न होकर समाचार या किसी घटना पर आधारित होता है। रेडियो रूपक के कई रूप देखने को मिलते हैं। जैसे संगीत रूपक (Musical Feature), वृत्त-रूपक (Documentary), प्रहसन (Comedy), सूचनात्मक रूपक, शिक्षात्मक रूपक, व्यक्तिपरक रूपक, प्रासंगिक रूपक इत्यादि। "रूपक की विधा ने विश्व के सभी प्रसारण केंद्रों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया, क्योंकि अपनी जीवंत शैली के कारण यह श्रोताओं के बीच

अत्यंत लोकप्रिय हुआ। सबसे पहले यह विधा न्यूज़ फ़ीचर से शुरुआत हुई और बाद में सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, प्रासंगिक विषय रूपकों के लिए लिये जाने लगे।

चूँकि यह एक नई विधा थी और साहित्य में इस विधा का कोई स्वरूप नहीं था अतः रूपक लेखकों की निहायत कमी थी पर बाद में रूपक लेखकों की टीम तैयार हो गई और विषय एवं प्रस्तुति की दृष्टि से नये-नये प्रयोग होने लगे। मनोरंजन के साथ जानकारी इस विधा की विशेषता थी अतः लोगों ने इसे अपनाया। आकाशवाणी ने भी नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम की तरह 15 अगस्त, 1956 से रूपकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम की शुरुआत की।"[43] इस क्रम में आकाशवाणी विभिन्न केंद्रों द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण रूपक अखिल भारतीय कार्यक्रम में प्रसारित किए गए। कई विद्वान लेखक विशेष रूप से आकाशवाणी में नियुक्त किए गए थे। जैसे चिरंजीत, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. मधुकर गंगाधर, डॉ. चतुर्भुज, गोपालदास, रमानाथ अवस्थी, हरिश्चंद्र खन्ना इत्यादि। इनकी अतिरिक्त अनेक बाहरी लेखकों ने भी इस विधा को मज़बूत बनाने में अपना अमूल्य योगदान किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि रेडियो रूपक एक साहित्यिक विधा होते हुए भी इसकी शैली इसे विशिष्टता प्रदान करती है। इसका जन्म आकाशवाणी द्वारा हुआ है और इसने विकास भी आकाशवाणी द्वारा ही पाया है। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में इस विधा की खूब चर्चा की गई है और शोधकार्य भी किए गए हैं।

3.(घ).5. गीतों भरी कहानी

आजकल आकाशवाणी के कुछ केंद्रों से गीतों भरी कहानी का प्रसारण किया जा रहा है। यह विधा मूलतः आकाशवाणी द्वारा ही शुरू की गई है। परंतु आजकल

हम यह भी देख रहें हैं कि कुछ रेडियो पत्रिकाएँ इस विधा की रचनाओं को स्थान दे रही हैं, इससे इस विधा की लोकप्रियता का पता चलता है। यह विधा संगीत-नाटिका की है, जिसमें कथा के साथ-साथ उससे मेल खाते गानों को भी शामिल किया जाता है। वाचक और वाचिका कथा वाचन करते हैं और फिर गानों का प्रसारण होता है। वाचन में नाटकीयता होती है। गीतों भरी कहानी की कथा में कथोपकथन के साथ-साथ वाचन भी होता है।

गीतों भरी कहानी में संगीत की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। संगीत पात्रों के भावों को अभिव्यक्ति देने में सहायक होता है, वातावरण के निर्माण में सहयोगी बनता है, एक दृश्य से दूसरे दृश्य तक जाने में सेतु का कार्य करता है और गीतों भरी कहानी में उपस्थित होने वाले रस के परिपाक में अपनी उपयोगिता सिद्ध करता है। गीतों भरी कहानी में जिस रस की सृष्टि हो रही होती है, उस रस को सही आयाम देने में उपयुक्त संगीत की आवश्यकता पड़ती है। गीतों भरी कहानी के प्रस्तुतकर्ता को अत्यंत सोच-समझ कर संगीत का चुनाव करना चाहिए, अन्यथा ग़लत संगीत के प्रयोग से रस-भंग होने का भी ख़तरा रहता है। यद्यपि 'गीतों भरी कहानी' वर्तमान समय में पूर्णतः आकाशवाणी की विधा है, परंतु इस विधा में साहित्यिक सृजन की संभावनाएँ देखी जा सकती है। कभी-कभी साहित्यिक नाटकों अथवा एकांकी के बीच में गीतों और कविताओं के प्रयोग से इस विधा का आभास मिलता है। भारतेंदु के नाटकों से लेकर जयशंकर प्रसाद तक के नाटकों में बीच-बीच में गीतों अथवा कविताओं के प्रयोग में इस विधा की झलक देखी जा सकती है।

3.(घ).6. समाचार-झलकी

समाचार-झलकी रेडियो की एक विशेष प्रकार की विधा है। इस विधा में घटनाक्रम बहुत संक्षिप्त होता है, ताकि उसे एक ही दृश्य में प्रस्तुत कर समाप्त किया जा

सके। इस विधा में विश्लेषण की अवधि बहुत कम होती है। कई घटनाओं में से एक घटना समाचार-झलकी के अंदर प्रस्तुत की जाती है। इसमें छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर श्रव्यात्मक दृश्य बनाया जाता है। रेडियो-झलकी की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें कान के माध्यम से दृश्य दिखाई देने लगता है। रेडियो-श्रोता जो कुछ भी सुनता है, उसके शब्द-बिंबों के माध्यम से, उसके दृश्य को, उसके पात्रों को महसूस करता है। इस विधा के लेखक के सामने एक स्पष्ट उद्देश्य होता है। इसके माध्यम से वह भ्रष्टाचार का विरोध करता है या जनता की किसी समस्या की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करता है। समाचार-झलकी में शामिल क्षणिक दृश्य बड़े ही प्रभावशाली होते हैं। वैसे तो समाचार-झलकियों के माध्यम से किसी भी समस्या को उजागर किया जा सकता है, लेकिन समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, रूढ़ियों या किसी अन्य विषय को लेकर लिखी गई झलकी अधिक सफल हो सकती है।

उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आकाशवाणी ने साहित्य को ध्वन्यात्मक आधार पर स्वीकार किया है। अर्थात अपनी आवश्यकता के अनुरूप उसने साहित्य की विविध विधाओं में परिवर्तन किया है। यहाँ भी द्रष्टव्य है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के विकास में इसकी भूमिका हो सकती है।

****

संदर्भ सूची

1. साहित्य की विधाएँ : पुनर्विचार, डॉ. हरिमोहन, पृ. 77
2. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतरकर, पृ. 15
3. साहित्य की विधाएँ : पुनर्विचार, डॉ. हरिमोहन, पृ. 153
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सुधीन्द्र कुमार, पृ. 240
5. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतरकर, पृ. 73
6. वही, पृ. 82
7. साहित्य की विधाएँ : पुनर्विचार, डॉ. हरिमोहन, पृ. 41
8. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतरकर, पृ. 95
9. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 672
10. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सुधीन्द्र कुमार, पृ. 247
11. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, पृ. 257
12. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार, डॉ. नामदेव उतरकर, पृ. 113
13. भेंटवार्ता और प्रेस कॉन्फ्रेंस, प्रो. (डॉ.) नंदकिशोर त्रिखा, पृ. 28
14. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. सुधीन्द्र कुमार, पृ. 250
15. वही, पृ. 252
16. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 214-215
17. रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 76
18. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 225-226
19. वही, पृ. 226
20. वही, पृ. 15
21. वही, पृ. 110
22. रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, डॉ. हरिमोहन, पृ. 82
23. वही, पृ. 81
24. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 23
25. वही, पृ. 83
26. रेडियो वार्ता-शिल्प, सिद्धनाथ कुमार, पृ. 3
27. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 23
28. The B.B.C. From within, Lord Lord Simon of Wytheneshawe, P 115
29. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 85
30. भारत में जनसंवाद, डॉ. महावीर सिंह, पृ. 84
31. Broadcasting of India, G. C. Awasthy, P. 64
32. वही, पृ. 64
33. रेडियो वार्ता-शिल्प, सिद्धनाथ कुमार, पृ. 109
34. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 43
35. Broadcasting of India, G. C. Awasthy, P. 65
36. भेंटवार्ता और प्रेस कॉन्फ्रेंस, प्रो. (डॉ.) नंदकिशोर त्रिखा, पृ. 31

चतुर्थ अध्याय

आकाशवाणी के प्रमुख केंद्रों से प्रसारित स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का अनुशीलन

चतुर्थ अध्याय

आकाशवाणी के प्रमुख केंद्रों से प्रसारित स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का अनुशीलन

पिछले अध्यायों से यह स्पष्ट हो गया है कि हिंदी साहित्य और आकाशवाणी का संबंध अत्यंत गहरा रहा है। साहित्य ने आकाशवाणी को जहाँ सार्थकता प्रदान की, वहीं आकाशवाणी भी साहित्य को कहीं न कहीं प्रछन्न रूप से ही सही, प्रभावित करती रही है, परंतु यह खेद का विषय है कि साहित्य और आकाशवाणी के इन संबंधों को आज तक आरेखित करने का प्रयास नहीं किया गया। भले ही साहित्य की सभी विधाओं का प्रभाव आकाशवाणी पर पड़ा हो, तमाम ऐसी विधाएँ हैं जिन पर आकाशवाणी के प्रभावों से हम इन्कार नहीं कर सकते। उपर्युक्त क्रम में यह बड़ा समीचीन है कि साहित्य के विविध विधाओं के सापेक्ष आकाशवाणी की भूमिका की परख की जाए। यद्यपि यह कार्य दुष्कर था, क्योंकि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्यिक सामग्रियों का व्यवस्थित संग्रह नियमतः कभी नहीं किया गया और एक निश्चित समय सीमा तक ही ये सामग्रियाँ केंद्रों पर उपलब्ध रहती थीं परंतु बाद में इनका निस्तारण कर दिया जाता था। ऐसे में प्रसारित सामग्रियों की निश्चित सूचना प्राप्त करने के लिए विविध आकाशवाणी केंद्रों के भ्रमण करने पर भी अत्यंत कम सामग्री ही हाथ आ सकीं। व्यक्तिगत प्रयास और कुछ साहित्यकारों के सहयोग द्वारा यद्यपि बहुत कुछ सामग्री मिल सकी, परंतु उनके क्रमवार विश्लेषण में पूर्वापर संबंधों की कमी तो दिखी ही हैं। आज भी ऐसे तमाम पुराने साहित्यकार हैं; जिनकी कुछ प्रकाशित रचनाओं एवं उनके निजी सहयोग से और विभिन्न व्यक्तिगत प्रयासों से प्राप्त कष्टसाध्य सामग्रियों के संकलन से साहित्य और आकाशवाणी के अन्तर्संबंधों के अनुशीलन का प्रयास यहाँ किया गया है।

हिंदी साहित्य और आकाशवाणी का घनिष्ठ संबंध हमेशा से रहा है और साहित्य की विविध विधाओं का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा लगातार होता रहा है। अपने समय के तमाम वरिष्ठ साहित्यकार हमेशा से ही आकाशवाणी से जुड़े रहे और उनके प्रयास से आकाशवाणी अपनी भूमिकाओं को नए-नए रूपों में निभाती रही है। साहित्य के इस आदान-प्रदान में जहाँ एक ओर साहित्य ने आकाशवाणी को विकास के नए रूपों से परिचित कराया, वहीं आकाशवाणी का चरित्र भी साहित्य के अनुरूप ढला। स्वतंत्रता के पश्चात देश में बहुविध विकास और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के साथ-साथ अनेक सामयिक चुनौतियाँ भी सामने आती रहीं, जिनके कारण जन-जीवन व्यापक स्तर पर आंदोलित हुआ। इससे बुद्धिजीवी-वर्ग प्रभावित होने के साथ-साथ प्रेरित हुआ और अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम आकाशवाणी को भी बनाया। आकाशवाणी की पहुँच जन-जन तक थी और इसके अतिरिक्त दूसरा कोई विकल्प नहीं था। आम जनता तक त्वरित गति से सीधे और सरल तथा सहज रूप से पहुँचने का सबसे सस्ता माध्यम आकाशवाणी था।

आकाशवाणी द्वारा साहित्य का प्रसारण आरंभ किया जाना एक ऐतिहासिक कदम था। आकाशवाणी राष्ट्र के बहुआयामी विकास में एक गंभीर दायित्व निभाती है साथ ही यह साहित्य के लगभग सभी विधाओं के विकास में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है; परंतु खेद के साथ यह भी मुझे कहना पड़ रहा है कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है। कुछ विधाओं की रचनाएँ यत्र-तत्र लिखित रूप में उपलब्ध हैं; परंतु सभी विधाओं का लिखित रूप उपलब्ध नहीं है और न उपलब्ध कराने का कोई प्रयास होता दिखाई पड़ता है। "समाचारों के अतिरिक्त जिनमें केंद्रीय एवं प्रादेशिक समाचार सम्मिलित हैं, उच्चरित शब्द यानी स्पोकन वर्ड के अंतर्गत वार्ता, परिचर्चा, काव्य पाठ, कहानी, नाटक, रूपक, भेंटवार्ता, परिसंवाद आदि विधाओं के माध्यम से ये केंद्र हिंदी की समृद्धि एवं विकास में अपना योगदान दे रहें हैं। इनमें से कुछ विधा रेडियो की

अपनी विधा है। इसकी शैली बिल्कुल अपनी है और प्रिंट मीडिया से इसे अलग करती है। रेडियो के नाटकों की भी अपनी विशेषता है। इस दृष्टि से यानी हिंदी के विकास में, इसके प्रचार-प्रसार में रेडियो के योगदान का आकलन अलग से किया जाना चाहिए। यह क्षेत्र आज तक अछूता है। विभिन्न आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारित विभिन्न विधाओं के श्रेष्ठ साहित्य का संकलन भी उपलब्ध नहीं है। अतः एक बहुत बड़े साहित्य का भंडार पाठकों तथा अध्यताओं की पहुँच से बाहर रह गया है।"[1]

'हितेन यः साहित्य, तस्य भाव इति साहित्य' अर्थात जिसमें हित का भाव निहित हो वही साहित्य है। प्रत्येक राष्ट्र अथवा जाति की उन्नति, अवनति का पूर्ण आभास उस जाति के साहित्य का अध्ययन करने पर सहज ही प्राप्त हो जाता है। राष्ट्र के समस्त घटनाचक्रों, सांस्कृतिक आंदोलनों तथा सामाजिक हलचलों के चित्र उसके साहित्य में अंकित होते रहते हैं। साहित्यकार मात्र द्रष्टा ही नहीं होता, स्रष्टा भी होता है। साहित्यकार अपने को युग की समस्याओं और घात-प्रतिघातों से अलग नहीं रख सकता। वह आदर्शों की न केवल प्रतिष्ठा करता है, बल्कि समाज में उन आदर्शों की इच्छा और शक्ति भी पैदा करता है। साहित्य की प्रेरणा से समाज में क्रांतियाँ पैदा होती है और राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक ढाँचा ही बदल जाता है। राजनैतिक गतिविधियों के साथ साहित्यकार की क्रिया एवं प्रतिक्रिया जारी रहती है। वस्तुतः "साहित्य संस्कृति का उत्कृष्ट रूप है। साहित्य साहित्यकार की मंगलमय रमणीय आत्मानुभूति है। अतः संस्कृति साहित्य के रूप में अभिव्यक्ति होती ही है। साहित्य ऐसा भावजगत है जहाँ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन होता है। धर्मगत, जातिगत, संप्रदायगत सारे बंधन वहाँ दूर हो जाते हैं। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र आदि जो आपस में प्रतिद्वंद्विता रखते गए हैं, वे साहित्य के कारण धीरे-धीरे परिवर्तित हो रहे हैं। साहित्य आज विश्व-व्यापी हो रहा है। आज विश्व-संस्कृति का निर्माण हो रहा है। इस निर्माण में साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है।"[2] इसी क्रम में आकाशवाणी ने जहाँ विविध भाव ग्रहण किए वहीं

इसके दबाव से हिंदी साहित्य में भी कई परिवर्तन महसूस किए गए। इनमें साहित्य के ध्वन्यात्मक रूप का विकास तो प्रमुख है ही, उसके नादात्मक सौंदर्य में बढोत्तरी को भी लक्षित किया गया है। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आकाशवाणी के दबाव से हिंदी साहित्य में कई विधाओं के बनने की रूपरेखा भी तैयार दिखाई देती है।

ध्यातव्य है कि आकाशवाणी के कार्यक्रम एक निश्चित समयावधि के होते हैं और उसी निश्चित अवधि के भीतर ही उसे पूरा होना पड़ता है। परिणामस्वरूप साहित्य की विधाओं का आकार भी इस निर्धारित समयावधि के अनुसार बनना शुरू हुआ। इसके अतिरिक्त विभिन्न साहित्यिक प्रयोग भी इसके कारण हुए। सबसे प्रमुख बात यह है कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कोई भी कार्यक्रम इसके द्वारा निर्धारित आचार-संहिता के पालन के पश्चात ही प्रसारण योग्य समझा जाता है। यदि रचनाकार इस आचार-संहिता का पालन नहीं करता है तो कार्यक्रम अधिकारी या तो उस रचना की रिकार्डिंग करने से मना कर देता है या उसमें काट-छाँट कर प्रसारण योग्य बनाता है। इसलिए आकाशवाणी के लेखकों को आचार-संहिता की जानकारी आवश्यक होती है। इस आचार-संहिता को आकाशवाणी की नियमावली में "वर्जना का नौ -सूत्री कोड" भी कहा गया है, जो निम्नलिखित है:-

(1) मित्र देश की आलोचना।

(2) धर्म एवं संप्रदाय पर आक्षेप।

(3) कुछ भी अश्लील या मानहानि योग्य।

(4) हिंसा को प्रोत्साहन अथवा ऐसा कुछ, जो कानून और व्यवस्था के ख़िलाफ़ हो।

(5) ऐसा कुछ, जिसका प्रतिफल न्यायालय की अवमानना हो।

(6) ऐसा कुछ, जो राष्ट्रपति, सरकार एवं न्यायालय की मर्यादा के प्रतिकूल हो।

(7) राजनैतिक दल पर नाम लेकर आक्षेप।

(8) किसी राज्य अथवा केंद्र की आक्रामक आलोचना।

(9) ऐसा कुछ भी, जो संविधान के प्रति अमर्यादा दिखलाता हो या संविधान में हिंसापूर्वक परिवर्तन लाने की वकालत करता हो। लेकिन संविधान में संवैधानिक ढंग से परिवर्तन लाने की वकालत वर्जित नहीं।

स्पष्ट है कि रेडियो द्वारा प्रसारित रचनाएँ आकाशवाणी के आचार-संहिता के अनुसार ही लिखी जाती हैं। दूसरी जो बात सबसे महत्त्वपूर्ण यह है सरल शब्दों की प्रयोग। वस्तुतः रेडियो सुनते समय कोई व्यक्ति अपने पास कोई शब्दकोश लेकर नहीं बैठता है और न उसके पास इतना समय होता है कि किसी शब्द का अर्थ ढूँढ़ने के लिए रेडियो सुनते समय किसी से कठिन शब्द का अर्थ पूछ सके। इसलिए रेडियो लेखक को चाहिए कि वह अपनी रचनाओं में सरस, सरल और बोलचाल की भाषा का प्रयोग करे। इसी तथ्य को मधुकर गंगाधर ने अपनी पुस्तक 'रेडियो लेखन' इस प्रकार अभिव्यक्त किया है, "हर लिखने वाला लेखक नहीं होता और हर लेखक रेडियो-लेखक नहीं। जिस प्रकार अच्छा लेखक होने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लेखन संबंधी विषय एवं विधा की समस्याओं को अच्छी तरह जान ले, वैसे ही रेडियो संबंधी रचनाओं को जानना अत्यंत आवश्यक है। रेडियो श्रव्य है यानी वह अंधों की दुनिया है। छपी हुई किताब में पाठक के लिए छपाई के अक्षर एवं चित्रादि, आँखों और मन को बाँधने के साधन है, लेकिन रेडियो में वैसा कुछ नहीं है। शब्द और मात्र शब्द ही श्रोताओं के लिए ध्वनि-रूप में उपलब्ध होते हैं। ऐसी हालत में रेडियो के लिए लिखते समय हमेशा यह ध्यान में रखना होता है कि शब्द ऐसा हो, जो श्रोताओं को पकड़ सके। अँग्रेज़ी में जिसे 'मैग्नेटिज्म' कहते हैं। वैसे ही कुछ शक्ति शब्दों के लिए अनिवार्य है अथवा रेडियो के लिए लिखना सार्थक नहीं हो सकता। एक और भी बात ध्यान देने की है कि रेडियो एक ऐसा साधन है, जिसके जरिये गरिष्ठ और गूढ़ शब्दावली तथा

संश्लिष्ट भाव प्रसारित नहीं किए जा सकते। ऐसा करने पर या तो शब्द या उसका अर्थ पकड़ से परे रहेगा। शब्दों को पकड़ने में श्रोता अर्थगंभीरता से वंचित हो जाएगा और अर्थगंभीरता को पकड़ने में श्रोता क्लिष्ट शब्दावली से तंग आ जाएगा। इसलिए रेडियो पर गंभीरतम भाव को भी सरल, सुबोध, सुगम्य शब्दावली में प्रकट करना चाहिए।"[3] सरलता के पश्चात रेडियो लेखन के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जो शर्त होती है, वह है उसकी ध्वन्यात्मकता; क्योंकि शब्द जहाँ वाच्यार्थ तक ही सीमित रहते हैं, वहीं अगर उनमें ध्वन्यात्मकता है तो वे प्रभाव के नए लोक की सृष्टि भी कर सकते हैं। अतः साहित्यिक विषयों को लेकर रेडियो लेखन करते समय 'ध्वनि-प्रभाव' को उत्पन्न करने वाले शब्दों के प्रयोग को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। (1) वार्ता (2) नाटक और (3) संगीत। आकाशवाणी से इन्हीं तीन विभागों द्वारा प्रायः प्रत्येक तरह का प्रसारण होता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक प्रसारण के लिए प्रसारित सामग्री का लिखित होना आवश्यक होता है। जहाँ तक संगीत का सवाल है, उसमें स्वर और साज़ की प्रमुखता होती है, फिर भी शब्द के बिना स्वर और साज़ का काम नहीं चलता, वे आधारहीन हो जाते हैं। इसलिए संगीत के लिए भी आलेख की आवश्यकता होती है। आलेख के बिना किसी भी तरह का प्रसारण वर्जित माना गया है। यहाँ तक कि 'आकस्मिक उद्घोषणा' के लिए भी आलेख तैयार कर फ़ाइल में रखना आवश्यक है।

4.(क). कविता

पिछले अध्यायों में हिंदी साहित्य में कविता के विकास को आरेखित करते हुए स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की प्रवृत्तियों को भी आरेखित करने की कोशिश की गई है। वस्तुतः आज़ादी के बाद हिंदी कविता की प्रवृत्ति में कई मूलभूत बदलाव आरेखित किए जा

सकते हैं। अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद की प्रयोगवादी अवधारणाओं से विकसित होती हुई हिंदी कविता भारतीय जनमानस को अधिक गहराई से कहने की कोशिश करती दिखाई देती है। वस्तुतः यहाँ कविता में जितनी व्याकुलता है, बेचैनी है या अभिव्यक्ति के नए-नए उपकरणों की खोज है; उसमें भारतीय जनमानस की अभिव्यक्ति हम देख सकते हैं। अत्यंत लंबे संघर्ष के बाद प्राप्त आज़ादी लोगों के लिए उस जादुई उपलब्धि की तरह थी जो उनकी सभी समस्याओं का समाधान कर सकती थी। उस समय का लोकमानस उसी उम्मीद से भरा दिखाई देता है। उसमें आशा, उम्मीद, लालसा के साथ आज़ादी की विशेष उपलब्धि की प्रसन्नता भी थी। शायद यही कारण था कि उस समय का लगभग हर महत्त्वपूर्ण कवि, गीतकार आकाशवाणी जैसे सरकारी तंत्र में अपनी भूमिका सुनिश्चित करना चाहता था। यह सरकारी तंत्र से जुड़ने की सिर्फ़ व्यवसायिक प्रतिबद्धता ही थी, ऐसा मानना उचित नहीं लगता, बल्कि आकाशवाणी जैसी जनप्रिय विधा के माध्यम से जन सामान्य से जुड़ने की इच्छा भी उसमें हो सकती है। इस बात को इससे बल मिलता है कि उस समय जो तमाम कविताएँ लिखी गई उनमें शासन का तीव्र विरोध न हो कर गीतों की एक नई सांगीतिकता दिखलाई पड़ती है। हिंदी साहित्य में नवगीत धारा के विकास को इसी सापेक्ष देखा जा सकता है। सन् 1951 में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के कई कवि सीधे तौर पर आकाशवाणी से संबद्ध थे। जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र, नेमिचन्द्र जैन, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय आदि जैसे रचनाकार प्रमुख हैं। वस्तुतः इनके गीतों की सांगीतिका इन्हें अन्य कवियों से अलग करती है। भवानी प्रसाद मिश्र का मशहूर गीत "गीत फ़रोश" के अलावा नरेश कुमार मेहता की "उषा", "जनगरबा चरैवेति", रघुवीर सहाय की "याचना" इत्यादि कविताओं में जिस प्रकार की सांगीतिकता दिखाई देती है वह संकेत करती है कि प्रयोगवादी नीरसता से कविता आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है और उसमें एक तरह की लोकधर्मी मिठास-सी आ रही है। निश्चित रूप से इन कवियों के मन में जन-संपृक्ति का भाव रहा होगा और इसलिए ये

कविताएँ आकाशवाणी द्वारा प्रसारित भी हुईं थीं। इसी तरह सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजय देवनारायण शाही इत्यादि बड़े साहित्यकार भी आकाशवाणी से जुड़े थे। "सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आकाशवाणी दिल्ली में सहायक प्रस्तुतकर्ता रहे।"[4]

डॉ. हरिवंशराय बच्चन जैसे कवियों का आकाशवाणी से जुड़ना इस बात का संकेत करता है कि वह युग कवि-सम्मेलनों का युग था और ऐसे में कवियों के लिए आवश्यक हो गया था कि वे अपने स्वर के माध्यम से लोग को प्रभावित करें। यह प्रश्न उठता है कि क्या कारण था कि हर बड़ा रचनाकार अन्य विधाओं में साहित्य रचना करने के साथ-साथ गीत लिखने में भी प्रवृत्त हुआ, जबकि वह युग कविता में बौद्धिकता का युग था, छन्दहीन, अ-तुकान्त कविताएँ ही हो रही थी। ऐसे में आकाशवाणी से संबद्ध रचनाकारों के द्वारा 'गीतात्मक रचना' करना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आकाशवाणी जैसे ध्वन्यात्मक विधा का प्रभाव उनकी रचनात्मकता पर पड़ रहा था। विषय-वस्तु पर अगर हम ध्यान दें तो पता चलता है कि ये रचनाएँ या तो कवि के रागात्मक मन से उद्‌भूत थी अथवा जन से संबंधित विषय इनके केंद्र में थे। भवानी प्रसाद मिश्र का गीत बेचने वाले का बिंब 'जन बिंब' है, जो गाँवों में घूम-घूम कर सामान बेचने वालों में दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त नवगीत धारा के तमाम गीतकार जिनमें कुँवर बेचैन, उमाकांत मालवीय, शांति सुमन, शंभूनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, राजेन्द्र गौतम, अनूप अशेष, श्रीकृष्ण तिवारी, सत्यनारायण आदि के नाम प्रमुखता से गिनाए जा सकते हैं, निश्चित तौर पर आकाशवाणी से संबद्ध थे और इनकी रचनाओं का निरंतर प्रसारण आकाशवाणी के माध्यम से होता रहता था। इनके गीतों की प्रकृति भी समय की माँग के अनुकूल थी। कुँवर बेचैन लिखते हैं—

"यह सर्दियों की भोर है
कैसे चढ़ेगी सीढ़ियाँ
सब कह रहे हैं यह सुबह

दिल की बहुत

कमज़ोर है।"5

यद्यपि हिंदी कविता का विकास तो मुख्यतः उसके साहित्यिक एजेंडे के तहत ही हुआ और उसमें साहित्यिक मुद्दे हावी रहे, परंतु कविता के चरित्रगत बदलाव में गीतात्मकता अथवा सांगीतिकता की उपस्थिति आकाशवाणी की भूमिका को किसी अंश तक पुष्ट करती है। हम यह बात निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस गीतात्मकता के पीछे कहीं न कहीं आकाशवाणी की भूमिका अवश्य रही होगी। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी से प्रसारित कविताओं का अध्ययन करने से यह भी स्पष्ट होता है कि ये कविताएँ विषय को ध्यान में रखकर लिखी गई कविताएँ हैं और उनमें साहित्यिकता का अभाव भी है। तमाम गीत या कविताएँ बालगीत के रूप में मिलती हैं; जिनका साहित्यिक स्तर काफ़ी कमज़ोर दिखाई पड़ता है। इसी तरह से राष्ट्र-प्रेम या अन्य सामाजिक विषयों को लेकर लिखी गई कविताएँ नितांत आदर्शवादी हैं और उनमें जीवन की वास्तविकता बहुत कम व्यक्त हो पाई है। ऐसा विशेषतः उन साहित्यकारों के साथ हुआ जिन्हें साहित्य लिखने का अभ्यास नहीं था, परंतु प्रसारण की प्रतिबद्धता के चलते उन्होंने कविताएँ लिखीं—

"ऐ प्यारी भारत माँ तेरी हम रक्षा करेगें।

दुनिया में सर ऊँचा सदा अपना रखेगें।।

जो दुश्मन तेरे आंचल में कोई पैर रखेगा।

तो इस बुरे इल्जाम को वह खुद ही चखेगा।।

हम नामों निशां मिटा देगें जो पीछे पड़ेगें।

ऐ प्यारी भारत माँ तेरी हम रक्षा करेगें।।

ये शान हिन्दुस्तान की जाने न पाएगी।

कीर्ति तेरी जग में सदा बढ़ती जाएगी।।

हम झंडा तिरंगा देश का ऊँचा ही रखेगें।।
ऐ प्यारी भारत माँ तेरी हम रक्षा करेगें।।
हैं माँ खड़े सीमा में तेरे वीर सिपाही।
देश के हलधर तेरे हैं साथ के राही।।
जहाँ गिर जाए पसीना रक्त बौछार करेगें।
ऐ प्यारी भारत माँ तेरी हम रक्षा करेगें।।
ऐ माँ तेरा बच्चे-बच्चे को प्यार मिला है।
वह खेल कूदकर ही तेरे आँचल में पला है।।
आवाज़ है बच्चे-बच्चे में हम भी मर मिटेगें।
ऐ प्यारी भारत माँ तेरी हम रक्षा करेगें।।
नाना, लक्ष्मी सी देश भक्त जहाँ बहनें, भाई।
हर विपदा पर हम विवेक निधि बने कन्हाई।।
नेता जी, आज़ाद, भगत सिंह हम भी बनेगें।
ऐ प्यारी भारत माँ तेरी हम रक्षा करेगें।।"[6]

मंच पर प्रस्तुत किया जाने वाला नाटक और आकाशवाणी से प्रसारित किए जाने वाले नाटकों में अंतर होता है, परंतु पुस्तकों में प्रकाशित कविता और आकाशवाणी से प्रसारित होने वाली कविताओं में कोई विशेष अंतर नहीं होता है; फिर भी किसी विशेष अवसरों पर प्रसारित किए जाने के लिए कुछ ख़ास ढंग की कविताएँ आकाशवाणी ने प्रयासपूर्वक लिखवाती रही है और इस तरह की कविताएँ प्रसारित भी होती रहती हैं। कुछ कविताओं को इसलिए भी प्रसारित किया जाता है कि वे कविता रूप में साहित्य में अपना स्थान बना चुकी हैं और साहित्यिक कार्यक्रमों में उनका प्रसारण अनिवार्य है। देश के जो स्थापित कवि हैं उनकी रचनाएँ उनके व्यक्तित्व के महत्त्व के कारण प्रसारित होती हैं। कुछ कवियों की

रचनाएँ जो साहित्यिक कृतियों के रूप में लिखी गई हैं, उन्हें भी आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया जाता रहा है। कभी-कभी उभरते कवियों को प्रोत्साहित करने के लिए भी इन्हें आकाशवाणी द्वारा आमंत्रित किया जाता है। इन कविताओं के लेखन के पीछे आकाशवाणी का कोई हाथ नहीं होता है, परंतु ऐसी कविताओं को तभी प्रसारित किया जाता है; जबकि वे कविताएँ आकाशवाणी की आचार संहिता के अनुकूल हों। यदि ऐसा नहीं होता तो कार्यक्रम निष्पादक को उसमें फेरबदल करना पड़ता है। अन्यथा भारत सरकार की धर्म और जाति-संप्रदाय निरपेक्षता के कारण कई समस्याएँ उपस्थित हो सकती हैं। "रेडियो से प्रसारित होने वाली अधिकांश कविताएँ अमूर्तता को उजागर करने वाली व्यक्तिवादी दुख-सुख की गाथा होती हैं। सामाजिक चेतना वाली कविताएँ भी प्रसारित होती हैं, किंतु जिस स्वच्छंदता से वे पत्र-पत्रिकाओं में छपती हैं, वैसी नहीं।"[7] उदाहरण के लिए आकाशवाणी से प्रसारित मधुकर गंगाधर की कविता 'और थोड़ी दूर' प्रस्तुत है:-

"और थोड़ी दूर/थोड़ी दूर मेरे साथ आओ/यह मरुस्थल/अब किनारा पा रहा है

रेत के उस पार कोई गा रहा है/यह विकल सुनसान/यह घूटती उदासी,
रक्त-सोखी रेत/जिसपर/जिन्दगी अबतक रही है/ओस-प्यासी,
पाँव के नीचे बिछे अंगार/आँखें शुष्क, जे करती रहीं हैं/धूल के शृंगार
तेल में भूनी हुई/चंपा सरीखी अंगुलियों को/एक पल बस और रहने दो
न खींचो हाथ,/चाँदनी से पाँव में/दो-चार तारे और टाको
स्वप्न की झोली भरी है राख/थोड़ी और फाँको।
और थोड़ी दूर......./थोड़ी दूर मेरे साथ आओ।।"[8]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कविताओं के अवलोकन से यह पता चलता है कि आकाशवाणी में गेय कविताएँ अधिक स्वीकृत की जाती हैं, क्योंकि ऐसी कविताओं में संगीत

और लय होता है। श्रोताओं को ऐसी कविताएँ सुनने में आनंद भी आता है। वैसे, अ-गेय कविताएँ भी प्रसारित की जाती रही हैं। इस क्रम में ऐसा भी देखा गया है कि आकाशवाणी के दबाव में हिंदी के ख्यातिलब्ध विद्वानों ने भी अपनी प्रकृति के विरुद्ध जाकर अन्य भाषा में भी कविता लिखने की कोशिश की है। उदाहरण के तौर पर इन पंक्तियों को देख सकते हैं–

"लाभ लद गये वक्त यरानया दे
बिरला होएगा कोई-विरला होएगा कोई
बिरला होएगा कोई अखुदार अजकल।
जिन्नी करो वधीक वधीक उल्फत,
उन्नी होंदी ऐ मिट्टी ख्वार अजकल।
कहणा यार, ते यार दा बुरा मनना,
एहो कुल्ल जमाने दी कार अजकल।
तारा चन्द रख बन्द कर मेहब्बता नूं,
ना ओ समां रिया न यार अजकल।।"[9]

ये पंक्तियाँ हिन्दी उपन्यास कथा-शिल्प को समृद्ध करने वाले, अनेक कालजयी कृतियों के प्रणेता उपेन्द्रनाथ अश्क की हैं और 16 नवम्बर, 1987 को आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से प्रसारण के लिए रिकॉर्ड की गई थीं। इस रचना में प्रेम और भक्ति का सामंजस्य है। आकाशवाणी में इस तरह का सिलसिला अश्क जी के द्वारा शुरू किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कविताओं का उद्देश्य राष्ट्र-विकास की ओर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले इस राष्ट्र में विकास की राहें प्रशस्त हों, इस ओर कवियों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया। अथक प्रयत्नों और असंख्य बलिदानों के बाद मिली आजादी को एकता और अखण्डता की मजबूती मिले और इसका प्रचार जन-जन तक पहुँचने वाला सबसे सस्ता माध्यम आकाशवाणी ही था।

इसीलिए देशभक्ति को कवियों ने प्रमुखता प्रदान की और अपनी कविताओं में इसकी सृष्टि की—

"भारत देश महान है, विश्व-वंद्य गणतंत्र,
सत्य अहिंसा प्रेम का दिया जगत को मंत्र।
शुभ भारत स्वाधीन का स्वर्ण-जयंती पर्व,
गौरव-गाथा मैं करूँ प्रस्तुत आज सगर्व।
मुक्त तिरंगा फहरता, मंगलमय त्योहार,
गाँधी जा का हो रहा घर-घर जयजयकार।
जय हो ! जय हो ! गाँधी जी की जय हो !
भारत को आजाद कराया, गाँधी जा की जय हो !
राष्ट्रपिता की जय हो !
दीर्घ दासता की छाई थी कालरात्रि वह काली,
दिव्य ज्योति बन गाँधी आया, उदित उषा की लाली !
जन-जन को झकझोर जगाया, गाँधी जी की जय हो !
भारत को आज़ाद कराया, गाँधी जा की जय हो !
राष्ट्रपिता की जय हो !
गोरों के बूटों के नीचे सिसक रही थी धरती,
इंगलिस्तां का पशु-बल ऐसा, कुल दुनिया थी डरती।
उस पशु-बल से वह टकरायो, गाँधी जा की जय हो !
भारत को आज़ाद कराया, गाँधी जा की जय हो !
राष्ट्रपिता की जय हो ![10]

स्वातंत्र्योत्तर कवि अन्यायों, अत्याचारों और मूल्यों के संबंध में जागरूक हुआ

और उसने अपनी कविताओं में इनका विरोध खुलकर किया। स्वतंत्रता से पूर्व साहित्यकार, जब ब्रिटिश सरकार के कामों पर तीखा प्रहार करता था, तो उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी यहाँ तक उसे जेल भी जाना पड़ता था। स्वातंत्र्योत्तर कवि भी देश की पीड़ा को सदैव उजागर करते रहे। स्वतंत्रता के बाद संविधान में विषमताओं को दूर करने के लिए घोषणा की गई, समाजवाद का नारा लगाया गया, लेकिन उसके बाद भी विषमता भारी पैमाने पर बढ़ी। सस्ते और सुलभ न्याय की बात जो कही गई थी वह ग़लत साबित होने लगी। तब कवि मन अपने आप कह उठता है–

"मुक्त हुआ तब देश था, हर्षित थे सब लोग,
फैलाया दुर्भाग्य ने द्वेष-घृणा का रोग ।
गया फ़िरंगी छोड़कर मज़हब का विष-वाण,
देश विभाजित हो गया, बँटी मातृ-संतान ।
हिंसा का तांडव हुआ, महानाश घनघोर,
रक्तपात से मुक्ति की हुई अमंगल भोर ।
निविड़ दासता-तिमिर में गांधी दिव्य प्रकाश,
ज्योतिर्धर का वध हुआ, जनता दुखी हताश।"[11]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हमारे निजी स्वार्थों ने हमें सत्ता और धन का दास बना दिया। हमारी धारणा यह बन गई कि सत्ता और धन से ही सब कुछ संभव हो सकता है। ऐसी सोच को निरर्थक बनाने का प्रयास आधुनिक कवियों ने किया। युवाओं के मन में देश के प्रति सम्मान करना सिखाया और उनकी समस्याओं को उजागर कर उनके समाधान का मार्ग प्रशस्त किया। इसी क्रम में अलका पाठक, अपर्णा भारद्वाज, चन्द्र दत्त इन्दु, डॉ. गंगा प्रसाद विमल, इन्द्र जोशी, जमा हबीब, इन्दु अग्रवाल, डॉ. विजय अग्रवाल, शशि गुप्ता, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी और ललनी भारद्वाज द्वारा लिखित रेडियो धारावाहिक "तिनका-तिनका सुख" उषा

मसीन के निर्देशन में आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से प्रसारित किया गया था। यह एक प्रकार का रेडियो रूपक था; जिसमें देश के युवाओं की समस्याओं को बीच-बीच में कविताओं के माध्यम से प्रकट किया गया था। कविताओं की इन पंक्तियों से उस समय के युवा-मन के असंतोष, बेचैनी एवं चिंताओं की गहरी अभिव्यक्ति दिखलाई देती है। 104 कड़ियों वाला यह धारावाहिक युवाओं की समस्याओं पर आधारित था। इस धारावाहिक का शीर्षक गीत गुलज़ार का लिखा हुआ है—

दिन बोले तो मान लिया,
और रात कहे तो सुन लेते हैं।
दुख सुख में यह जीने वाले,
धूप से छाँव बुन लेते हैं।
पल-पल बीत रहा है फिर भी,
वक्त के पर ना बाधें रहते हैं।
जल के और निखर जाते हैं,
जीने वाले हद करते हैं।
शाख़ पे जीने वाले अपना,
तिनका-तिनका चुग लेते हैं।"[13]

एक साफ़सुथरा वातावरण बनाने के लिए ये कवि कृतसंकल्प हैं और अपनी कविताओं के माध्यम से देश के श्रोताओं में एक स्वस्थ मानसिकता का विकास करना चाहते हैं। अपनी कविताओं में वे शिक्षा, सूचना और मनोरंजन का भी समावेश करते हैं—

"बदली के छा जाने से क्या,
चाँद कभी मर जाता है।
यों तो मौसम का झोंका है,

आता है और जाता है।

सुख की भी कुछ यही कहानी,

चाहे देर से आए। हाँ जी हाँ............।"[14]

आकाशवाणी इलाहाबाद से कई स्थानीय कवियों की रचनाओं का पाठ प्रसारित किया गया। इनमें एक नाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है और वह नाम है, अपने समय के प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय कवि 'मधुशाला', 'निशा निमंत्रण' आदि के सुविख्यात रचनाकार डॉ. हरिवंश राय बच्चन जी का। अपने एक साक्षात्कार में अपने गीतों की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए श्री बच्चन जी अपनी काव्यात्मकता को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

"मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,

मैं मादकता निश्शेष लिए फिरता हूँ,

जिसको सुनकर जग झूम-झूम लहराए,

मैं मस्ती का सन्देश लिए फिरता हूँ।

इस मस्ती के सन्देश के यह मायने नहीं हैं कि शराब पी कर पड़े रहो। मेरी मस्ती के अर्थ हैं आज़ादी, निर्भीकता, स्वाभिमान कुछ कर गुज़रने की हसरत, ख़तरा उठाने की हिम्मत, परिणाम के प्रति बेफ़िक्री। यानी संक्षेप में एक फक्कड़ाना अंदाज। आप चाहें तो उसे अक्खड़ाना भी कह सकते हैं। अभी मैंने दीवानों की बात कही है, एक कविता से उसे देखिए-

सिर पर बाल घुँघराले

काले कड़े बड़े बिखरे काले।

कड़े, बड़े बिखरे से,

मस्ती आज़ादी बेफ़िक्री बेख़बरी के हैं संदेशे।

माथा उठा हुआ ऊपर को, भौंहों में कुछ टेढ़ापन है,

दुनिया को है एक चुनौती, कभी नहीं झुकने का प्रण है।

और इस मस्त और दीवाने की बीसों पंक्तियाँ मेरे दिमाग़ में गूँज उठी है-

मुझको न ले सके धनकुबेर

दिखलाकर अपना ठाठ-बाट,

मुझको न ले सके नृपति मोल,

अमरों ने अमृत दिखलाया, दिखलाया अपना अमर लोक।

ठुकराया मैंने दोनों को, रखकर अपना उन्नत ललाट।

बिक मगर गया मैं मोल बिना, जब आया मानव सरल हृदय।

हुई थी मदिरा मुझको प्राप्त, न थी वह भेंट, न थी वह दान।

अमृत भी मुझको अस्वीकार्य अगर कुंठित हो मेरा मान।

और यह मस्त और दीवाना ऊँचे इरादे रखता है, ऊँचे लक्ष्य बनाता है। और यह मानकर भी कि इन्हें प्राप्त करने में ख़तरे उठाने पड़ेंगे, वह पीछे नहीं फिरता।

बिजली से अनुराग जिसे हो,

उठकर आसमान में नाचे।

आग चले आलिंगन करने,

तब क्या भाप धुँए से भागे।

साफ़ उजाले वाले रक्षित पंथ मरण के,

क्रंदन के हैं,

जिन पर खतर-ए-जान नहीं था,

छोड़ कभी दीं राहें मैंने।

यह फक्कड़ाना अंदाज है। और उसे दुनिया से मिलने वाले यश-अपयश की भी परवाह नहीं है।

करे कोई निंदा दिन रात, सुयश का पीटे कोई ढोल।

किए कानों को अपने बंद, रही बुलबुल डालों पर बोल

सुरा पी, मद पी, कर मधुपान।

और मेरे समकालीनों में यह तेवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और भगवतीचरण वर्मा की कविताओं में भी देखा जा सकता है। 'तुम कैसे नवीन मतवाले' या हम 'हम मणि केतन में' या 'हम दीवानों की क्या हस्ती है, आज यहाँ, कल वहाँ चले' आदि में। और एक बात और बता दूँ यह मुद्रा हिंदी-काव्य-परंपरा की एक विशिष्ट मुद्रा है, जिसे समय-समय पर हमारे बड़े-बड़े कवियों ने अपनाया है।"[15]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कविताओं और लिखित साहित्य की कविताओं में मूलभूत जो अंतर दिखाई देता है, वह यह कि रेडियो कविताओं को एक निर्धारित समयसीमा के भीतर ही रखा जाता है। *आकाशवाणी द्वारा कविताओं को प्रसारित करने के दो तरीक़े हैं।* एक तो यह कि आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों पर काव्यगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। इस तरह के आयोजनों में कभी-कभी श्रोताओं को भी आमंत्रित किया जाता है। इसकी अवधि 30 मिनट से एक घंटे तक की होती है, जिसमें कई कवियों की रचनाएँ शामिल होती हैं। कवि स्वयं अपनी स्वरचित कविताओं का पाठ करता है। दूसरा तरीक़ा यह है कि कवियों को व्यक्तिगत तौर पर भी बुलाया जाता है। इसके लिए अवधि 10 मिनट से 15 मिनट तक के लिए होती है। यह कार्यक्रम कभी-कभी साक्षात्कार पर भी आधारित होता है। इसमें कवि अपना अनुभव भी बताकर अपनी स्वरचित कविताओं का पाठ करता है। तकनीक की दृष्टि से कविताओं की रचना में कोई विशेष अंतर नहीं होता है। सिर्फ़ समय का ही ध्यान कवि को रखना पड़ता है। आकाशवाणी द्वारा निर्धारित समय-सीमा के भीतर अपनी कविता पढ़नी होती है। यही कारण है कि हर कवि की पहुँच आकाशवाणी तक होती है। उन्हें अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

"सावन चहुँ ओर सघन नाचे/चंचल मन मोर मगन नाचे
सन-सन की बीन बजे/मेघों का माँदर/झम-झम की झाँझ और
रिमझिम का झाँझर/चपला चितचोर नयन नाचे/खेतों में धान हँसे
बागों में कलियाँ/ऋतुओं की रानी की/दिस-दिस रंगरंलियाँ
यौवन-मदमोर भुवन नाचे।/कागन के हाथ बँधी/लत्तर की राखी,
जाने न नाम, कहे/कोई वनपाखी
पानी में पौर अगन नाचे।
फूलों की तितली का/रंग-रँगा डैना
नाचती सुहागन ज्यों
देख-देख ऐना
आँखों की कोर गगन नाचे।"[16]

पं. हंसकुमार तिवारी रचित उपर्युक्त रचना रेडियो के लिए सर्वथा उपयुक्त रचना है। इसमें शब्दों की सरलता है, कर्णप्रिय ध्वनियों का समन्वय है और भावों से चित्र उभरते हैं। सजीव लगते हैं। ऐसा लगता है, हम उन्हें देख रहे हैं और इस संपूर्ण गीत को स्वरों में बखूबी बाँधा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी के माध्यम से विविध विषयों की कविताओं का प्रसारण लगातार होता रहा है। यद्यपि अधिकांश जगह लिखित कविता और प्रसारित कविता की संरचना में कोई विशेष फर्क नहीं है, परंतु कहीं-कहीं ऐसा भी लगता है कि आजादी के बाद की हिंदी कविता कई स्तरों पर आकाशवाणी से प्रभावित है। उदाहरण के तौर पर नवगीत के रूप में गीतात्मक कविताओं का विकास, राष्ट्रधर्म, राष्ट्रभक्ति को लेकर कविताओं का सृजन एवं सरलतम शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों एवं सहज बिंबों, प्रतीकों का प्रयोग क हीं न कहीं कविता को आकाशवाणी के अनुकूल सिद्ध करता है।

4.(ख). वार्ता

आकाशवाणी के संदर्भ में 'वार्ता' का अँग्रेज़ी अनुवाद 'स्पोकन वर्ड' होता है; जिसमें प्रयोजनयुक्त, तथ्यपरक भाषा का होना आवश्यक है। इसके अंतर्गत तरह-तरह की वार्ताएँ, समाचार, समीक्षा, परिचर्चा आदि शामिल की जाती है। इन्हें 'वार्ता-परिवार' कहा जाता है; परंतु सामान्यतः "वार्ता शब्द अँग्रेज़ी के 'टॉक' का अनुवाद है। यह अनुवाद कहाँ तक सही है, इसकी जाँच हमारा उद्देश्य नहीं है। किंतु, वार्ता शब्द अब रेडियो पर रूढ़ हो चुका है और एक विशेष अर्थ-वाचक है। रेडियो पर प्रसारित होने वाली वार्ता वह नहीं होती, जो वार्ता हमारे जीवन में हुआ करती है। हम बोलचाल और रोज़मर्रे के व्यवहार में वार्ता का अर्थ द्विपक्षीय (अधिक भी हो सकता है) बातों से लेते हैं, यानी दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में बातचीत करते हैं, उसे ही वार्ता कहते हैं। रेडियो पर वार्ता का अर्थ वैसा नहीं होता। यद्यपि रेडियो की वार्ता में भी दो पक्ष होता ही है— वक्ता और श्रोता; लेकिन वहाँ संवाद की गुंजाइश नहीं होती है। वह एकपक्षीय होती है। एकपक्षीय होने पर भी वार्ता कहने से ही एक अर्थ संभावित हो जाता है कि वह बोलचाल से स्तर की चीज़ होगी। यद्यपि रेडियो पर श्रोताओं से संवाद की स्थिति प्रसारण के समय नहीं होती है, फिर भी एक अच्छी वार्ता के लिए यह अनिवार्य शर्त है कि उसमें प्रकारांतर से श्रोताओं की संवादी प्रवृत्तियों का भी प्रतिनिधित्व रहे यानी अच्छी रेडियो वार्ता के लिए यह लाज़िमी है कि वार्ताकार दो-चार वाक्यों के बाद ऐसा भाव व्यक्त करे, जिससे यह स्पष्ट हो कि वह और श्रोता आमने-सामने हैं और समझदारी की एक जीवंत धारा दोनों के बीच प्रवाहित है।"[17]

आकाशवाणी से जुड़ने एवं शोध के दौरान यह स्पष्ट हुआ है कि रेडियो वार्ता की संभावनाएँ अमित हैं। रेडियो-वार्ता के द्वारा वार्ताकार अपने से दूर रहने वाले करोड़ों श्रोताओं से निकट का संपर्क स्थापित कर सकता है और आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किसी भी

विधा की तुलना में इसका क्षेत्र व्यापक है। कविता, कहानी, नाटक आदि की रचना केवल साहित्यकार करते हैं, जबकि रेडियो-वार्ता किसी भी विषय का विशेषज्ञ कर सकता है। साहित्य से परे रहने वाले वैज्ञानिक, राजनीतिक, शिक्षक आदि सभी वर्गों के विशेषज्ञ अपने विषय से संबंधित रेडियो-वार्ता का प्रसारण कर सकते हैं। यद्यपि इस प्रसंग में वार्ताओं के साहित्यिक पक्ष का अनुसंधान हमारा ध्येय है, परंतु यह कहा जा सकता है कि रेडियो-वार्ता का संबंध उन लोगों से भी है जो साहित्यकार नहीं हैं अथवा लेखन-कार्य जिनका पेशा नहीं है। "सचमुच रेडियो के आविष्कार ने रेडियो-नाटक, रेडियो-रूपक आदि जिन नए साहित्य-रूपों को जन्म दिया है, उनमें रेडियो-वार्ता का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। देशी या विदेशी, कोई भी रेडियो स्टेशन नहीं है, जहाँ से रेडियो-वार्ताएँ नहीं प्रसारित की जातीं। इनका महत्त्व इस तथ्य से ही समझा जा सकता है कि 1956 में आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से प्रसारित वार्ताओं एवं परिसंवादों की संख्या 4946 थी। यह संख्या केवल अपने देश के लिए प्रसारित कार्यक्रमों की है, विदेशों के लिए प्रसारित कार्यक्रमों में हुई वार्ताओं की संख्या अलग है। ग्रामीण क्षेत्रों, बालकों तथा स्त्रियों के कार्यक्रमों में प्रसारित वार्ताओं की संख्या भी इसमें नहीं जोड़ी गई हैं। 1956 के बाद तो आकाशवाणी केंद्रों की संख्या और भी बढ़ी है, उनके साथ ही प्रसारित कार्यक्रमों की संख्या में वृद्धि हुई है। 1958 के वार्षिक विवरण से ज्ञात होता है कि विभिन्न केंद्रों से प्रतिवर्ष अँग्रेज़ी तथा प्रादेशिक भाषाओं में दस हज़ार से अधिक वार्ताएँ प्रसारित की जाती हैं।"[18]

संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो हम कह सकते हैं कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में रेडियो-वार्ताओं का महत्त्व सर्वाधिक है, किंतु सर्वेक्षण से पता चलता है कि श्रोता सबसे अधिक जिस कार्यक्रम को सुनते हैं वह है फ़िल्म-संगीत। इसीलिए आजकल फ़िल्म-संगीत के कार्यक्रम के बीच में रेडियो-वार्ताओं का प्रसारण किया जाने लगा है। रेडियो-वार्ता भले ही अपने विषय की भरपूर जानकारी देती है, तथापि आम श्रोता रेडियो-वार्ता

को सबसे अनाकर्षक और नीरस ही समझता है। "पच्चीस वर्षों के संगठित प्रसारण के बाद भी हमारे यहाँ की वार्ताओं में इतनी शक्ति नहीं आ पाई है कि वे श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकें। आदर्श प्रसारण की दृष्टि से विचार किया जाए तो विदेशी प्रसारण केंद्रों को भी पूर्णतः संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।"[19] स्पष्ट है कि वार्ता मुख्यतः सूचनापरक और चिंतनपरक होती है। अतः इसकी पैठ हर व्यक्ति तक आसानी से नहीं हो पाती, फिर भी वैचारिक दृष्टि देने और समाज में जागरूकता फैलाने के लिए इसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

मनुष्य अपने स्वभाव से परिवर्तन चाहता है। किसी भी श्रोता के लिए एकरस होकर रहना संभव नहीं होता है। इसीलिए गीत-संगीत के कार्यक्रमों के बीच में भी वार्ताएँ प्रसारित की जाती हैं। सामान्य रूप से दो व्यक्तियों के बीच होने वाली बातचीत को वार्ता कहते हैं लेकिन आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रेडियो वार्ता का स्वरूप हर तरह से अलग होता है। रेडियो वार्ता में एक ही व्यक्ति की भागीदारी होती है। इस वार्ताकार को सुनने वाला प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं होता है। वार्ताकार और श्रोताओं के बीच अप्रत्यक्ष दूरी होती है। इसके बावजूद श्रोता उस वार्ता को सुनता है और पत्रों के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया भी भेजता है। इस तरह की वार्ता में कुछ विशेषताएँ तो अवश्य होनी चाहिए जिससे वह अपने श्रोताओं को बाँधकर रखे। यदि वार्ता में यह विशेषता न हुई तो श्रोता उस वार्ता को नहीं सुनेगा और किसी अन्य केंद्र से प्रसारित हो रहे कार्यक्रम को सुनना पसंद करेगा। दो लोगों के बीच हो रही बातचीत को, नीरस होते हुए भी उसे सरस बनाया जा सकता है। वक्ता और श्रोता दोनों को बातचीत में शामिल किया जा सकता है; परंतु रेडियो वार्ता में उसी समय श्रोता को कभी भी शामिल नहीं किया जा सकता है। दूर रहकर भी श्रोता वार्ताकार की बातचीत को ध्यानपूर्वक सुने, यही एक रेडियो-वार्ताकार की सफलता है। अतः एक वार्ताकार के लिए समय-सीमा काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। समय-सीमा के भीतर ही वार्ताकार को अपनी वार्ता पूरी करनी पड़ती है। किसी भी परिस्थिति में वार्ता की समय-सीमा दस मिनट से अधिक नहीं होती। "वार्ता का

समय प्रायः 10 या 15 मिनट का रखा जाता है। इस संबंध में आकाशवाणी प्रायः रचनात्मक भूमिका निभाता है और उच्च व्यावसायिक स्तर का परिचय देता है।"[20] आजकल तो कई केंद्र मात्र तीन मिनट के लिए भी वार्ताएँ प्रसारित करते हैं। कभी-कभी एक वार्ता को कई टुकड़ों में भी प्रसारित किया जाने लगा है। बीच-बीच में संगीत, या भोजन बनाने की विधि या फिर किसी और कार्यक्रम का प्रसारण किया जाता है और वार्ता भी सुनाई जाती है। शोध के दौरान यह भी ज्ञात हुआ कि श्रोता आजकल अधिक से अधिक अपने मनोरंजन के लिए गीत-संगीत ही सुनते हैं; फिर भी अगर रेडियो-वार्ता का विषय रोचक हुआ और उसकी भाषा सरल, सुगम और सहज हुई तो श्रोता उसे ध्यानपूर्वक सुनते हैं। इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष उसकी भाषा का है। अतः इसकी भाषा कभी भी बहुत गंभीर नहीं होती। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित वार्ता का आरंभ और अंत श्रोता पर स्थाई रूप से प्रभाव डालने वाला होता है और अत्यंत महत्त्वपूर्ण भी।

आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से हिंदी में वार्ताएँ नियमित प्रसारित की जाती हैं। यहाँ तक कि जो अहिंदी भाषी राज्य हैं, उन राज्यों में स्थित केंद्रों से भी हिंदी भाषा में वार्ताएँ प्रसारित की जाती हैं। भले उनकी आवृत्ति कम होती है; किंतु कुछ केंद्र ऐसे है जहाँ से वार्ताओं का प्रसारण कम-से-कम सप्ताह में एक बार तो अवश्य ही होता है। डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित की कई दर्जन वार्ताएँ आकाशवाणी के जोधपुर, मुम्बई, नई दिल्ली, लखनऊ, जयपुर, सूरतगढ़ आदि केंद्रों से प्रसारित की गई हैं। यहाँ उनकी कुछ वार्ताओं का उल्लेख करना समीचीन होगा। दिनांक 21-11-1980 को आकाशवाणी के लखनऊ केंद्र से इनकी एक वार्ता का प्रसारण हुआ, जिसका शीर्षक है- 'मिली-जुली संस्कृति और समन्वय के प्रतीक अमीर खुसरो' और इसी वार्ता का प्रकाशन 1980 में प्रकाशित पुस्तक 'चिंतन पर्व' में 'अमीर खुसरो का सांस्कृतिक समन्वय' शीर्षक से हुआ है। इस वार्ता में उन्होंने कहा है कि, "हज़रत अमीर खुसरो एक उच्चस्तरीय सूफ़ी संत, कवि, संगीतज्ञ, गद्यकार और इतिहासकार थे।

उन्होंने फ़ारसी-काव्य और हिंदी-कविता के बीच समन्वय स्थापित करके एक मिली-जुली समेकित एवं समन्वित संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत किया था, जो आज भी प्रासंगिक एवं स्मरणीय है। हज़रत खुसरो का व्यक्तित्व स्वयं इस सामंजस्य का नियामक था। वे तुर्क पिता और ब्रजवासिनी भारतीय माँ की संतान थे। उन्हें अपने भारतीय होने का और पिता के बहादुर तुर्क होने का गर्व भी था। उनका आरंभिक जीवन सामंती ठाट-बाट में बीता था और शेष जीवन संतों-साधकों की सात्त्विकता और सादकी में। खुसरो कई भाषाओं के मर्मज्ञ थे। उनकी मातृभाषा हिंदी, पितृ-भाषा तुर्की, राजभाषा फ़ारसी और धर्मभाषा अरबी थी। फ़ारसी का उन्होंने गुरु गहन अध्ययन किया था। फ़ारसी-साहित्य के विभिन्न रंगों और उसके नर्म-नाजुक लहज़ों के वे विशेषज्ञ थे। उसका शायद ही कोई दीवान उनसे अछूता रह गया हो। वे उसकी अनेक प्रचलित शैलियों के प्रयोक्ता थे, इसीलिए उन्हें फ़ारसी का 'तूती-ए-हिन्द' कहा जाता है।"[21]

उक्त अवतरण वार्ता का आरंभिक अंश है, जो अमीर खुसरो के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालता है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि एक रेडियो वार्ता होते हुए भी लेखक ने इसे अपना 'शोध-समीक्षात्मक निबंध' कहा है। यह निबंध आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुआ तो रेडियो वार्ता कहलाया और जब इसे लिखित साहित्य का रूप दिया गया तो वह निबंध हो गया। आगे वे लिखते हैं, "हज़रत खुसरो मुख्यतः एक ग़ज़लगो शायर थे। उन्हें खड़ी बोली का आदि कवि कहा जा सकता है। उन्होंने पहेलियाँ, मुकरियाँ, ग़ज़ल, गीत, सुखन और क़व्वाली आदि द्वारा हिंदी-काव्य की श्रीवृद्धि की है और एक विशिष्ट 'मेल पद्धति' की पहल की है। खुसरो की ये रचनाएँ 'जवाहरे खुसरवी' और 'खुसरो की हिन्दी कविता' नामक कृतियों में संकलित हैं। इन रचनाओं में खुसरो ने बोलचाल की भाषा में दैनिक व्यावहारिक जीवन की समस्याओं का दिग्दर्शन कराया है। हिन्दी में मुस्लिम परंपराओं का विवेचन करने वाले वे सर्वप्रथम कवि थे। उदाहरणार्थ उनकी एक उक्ति विचारणीय है, जिसमें सृष्टि रचना से संबंधित एक इस्लामी पुराख्यान की ओर संकेत कर रहे हैं—

'विधना ने एक बिरख बनाया, तिरिया दी और नीर लगाया।

चूक भई कछु वासे ऐसी, देश छोड़ भये परदेशी ।'

इसमें आदम-हौवा द्वारा स्वर्ग के फल को चख लेने और परिणामस्वरूप स्वर्ग से उनके निकाले जाने तथा संसार में आने का संक्षिप्त विवरण है। खुसरो की पहेलियाँ आकार में लघु और सीधी-सादी लगती हैं, किंतु गूढ़ गंभीर तथ्यों से भरपूर।

खुसरो भारतीय लोक-जीवन के कवि थे. वे जटिल एवं दुर्बोध दार्शनिक सिद्धांतों को सहज लोकभाषा में व्यक्त कर देते थे। इस उक्ति में देखिए- उन्होंने 'इश्क मिज़ाजी' और 'इश्क हक़ीक़ी' का कितना गूढ़ किंतु सरस-सुबोध विश्लेषण किया है-

'खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।

तन मेरी मन पीव को दोऊ भए एक रँग।'

इस प्रेम-साधना में भारतीय सूफ़ी प्रेम-विरह का उत्कृष्ट स्वरूप दिखाई देता है। इसी प्रकार विदाई के अवसर पर गाया जाने वाला एक और गीत सुनिए, जिसमें खुसरो ने एक वात्सल्य विरह को स्वरबद्ध किया है और दूसरी ओर जीवात्मा के संसार से विदा होने का कारुणिक वर्णन किया है। कवि के शब्दों में- 'जीवात्मा रूपी कन्या विदा के क्षणों में बिलखती हुई कह रही है-

काहे को ब्याही बिदेश रे, लेखी बाबुल मोरे ।

भइयों की दीनी महल-दोमहले हमको दिया परदेस रे।

लखी बाबुल मोरे"[22]

इस प्रकार वार्ताकार कवि की रचनाओं का मूल्यांकन करता हुआ उसकी विशेषताओं का भी वर्णन करता है– "खुसरो की पहेलियाँ लोक-जीवन की अनमोल निधियाँ

हैं। उन्होंने काकु वक्रोक्ति और श्लेष के सहारे कई सफल प्रयोग किए हैं। जैसे-

बाला था जग को भाया,

बड़ा हुआ कुछ काम न आया।

खुसरो कह दिया उसका नाँव,

अर्थ करो नहिं छोड़ो गाँव।

इसमें 'बाला' और 'बड़ा' शब्दों द्वारा दोहरा अर्थ प्रस्तुत किया है, जो एक ओर दिया अर्थात् दीपक पर घटित होता है और दूसरी ओर मनुष्य के जीवन-क्रम अर्थात् बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था पर। इस प्रकार का सहज चमत्कार खुसरो के काव्य में बहुशः व्याप्त है।"[23]

यहाँ यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यद्यपि यह रचना वार्ता के रूप में आकाशवाणी से प्रसारित हुई है; तथापि इसका स्वरूप शोधपूर्ण निबंध की तरह है। अमीर खुसरो के जीवन से संबंधित होने के कारण सामान्यतः इस वार्ता में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग अधिक होना चाहिए था; परंतु इसकी भाषा अत्यंत सरल एवं आम बोलचाल की है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि कोई भी श्रोता, चाहे वह विद्वान हो या निरक्षर आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किसी वार्ता को दुबारा नहीं सुन सकता है। यह तथ्य रेडियो वार्ता तथा मुद्रित निबन्ध के एक विशेष अन्तर की ओर संकेत करता है। प्रकाशित कोई भी रचना एक पूर्ण रचना होती है। वह हर समय पाठकों के लिए उपलब्ध रहती है। पाठक जब चाहे उसे पढ़ सकता है। यदि उसे समझ में न आये तो दो बार, तीन बार या फिर चाहे वह जितनी बार पढ़ सकता है। लेकिन रेडियो वार्ता या आकाशवाणी से प्रसारित किसी भी साहित्य को वह चाहकर भी दुबारा नहीं पढ़ सकता है। इसीलिए वार्ताकार को अपनी रचना को सरलतम रूप में प्रसारित करना होता है। प्रस्तुत वार्ता में भी छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग

किया गया है। इस प्रकार श्रोताओं को इस वार्ता को समझने या स्मरण करने में कोई कठिनाई नहीं होती। इस वार्ता का अंत वार्ताकार ने इस प्रकार से किया है— "खुसरो ने सांस्कृतिक समन्वय के उद्देश्य से एक मिली-जुली भाषा-संरचना का प्रयास किया था। उनकी कई रचनाओं में फारसी और हिन्दी का एक साथ प्रयोग हुआ है, जैसे—

जे हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल
दुराए नैना बनाए बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ न दारम ऐ जाँ
न लेहू काहे लगाय छतियाँ।

यहाँ एक पद फारसी का है, दूसरा हिन्दी का। यह संकर भाषा खुसरो के सांस्कृतिक समन्वय की साक्षी है। वस्तुतः खुसरो एक महान् जन कवि थे। उन्होंने आजीवन हिन्दुत्व और इस्लाम के मध्य सौहार्द स्थापित करने का अभियान चला रखा था। साहित्य क्षेत्र के अतिरिक्त संगीत क्षेत्र में भी उन्होंने समन्वय का सफल प्रयत्न किया। इतिहासकारों के मतानुसार खुसरो सितार और तबला के आविष्कारक थे। कव्वाली, खयाल, तराना, राग भैरव और यमन जैसी राग-रागनियों के वे ही प्रथम प्रयोक्ता माने जाते हैं। खुसरो ईरानी संगीत के चार वसूलों, बारह पदों और अनेक सूक्ष्म रहस्यों के ज्ञाता थे, साथ ही भारतीय संगीत कला के मर्मज्ञ भी। ऐसी जनश्रुति है कि गोपाल नायक के साथ मिलकर उन्होंने भारतीय फारसी का सम्मिश्रित राग वर्गीकरण किया था, जिसे विजय नगर की सभा में 'मेल पद्धति' और उत्तर भारत में 'संस्थान पद्धति' या 'ठाठ पद्धति' का नाम दिया गया है। वस्तुतः संगीत, साहित्य दोनों क्षेत्रों में भावैक्य स्थापित करके खुसरो ने एक मिली-जुली संस्कृति की नींव डाली थी। निश्चय ही वे सांस्कृतिक समन्वय एवं सौहार्द के प्रतीक थे।"[24]

उपर्युक्त लंबे उद्धरण से एक बात एकदम स्पष्ट है कि कभी-कभी

आकाशवाणी के दबाव के कारण भी किसी रचना की भाषा-संरचना एवं उसकी प्रस्तुति पर असर पड़ता है। यहाँ वार्ताकार के संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ होने एवं तत्सम-प्रधान भाषा के प्रयोग के प्रति आकृष्ट रहने के बावजूद उसने इस वार्ता में अत्यंत सरल एवं बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। वाक्य भी छोटे हैं, जिनके माध्यम से उसने अमीर खुसरो के व्यक्तित्व को प्रकट करने की कोशिश की है। स्पष्ट है कि यह विधा का ही दबाव है कि उसने लेखक से इस तरह की भाषा लिखवाई। यहाँ यह समझा जा सकता है कि यह एक वार्ता होते हुए भी निबंध या आलेख के रूप में ही अपना प्रभाव निर्मित करती है। अतः हम कहीं न कहीं आकाशवाणी का प्रभाव इसकी संपूर्ण संरचना पर देख सकते हैं।

इसी तरह इनकी एक दूसरी वार्ता 'केशव केसन अस करी' का प्रसारण दिनांक 12-04-1976 को आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र से ही किया गया था और इसका भी प्रकाशन 'चिन्तन पर्व' में किया गया है। इस वार्ता को डॉ. दीक्षित ने अपनी पुस्तक में 'उक्ति प्रकरण' के अन्तर्गत रखा है। इस वार्ता में वार्ताकार ने आचार्य केशवदास के विषय में जानकारी प्रस्तुत की है। पूरी वार्ता इस प्रकार है-

'आचार्य केशवदास को कोई भले ही 'कठिन काव्य का प्रेत' और हृदयहीन कहे, यों वस्तुस्थिति यह है कि वे एक अत्यंत तरल हृदय और संवेदनशील कवि थे। यही कारण है कि यहाँ वे वार्धक्यसूचक अपने श्वेत केशों को देखकर भावाकुल हो उठे हैं। उन्हें सबसे बड़ा दर्द यह है कि इन केशों के कारण सुन्दरियाँ उनको अपना प्रियवयस्य (हमउम्र) न मानकर 'बाबा' समझ बैठी हैं और वे अपने चिरयुवा मन के सहज श्री-सौभाग्य से वंचित हो गए हैं। इसलिए महाकवि ने केशों को दुश्मन से भी बदतर और घातक घोषित कर दिया है। 'कविप्रिया' के कुछ छन्दों में भी उन्होंने 'सेत सिरोरुह' को जरा का दूत, काल के बाण और राजा कुरूप द्वारा चाँदी के पानी से लिखी गयी रूप की पराजय का पत्र कहा है।

केशव की इस उक्ति के पीछे एक रसिकमिजाज कवि का भावालाप न होकर आत्मानुभूति की ईमानदारी एवं साहसपूर्ण स्वीकारोक्ति का स्वर है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ढलती हुई अवस्था का अहसास होने पर (मुख्यतः वार्धक्य के प्रतीक श्वेत केशों की पहली-पहली बार देखकर) इसी प्रकार की पीड़ा होती है। भावुक कवि को इस वेदना का अनुभव अपेक्षाकृत और अधिक होता है, क्योंकि वह स्वभावतः तारुण्य प्रिय और सौन्दर्यपरायण होता है। उसके यशःकाय को भले ही जरामरण का भय न न हो, पर व्यावहारिक जीवन में जरा की कल्पना से ही भयभीत हो उठता है। उसे 'अंगं गलितं मुण्डं पालितम्' वाला बुढ़ापा असह्य है। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के शब्दों में— "लड़कपन का जाना वाह वाह ! बुढ़ापे का आना हाय, हाय !" यह बुढ़ापा एक बार आकर फिर लौटता ही नहीं, वह शरीर के साथ ही जाता है। भले ही कोई 'साठे पर पाठा' बने, भले ही विभिन्न उपचारों और कास्मेटिक्स-प्रसाधनों के सहारे कायाकल्प कर करके कोई 'ययाति' बनाने का उपक्रम करे और भले ही अजर अमर देवों की तरह कोई 'चिरकिशोर वय नित्य विलासी' बने रहने का सपना देखे, पर सत्य यह है कि जवानी जाकर नहीं लौटती और बुढ़ापा आकर नहीं लौटता—

जो जाके न आये वह जवानी देखी ।

जो आके न जाये वह बुढ़ापा देखा । ।

प्रायः मानसिक संतोष के उद्देश्य से वयोवृद्ध को धर्मवृद्ध, बुजुर्ग कहकर और धूप में पके बालों को अनुभव सिद्ध प्रौढ़ता का प्रमाण मानकर वृद्ध-पूजा का आयोजन किया जाता है, यों निराला जी के शब्दों में 'हर धर्मात्मा यौवन से प्यार करता है....। ' आयु के क्षीण होने पर वह कवि विद्यापति की तरह विक्षुब्ध होकर पूछता है-

वयस कतय चल गेला

तोहे रोवइत जनम बहल तइओ न अपन भेला। (विध्यापति पदावली)

वार्धक्य चूँकि अपरूपता और शिथिलता का निमित्त धर्म है, इसलिए सौन्दर्य स्रष्टा कवि उसकी प्रतीति मात्र से विचलित हो उठता है। कहते हैं, प्रसिद्ध अभिनेत्री सुन्दरी बर्लिन मुनरो ने पके बाल देखकर वार्धक्य की कल्पना मात्र से हताश होकर आत्महत्या कर ली थी। भगवती बाबू की चित्रलेखा ने भी वयः बोध होते ही वैराग्य धारण कर ली थी। अपनी अपरूपता के बोध से व्याकुल होकर महाकवि जायसी जब कहते हैं– "जेहि मुख देखा तेई हँसा, सुना तो आए आँसु" तो इससे महाकवि के मन की पीड़ा मुखरित हो उठती है। स्पष्ट है कि वार्धक्य कवि-हृदय का विषम भाव या प्रतिकूल धर्म है और यौवनागम अथवा कैशोर (विशेषतः वयः सन्धि-बेला) उसका प्रिय रंगस्थल है। यही अनाविद्ध रत्न, अनास्वादित मधु, अलून किसलय और 'अधखिले (अविकच) अंगों का मधुमास' कवियों को अभिप्रेत रहा है। भारतीय धर्मशास्त्र ने भी इसी वयः सौन्दर्य का विधान किया है। एक सूत्र के अनुसार 'वयः किशोरं ध्यायेत'। इसीलिए देवता के बाल-कैशोर श्री-विग्रह ही प्रायः पूजित होते दिखते हैं। मनीषियों ने शरीर को देव-मन्दिर कहा है और उसे शोभन बनाए रखने तथा जराजीर्ण (जर्जर) न होने देने का निर्देश किया है। 'आयु' के संयोग से इसका जो पराभव होता है, उससे 'दिनकर' की ही 'उर्वशी' नहीं, वरन् समस्त श्रीशोभा अन्तर्धान हो जाती है। अस्तु, 'हसीं' और 'जवां' बने रहने की अनवरत कामना करने वाला कवि हृदय अपनी ढलती अवस्था तथा उसके सूचक उपकरणों, मुख्यतः पके बालों को लेकर यदि कातर हो उठे तो कोई आश्चर्य नहीं। 'एक भारतीय आत्मा' (माखनलाल चतुर्वेदी) तो स्पष्ट कहते हैं—

'हाथ कहते हैं बाल सफेद और रोता है चंचल मन।'

इस बलिपंथी कवि को अपनी परवर्ती रचनाओं में स्वयं ही बुढ़ापे का स्वर सुनाई देता है। उसके ही शब्दों में—'स्वर में क्या बुराई है ?' निस्सन्देह जीवन के सांध्यकाल का पूर्वाभास होते ही मन शोकाकुल हो उठता है। महाप्राण निराला का अपराजेय व्यक्तित्व भी

इस परिस्थिति का साक्षात्कार करके विषाद-विह्वल हो उठता है—

मैं अकेला ।

देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।

पके आधे बाल मेरे

हुए निष्प्रभ गाल मेरे

चाल मेरी मन्द होती जा रही, हट रहा मेला। (अपरा)

इस कथन में यों तो समस्त शारीरिक शीर्णता का चित्रण है, फिर भी पके बालों की चिन्ता सबसे पहले मुखर हुई है। यह स्मरणीय है कि अपने जीवन की प्रथम उठान में बंगीय भावुकता से भरपूर छायावादी कवि निराला को 'आजानु विलम्बित केश' या 'कृष्णा घन अलकें' बहुत प्रिय रही हैं। वर्षों तक वे स्वयं बड़े-बड़े केश गुच्छ धारण किए हुए थे। 'देवी' नामक कहानी में वे लिखते हैं कि उनके लम्बे केशों को देखकर लोग उन्हें 'मिस फैशन' कहते थे, फिर भी उन्होंने बाल छोटे नहीं कराए। 'गाँधीजी से बातचीत' नामक निबन्ध में भी उन्होंने केशप्रियता का विवरण दिया है। उनके शब्दों में—"तब मेरे बाल बड़े-बड़े थे, कवि की वेशभूषा। नौजवान और नवयुवतियाँ मुझे सहर्ष देख-देख जाने लगीं......।" ऐसे सुरुचि-सम्पन्न और केश-सज्जा-प्रेमी को अपने पके बाल देखकर मर्मान्तक पीड़ा का होना स्वाभाविक है।

कवियों ने श्वेतकेशों को विरूपता का लक्षण तो माना ही है, यों सर्वाधिक मनोवेदना इन्होंने उस समय प्रकट की है जब कनपटी के पास इन्हें पहली-पहली बार पके बाल दिखाई दिए हैं। कालिदास कृत 'रघुवंशम्' महाकाव्य के सम्राट दशरथ को जब कर्णमूल के पास पके बाल दिखाई देते हैं तो कैकेई से शंकित बुढ़ापा उन्हें राम के राज्याभिषेक का निर्देश करता प्रतीत होता है—

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीन्र्यस्यतामिति।

कैकेयी शंकयेवाह पलितच्छद्मना जरा। (रघुवंशम् १२/६)

इसी भाव से प्रेरित गोस्वामीजी के दशरथ 'स्रवन समीप भये सित केसा' सोचकर जीवन-विरक्त हो उठते हैं।

वस्तुतः श्वेतकेशों को देखकर और उनके व्याज से प्रौढ़ता का अनुमान करके इन कवियों को ऐश्वर्य भोग से निर्लिप्त होकर आध्यात्मिक साधना करने का आत्मप्रबोध प्राप्त होता रहा है।

गुरुनानक ने श्वेतकेशों को लक्ष्य करके कहा है कि वृद्धावस्था में सिर रूपी सरोवर में श्वेत केश-हंस उतर रहे हैं—"ताजै पहरे रैणि के सरि हंस उलथड़े आई।" (नानकवाणी—१६७) पंचतन्त्र में उल्लेख है कि श्वेतकेशों के उदित होते ही तारुण्य समाप्त हो जाता है—

श्वेतं पदं शिरसि यन्तु शिरोरुहाणां,

स्थानं परं परिभवस्य तदेव पुंसाम्।

आरोपिताऽस्थि शकलं परिकृत्य नास्ति

चण्डाल कूपमिव दूरतरं तरुण्यः ।। (तृतीय/१८५)

इसी प्रकार श्रृंगार-वियोग के श्रेष्ठ कवि घनानन्द श्वेत केशों को शुभ जागरण का हेतु तथा जीवन के एक नये मंगलमय विहान का प्रतीक घोषित करते हुए कहते हैं—

"जड़ जीव न जागत रे अजहूँ

किनि केसन ओर ते भोर भई।" (सुजान चरित—३९९)

कवि के अनुसार ये श्वेतकेश हमें सचेत कर रहे हैं कि अब भोग काल के स्थान पर योग की बेला आ गयी है। कवि सेनापति ने इसी भाव की और स्पष्ट करते हुए

कहा है—

अबहूँ तू चेत मन, सीस भयो सेत

सेनापति सिख देत, जप हेतु सौ हरे हरे।

और न जुगति जासों होति आजु गतिदेति

भुगति मुकति हरिभगति हरे हरे। (कवितरत्नाकर—११८)

कवि के अनुसार सफेद बाल हमें सचेत करते हुए यही शिक्षा दे रहे हैं कि इस चौथापन में अब लगन लगाकर हरि-स्मरण कर लो.........।

कवि 'गंग' तो केशों के श्वेत हो जाने, किन्तु तो भी अन्तर्मन में केशव के न बसा पाने के कारण ग्लानि पीड़ित ज्ञात होते हैं—

कालिमा के चलत कलापति त्यों चेत होति

केस आये सित ह्वै न केसो आये मन में। (गंग कबित्त—१६)

कवि जगन्नाथ 'भानु' के अनुसार श्वेत केशों के आते ही काम का पराभव हो जाता है—"दृग अँधियारी छायी, सीस सित केस भये.....मौज है हनोज हू मनोज महाराज की।" (काव्यप्रभाकर पृ. ४४३)

तुलाराम को तो श्वेत केशों द्वारा मृत्युबोध की अन्तःप्रतीति तक होने लगती है। उनके एक 'अभंग' के अनुसार—

जरा कर्णमूली सांगी आली गोष्ठी।

मृत्यूचिये भेटी जवली.........

(तुकाराम वावांच्या अभंगाची गाथा अभंग, संख्या—२६,८६)

अर्थात् कानों के पाल के बाल सफेद हो चले हैं, जो मृत्यु के निकट आने की

सूचना है।

तात्पर्य यह है कि पहली-पहली बार सफेद बालों को देखकर इन कवियों ने कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं। कभी इन्हें ढलती अवस्था का अहसास हुआ है और इस प्रकार वार्धक्य जनित विरूपता-दुर्बलता आदि की दुश्चिन्ता अनुभव हुई है, कभी इन्हें अल्हड़ यौवन के क्षीण हो जाने का क्षोभ हुआ है और कभी इन्हें मृत्यु का पूर्वाभास हुआ है। इसीलिये श्वेत केशों के प्रकट होते ही ये कवि कर्त्तव्य सचेत होकर अध्यात्म की ओर अभिमुख होने का संकल्प घोषित करते हैं और वासनाओं से विरक्त होकर जीवन्मुक्त होने का उपक्रम करते हैं। स्पष्ट है कि ये श्वेत केश कवियों के हृदय-परिवर्तन के प्रेरक हेतु रहे हैं।

उक्त कवियों से भिन्न पंत जी ने सितवार्धक्य को पतझर की उपमा देकर 'भावक्रांति' सिद्ध किया है। वे यद्यपि केश-प्रसाधन के प्रति समर्पित से रहे हैं, फिर भी उन्हें एक अवस्था विशेष तक सीमित न रखकर सार्वकालिक मानते रहे हैं। 'साठ वर्ष एक रेखांकन' में वे स्वयं अपने घने रेशम से काले कुंचित केशों का रहस्य इंगित करते हुए कहते हैं—नैपोलियन का युवावस्था का सुन्दर चित्र देखकर मैंने स्वयं भी लम्बे घुँघराले बाल रख लिये। पंत का युवाकवि स्वर्ण सुरभित भार, या पीली लौ सी अलकों अर्थात् सुनहले भूरे कोशों के प्रति प्रलुब्ध रहा है, कभी नीले काले केशों के प्रति, यथा—'नील रेशमी तमसा कोमल खोल लोल कचभार'। (गुंजन) धीरे-धीरे अपनी वयस् प्रौढ़ता के अनुसार वे श्वेत केशों के प्रति भी प्रस्तुत हो जाते हैं। पंत जी के गीतों में 'रजत सुरभि के अलक जाल', 'हेम धवल पक्व केश', 'तन वन काँसों के फूल-केतन' आदि का यथेष्ठ वर्णन है। वे यद्यपि काले चिकने केशों के सफेद हो जाने की कल्पना से क्षुब्ध हैं, 'परिवर्तन' कविता में कहते भी हैं—

'कचों के चिकने काले व्याल केंचुली कांस सेवार

निश्चय ही केशों का यह विरूपण कवि को असह्य है, वह वार्धक्य से कुछ

भयभीत भी हैं (जैसे—'जरा डराती मुझे') फिर भी धीरे-धीरे कवि इन 'श्वेत पालित केशों' को 'वृद्ध शिशु' का उपहार मान लेता है और जरा को 'आदरणीय' कहकर साथ ही वृद्ध मन के 'अन्तर्यौवन' की कल्पना करके इस स्थिति को आत्मसात कर लेता है। वार्धक्य-सौन्दर्य की यह कल्पना स्वयं में अभिनव है। टैगोर ने वार्धक्य को शोभन बनाया था, जबकि पंत ने उसे भावात्मक अन्तर्यौवन रूप में परिणत कर लिया है। वस्तुतः यह मनः कल्पना मात्र है। श्वेत केशों को प्रायः प्रत्येक व्यक्ति ने विरूपता-बोधक माना है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने उन्हें 'मकड़ी के सितजाल' कहा है और दिनकर जी ने इसे मनोमालिन्य का सूचक कहा है—"जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है।"

यही नहीं, संस्कृत कवियों ने तो इस धवलता को लेकर कई प्रकार की उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'भोजप्रबन्ध' में एक कवि महाराज भोज से कहता है- "कहीं आपकी यश-धवलिमा प्रिया की अलकावली को भी धवल न कर दे।" धवलता की आशंका से आचार्य वाराह मिहिर ने 'वृहत्संहिता' में मूर्धजों (केशो) की सेवा का निर्देश किया है। उनके अनुसार, केशों में सफेदी आ जाने पर वस्त्रालंकार सुशोभित नहीं हो पाते। आचार्यों ने इसी उद्देश्यों से केशों को धूपित करने, परिपक्वप्राय केशों को छिपाने, गंगा-जमुनी शिरोभाग को रँगने और ' जटिल' के बजाए 'सुकेशी', 'कुन्तला', 'अलका' आदि रूपों को चरितार्थ करने का प्रतिविधान किया है। निस्संदेह वार्धक्यधर्मी सितकेश चिरयुवा कवियों को कदापि ग्राह्य नहीं रहे हैं। यद्यपि परसाई जी के अनुसार काले बाल मात्र यौवन नहीं हैं, फिर भी 'पहिला सफेद' बाल नामक रचना में वे भी वार्धक्य सूचक पके बालों को लक्ष्य कर उद्विग्न हो उठे हैं। तात्पर्य यह कि श्वेतकेश हर सुसंवेद्य साहित्यिक की दुखती हुई रग है, फिर कवि केशव को ही इसका अपवाद क्यों माना जाए?'[25]

इस वार्ता के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि रचनाकार ने संस्कृत के शब्दों

का अत्यधिक व्यवहार किया है, जो वार्ता की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वार्ताकार ने अपने किसी साहित्यिक निबंध को ही किंचित परिवर्तन के साथ वार्ता के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। लेखक ने जिसप्रकार अप्रचलित एवं कठिन शब्दों का प्रयोग किया है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस वार्ता की वाक्य-संरचना अपेक्षाकृत सहज है। छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा शब्दों के काठिन्य को कम करने की कोशिश की गई है। इस उदाहरण से एक बात साफ होती है कि आकाशवाणी और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध रहा है और दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित किया है। कहीं साहित्यिक विधा में बदलाव दिखाई देता है तो कहीं आकाशवाणी ने भी लचीला रूख अपनाया है।

इसी प्रकार आकाशवाणी के पटना केन्द्र से डॉ. जितेन्द्र सहाय की एक वार्ता 'घड़ी' प्रसारित हुई थी। वार्ता एवं आकाशवाणी के अन्तर्सम्बन्धों का आरेखन करने के लिए इसकी समीक्षा आवश्यक है। यद्यपि वार्ता लम्बी है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए इसे अविकल रूप में दिया जा रहा है:–

'इधर मैंने महीने में एक दिन गाँव जाने का सिलसिला बना रखा है, उस दिन मेरे डॉक्टर होने का लाभ ग्रामीण युवक उठाते हैं। कुछ युवक मिलने आते हैं, जिनकी वेश-भूषा ठेठ किसानों से भिन्न है तथा समय परिवर्तन के कारण आधुनिक हो जाना उनकी मजबूरी है। नौजवानों में एक समानता मैंने देखी कि सब की कलाई पर घड़ी बँधी हुई है, जिन घड़ियों में समय देखा नहीं जाता, पढ़ा जाता है। दो दशक पहले अचानक 'इलेक्ट्रॉनिक' घड़ियों का दौर आ गया, जिनमें न मिनट की सूई है, न सेकेंड की, नज़र नीची कीजिए कलाई पर घंटा मिनट सेकेंड का एहसास तुरंत हो जाएग। ये घड़ियाँ इतनी सस्ती हैं कि बच्चे इन्हें खिलौने की घड़ियाँ समझते हैं तथा इनके अभिभावक इनकी जिद्द पूरी करने में नहीं हिचकते। जमाने का बदलाव देखकर मुझे बचपन याद आगया, गाँव में दो ही

घड़ी थी। एक मेरे बाबा के पास, सोने की फ्रेम वाली कीमती जेब घड़ी जिसे वह जैकेट के पॉकेट में डाल कर उसके सुनहले चेन को बाहर निकाल कर रखते थे। दूसरी कलाई घड़ी पण्डित दीनानाथ जी के पास थी, जो एक राजदरबार के पुरोहित थे। इन दो को छोड़ दें तो सारा गाँव समय का अंदाज धूप-छाँव की गति से लगाता था। उदाहरण के लिए जब खिड़की से आती धूप आधे कमरे में आजाए तो 9 बजे हैं, जब अपनी छाया गोल हो जाए तो बारह बजे हैं। शाम से रात तक के समय का अनुमान ग्रामीण देशी तरीके से ही लगाते थे। यदि शुक्ल पक्ष हुआ तो चाँद का आकार तथा आकाश में उसकी स्थिति समय को बताती थी। स्यार की हुआँ हुआँ और कुत्तों के भोकने से आधी रात का अंदाज हो जाता था। चिड़ियों की चहक और मुर्गों की बाँग सुबह पाँच बजे की सूचना देती थी। मेरे बाबा और पण्डित दीनानाथ दो घड़ीधारी जब साथ जुटते तब बतरस का सिलसिला जारी हो जाता। एक बार मेरे बाबा ने तुलसीदास की एक दोहे का हवाला देते हुए कहा कि तुलसी के समय में घड़ी जरूर रही होगी–

एक घरी, आधी घरी, आधो में पुनि आध
तुलसी संगत साधु की, कटै कोटि अपराध।

जवाब में पण्डिय दीनानाथ ने उन्हें चित्त कर दिया। वह घरी तो भारतीय ज्योतिष का पल-विपल सम्बन्ध है। दैव संगति जिनकी मिली वे गाँव गँवई के लोग थे; जिनके पास घड़ी नहीं थी। उनके पास हल, बैल, दही, तरह-तरह की सब्जियाँ, किस्म किस्म के अन्न तथा व्यंजन थे। बाजे उनके पास कई तरह के थे, पर टिक-टिक करती घड़ी कलाई पर नहीं थी, न नींद हराम करने वाली अलार्म घड़ी। आप तुलसी के दोहे से चक्कर में पड़ गए। उनके पहले कबीर की वाणी भी चौंकाने वाली थी–

होशियार होय रहो मुसाफिर, कजाक फिरता गली-गली
तामें एक ठगनि बड़ चौकस, खबर लेत वह घरी घरी।

"कबीर की बात कीजिए दीनानाथ जी। वह तो कहते हैं—'काल्ह करन्ते आज कर आज करन्ते अब, पल में परलय होयगी बहुरि करोगे कब।' भगवान् ने आज और कल के नाम से अलग दिन क्यों बनाये ? यदि कल का काम हम आज ही कर लें तो आज और कल के विभाजन का कोई मतलब ही नहीं निकलता। हमारी या आपकी घड़ियाँ किसलिए हैं जब समय की पाबन्दी का कोई लिहाज नहीं ? आज और कल का कार्यक्रम घड़ी देखकर बनाया जाता है। यदि पल में प्रलय हो जाएगी, जीने का ही कोई ठिकाना नहीं तो ताम-झाम, हाय-तौबा, ऐशो-आराम किसलिए ?" बाबा के इस जवाब पर दीनानाथजी बगलें झाँकने लगे।

जमाने ने पलटा खाया। औद्योगीकरण, मशीनीकरण तथा शहरीकरण के दबाव में जीने का ढंग बदलता गया और समय जानने के पारम्परिक तरीके भुला दिए गये। अबोध अनवरत काल के नैरन्तर्य को नापने के लिए आ धमकी घड़ी। बैठ गई सबकी कलाई पर, जैसे घड़ी नहीं हथकड़ी हमें पहना दी गई हो। लोग कहने लगे घड़ी अनुशासन का प्रतीक है, स्वच्छंदता पर अंकुश है, जीवन को एक नियम में बाँधने का उपकरण है, इन कथनों की सच्चाई देखने को भी मिलती है—दफ्तर छूट जाएगा, ट्रेन छूट जाएगी, बस छूट जाएगी, निश्चित समय पर कहीं न कहीं पहुँचना है। जिसे देखो कलाई की घड़ी निहारता भागा जा रहा है। सारी दिनचर्या घड़ी से प्रभावित है—आठ बजे सुबह नाश्ता, एक बजे दिन का भोजन, फिर भोजनोपरान्त दस बजे रात एक खाट पर पसर जाना। व्यक्तिगत स्वाधीनता का शत्रु यह घड़ी हमें एक सीख देती है—

जहाँ व्यक्ति स्वाधीन बहुत है, नाश वहाँ छा जाएगा।
अनुशासन के बिना व्यक्ति, कुछ प्राप्त न कर पाएगा।।

घड़ी चलती रहती है अनवरत टिक्-टिक् करती हुई, उपयोगितावादी या स्वार्थपरायण व्यक्ति के यन्त्र के रूप में किन्तु वह बतलाती है कि कालचक्र की परिक्रमा करती हुई वह एक साधिका जैसी है जो एक मशीन का रूप धारण कर अरूप समय को एक

आकार देती है। धुन की ऐसी पक्की कि सबका इस पर विश्वास जम गया है। कर्मवादी, सिद्धान्तवादी, प्रत्यक्षवादी या परोक्षवादी सभी इसका आह्वान करते हैं। घड़ी प्रसंग में 'दिनकर' की कविता 'असमय आह्वान्' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

देवी ! कितना कटु सेवा धर्म।
न अनुचर को निज पर अधिकार,
न छिपकर ही कर पाता हाय !
तड़पते अरमानों को प्यार
यह कैसा आह्वान
समय-असमय पर तनिक न ध्यान।

घड़ी की उपयोगिता ने इसे बहुरूपिणी बना दिया है। कलाई घड़ी, अलार्म घड़ी, दीवार घड़ी, घंटा घर—ये सब इनके रूप हैं। रेलघड़ी, जलघड़ी, सूर्यघड़ी के प्रयोगों से रू-ब-रू होने का अवसर बहुत लोगों को नहीं हुआ, फिर भी पिछले तीन दशकों में कीमती घड़ियों के साथ-साथ सस्ती घड़ियों की भी बाढ़ आ गई है। इनसे शहर ही नहीं, दूर-दराज के गाँव भी पट गए हैं। इक्कीस ज्वेल और सत्रह ज्वेल की घड़ियाँ महानगरों में हिट हुईं, जिसके फलस्वरूप भारतीय कम्पनियाँ भी उनके उत्पादन में जुट गईं। किन्तु अचानक 'इलेक्ट्रॉनिक' गड़ियों का धमाका हुआ, भारतीय उपभोक्ता उसे लेने के लिए टूट पड़े। अपने अनोखे स्वरूप तथा सस्ता होने के कारण इनकी लोकप्रियता आज निर्विवाद है। हमारे देश में बनने वाली दीवार घड़ियाँ पूरी दक्षिण एशिया पर कब्जा जमा चुकी हैं। कीमत इतनी कम कि मध्यवर्गीय घर के हर कमरे की दीवार पर यह टँगी हुई दिखाई देगी। भेंट या उपहार के रूप में इसकी कद्र ऐसी है कि शादी हो या गृहप्रवेश, जन्मदिवस हो या मैरज एनिवर्सरी, तोहफा अधिकतर दीवार घड़ी का ही मिलता है। सौ-डेढ़ सौ की भेंट और पूरे परिवार का भोजन, कितना अच्छा सौदा है।

घड़ी आज व्यक्ति के जीवन का एक अंग बन गई है। जन्म-मरण, विवाह-मुण्डन या कोई शुभ कार्य सब घड़ी की गिरफ्त में है। जन्म का ही सही समय पण्डित को न बताया गया तो कुण्डली में हेराफेरी हो जाएगी। मेरे एक मित्र की पत्नी को जुड़वे बच्चे हुए, सिर्फ दो मिनट के अन्तर में कुण्डली की विपरीत भविष्यवाणियाँ हुईं, जो सच हुई। कालान्तर में एक को बड़ी कुर्सी मिली, दूसरा अपने कारनामों के कारण सीखचों के भीतर बहुत दिनों तक बंद रहा। कुण्डली की विश्वसनीयता बरकरार रही; क्योंकि घड़ी सही समय बतलाकर उसकी सहायिका बनी। मृत्यु भी यदि घड़ी में हो तो स्वर्ग के दरवाजे मृत व्यक्ति के लिए खुल जाते हैं। विवाह तो पूरे जीवन का संबंध है। अतः शुभ मुहूर्त का ध्यान तो वर-कन्या दोनों पक्षों को रहता है, घड़ी सभी की टँगी रहती हैं। लगन का समय बीत न जाए, इसकी हिदायत पण्डित बार-बार देता है। प्रकृति के कार्यकलाप घड़ी के सहारे ही समझे जाते हैं। सूर्योदय, सूर्यास्त कब होगा, दूज के चाँद तथा पूर्णमासी के चाँद आकाश में कब दिखेंगे तथा सूर्य या चन्द्रग्रहण की अवधि क्या होगी, हमारे पंचांगों में यह सब अंकित हैं। घड़ी पर नजर डालिए और पंचांग की गणना-पद्धति से अभिभूत होइए। मैं डॉक्टर ठहरा, चिकित्सा में घड़ी की महिमा अद्‌भुत है। हृदय की गति, नाड़ी की गति या श्वास की गति प्रत्येक मिनट क्या होनी चाहिए, इसकी अहमियत है। इसमें व्यवधान आते ही संकट की घंटी बजने लगती है। हृदय की या नाड़ी की गति यदि बहुत धीमी हुई तो 'पेसमेकर' लगाना अनिवार्य हो जाएगा। उसी तरह श्वास की गति की अनियमितता 'वेंटीलेटर' का सहारा लेने पर बाध्य करती है। व्यवहार में भी देखिए - मिल के साइरन, गिरजाघर के घंटे, दूरदर्शन - आकाशवाणी केन्द्रों का खुलना, बन्द होना सब वक्त की पाबन्दी के सूचक हैं और घड़ी के मोहताज हैं।

नए नौकरी-पेशों की पहली कमाई की पहली खरिदारी घड़ी की होती है। स्कूल के ऊँचे क्लास में पहुँचते ही लड़के अभिभावक से घड़ी की माँग करते हैं। घर का

नौकर भी बिना घड़ी कलाई पर बाँधे काम करना पसन्द नहीं करता। विवाह में वर को यदि कीमती घड़ी नहीं दी गई, तो पत्नी प्राप्ति पर भी उनका जीवन एकाकी ही रह जाता है। शौकीन दूल्हे दामी घड़ी बाँधकर ही मण्डप में बैठते हैं, जिससे कन्या पक्षवाले को दहेज के लिए एक चुनौती मिल सके। किसी भी सौभाग्यवती की कलाई की छोटी घड़ी की चमक उनकी चूड़ियों के सौन्दर्य में वृद्धि करती है। पुरुष हो या नारी, घड़ी दोनों की कलाई की प्रतिष्ठा है। प्रेमी-युगल के मिलन को सार्थक करनेवाला अलाउद्दीन का चिराग है। टेलीफोन पर कब भेंट हो, इशारे से कब बात हो, पार्क में कब मिलें, यह सब घड़ी की जवाबदेही बन जाती है। घड़ी न रहे तो प्रेमियों को जोड़ने वाले वायदे अर्थहीन हो जाएँगे, विश्वास का सूत्र टूट जाएगा, 'घड़ी-घड़ी मेरा दिल धड़के' वाला गाना विस्मृत हो जाएगा। प्रेम वादाखिलाफी नहीं बर्दाश्त कर सकता है। 'रहीम' को याद कीजिए -

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय

टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाए।

नई कीमती घड़ी खरीदने वाले बात-बात में घड़ी को निहारते हैं। लोगों को एहसास होता है कि इनका जीवन बहुत व्यस्त है, हरेक मिनट कीमती है तथा यह व्यक्ति संगति के योग्य है। उन्हें बैठाने के लिए मुँह से एक शेर निकल पड़ता है, जिसके प्रभाव में वह घंटों बैठ जाते हैं, अपनी घड़ी की अवहेलना करते हुए -

बड़ी मुश्किल से आप आये हैं, इस घर की तरफ

बार-बार न उठायें नजर, घड़ी की तरफ।

बाजार के मायावी इन्द्रजाल में फँसकर एक मित्र ने एक घड़ी कम्पनी को पटा लिया। दामी सोने की चमकवाली घड़ियाँ अपने पास मँगवा लीं। चक्षुप्रिय और मनोहरी घड़ियों को देख लोग उनपर टूट पड़े। मित्र को प्रसन्नता थी कि जिन साथियों को फुसलाकर वह घड़ियों की मनमानी कीमत ले रहे, उन्हें पता भी नहीं लगा कि वह एक कम्पनी के एजेंट हैं और बीच में कमीशन खाते हैं। उपकार का उपकार साथ ही व्यापार का व्यापार। बिक्री के

बाद कुछ घड़ियाँ बच गईं जिनको देखकर वह नयन-सुख पाते थे दोस्तों को ललचाते थे। एक दिन ये सारी घड़ियाँ अचानक गायब हो गईं, साथ उनकी हीरा-जड़ित घड़ी भी गई। अपने मन की अकथ-व्यथा को इन शब्दों में व्यक्त करते - 'नयी घड़ियाँ छलना मृग निकलीं, सुवर्ण कायाकल्प जिसके पीछे मैं भागता रहा और भूल गया कि रावण की उपस्थिति जरूर ही कहीं अगल-बगल होगी। मेरी इज्जत बढ़ानेवाली हीरा जड़ी घड़ी का गायब होना सीता-हरण जैसी घटना है।' उनके एक मित्र की यह करतूत थी जिसका खुलासा बाद में हुआ। वह कोसते रहे अपनी किस्मत को इस धारणा के साथ की रिश्ते और संबंध सभी आज उपभोग के ही विपर्यय हैं। न जाने इस व्यापार में उन्हें नफा हुआ या कुछ दण्ड भुगतना पड़ा।

घड़ी किसी भी व्यवस्था की रीढ़ होती है। सरकारी दफ्तर हो या निजी संस्थान, प्रतियोगिता हो या साक्षात्कार, सभा हो या सेमिनार, सभी घड़ी-आश्रित हैं। मुझे याद है किसी कपड़े मिल का सायरन देर से बजा, दूसरे दिन ओवर टाइम के लिए मजदूर धरने पर बैठ गए; क्योंकि उनकी छुट्टी पाँच बजे नहीं हुई। बड़े-बड़े लोगों के लिए भूत-लेखन करने वाले जानते हैं कि भाषणकर्त्ता कितने भी कद्दावर हों, उनका कद समय की माप में कैद है। राष्ट्रपति हों या प्रधानपमत्री सबका पैर वक्त से बँधा है। वक्त का पैर बाँधना असंभव है, अकल्पनीय है। रोज सड़क का दृश्य देखकर हताशा होती है - कोई कार से भाग रहा है, कोई स्कूटर से, कोई साइकिल से, कोई मोटरसाइकिल से एक निश्चित समय पर पहुँचने के लिए किसी निर्दिष्ट स्थान पर, बीच में दुर्घटना की चपेट में आ जाता है। गाड़ी लड़ जाती है ट्रक से, स्कूटर पर बस चढ़ जाती है, साइकिल, मोटरसाइकिल से आ भिड़ती है, पैदल चलनेवालों पर तो कोई चढ़ाई कर देता है। कई मरते हैं, कई अस्पताल पहुँचते हैं, फिर भी समय की गुलामी करनी ही पड़ती है। किस्सों में जैसे राक्षस की जान तोते में बसती है, इन भागदौड़ करनेवालों की जान घड़ी में बसती है।

समय की महत्ता को जानते हुए, टेलीफोन पर वक्त बताने की सुविधा है।

इलेक्ट्रॉनिक एक्सचेंज के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप एक खास नम्बर पर हिन्दी, अंग्रेजी दोनों में तुरंत समय बता दिया जाता है। पूर्व में जब केवल मानवीय सेवा उपलब्ध थी, तब भी समय बताने का सिलसिला चलता था। कई शहरों में घंटाघर की घड़ियाँ टेलीफोन से पूछकर ही ठीक की जाती हैं। इन सबके बावजूद बिगड़ी घड़ियाँ फेरे में डालती रहती हैं। 'स्लो-फास्ट' होने से घड़ी की मर्यादा को ठेस पहुँचती है। इधर अखबारों में एक खबर छपी थी कि अमेरिका के एक होटल में कोई व्यक्ति लंच लेने आया, उसे चार बजे हवाई जहाज पकड़ना था। खाने के बाद होटल की घड़ी पर नजर गई तो दो ही बजे थे, गरचे असलियत में तीन बज चुके थे। इत्मीनान से जब वह 'एयरपोर्ट' पहुँचा तो 'प्लेन' उड़ चुका था। होटलवाले से उसने मुकदमा पर मुआवजा वसूल किया। एक फसाना मैं सुनाता हूँ। मेरे गाँववाले घर में पहले सात बजे सुबह भगवान की आरती होती थी और घड़ी-घंटा बजता था। सामने स्कूलवाला दरबान, स्कूल की घड़ी खराब होने के कारण इसी घंटे की आवाज सुनकर स्कूल की घंटी लगाने का अभ्यासी हो गया था। स्कूल के प्रधान के पास घड़ी मरम्मत के लिए सरकारी फंड नहीं थे, जैसा अमूमन होता है। मेरे घर की घड़ी एक दिन अचानक बिगड़ और आरती आधा घंटा देर से शुरू हुई। रोजमर्रे की तरह स्कूल की घंटी भी पूजा के घंटे के साथ ही बजी। बिना सूचना के स्कूल डायरेक्टर समय पर आ धमके, दरबान के साथ हेडमास्टर भी निलम्बित हुए।

घड़ी ने वक्त की पाबंदी क्या सिखलायी, क्लीवों और आरामपसंदों पर मुसीबत आ पड़ी। शिकायतें ढेर सारी सुनने को मिलीं। न नाश्ता स्वाद से ले सकते हैं, न पेट भर भोजन खा सकते हैं, न आराम से घंटे भर लेट सकते हैं, न ताश-शतरंज में रम सकते हैं, न यार-दोस्त से गप्पें मार सकते हैं - बताइए ऐसी बदतर जिन्दगी ! गहरी नींद में सोया आदमी हड़बड़ाकर उठ जाता है, जब घड़ी का अलार्म यह संदेश देते हुए बजता है कि छह बज गए हैं, जुट जाओ अपने धंधे में। ऐसे लोगों के लिए किसी ने ठीक ही कहा है - 'चारों ओर वक्त ! वक्त ! का शोर है और इनके कानों को कमबख्त ! कमबख्त ! सुनाई पड़ता है।'

आधुनिक युग की परिस्थितियाँ बदली हैं। विज्ञान तो पूरी तरह घड़ी का सम्मान करता है। प्रयोग के लिए इनके पास 'डिजिटल क्रोनोमीटर' रहते हैं या इससे भी महीन समय नापने का यंत्र। अब तो मिसाइलें तथा परमाणु परीक्षण भी समय के नियंत्रण में हैं। सेकेंड भर की चूक में हादसा हो सकता है। समय और दूरी पर हमने विजय पा ली है। हम केवल भारतीय नहीं, 'ग्लोबल सिटिजन' हैं। कुछ पुरमजाक लोग कहते हैं कि हम तो ग्लोबल हो गए, घड़ी कहाँ ग्लोबल हुई ? भारत में दिन है तो अमेरिका में रात, घड़ी तो पुरानी ही चाल चल रही है। भाई लोग ये भरमाने वाली बातें छोड़िए, आप खूब जानते हैं कि पृथ्वी जबतक अपनी धुरी पर चलती रहेगी, समय का यह विरोधाभास बना रहेगा। घड़ी को क्यों दोष देते हैं ? हमने घड़ी के माध्यम से समय को नापा तो सही, पर साधने में चूक रहे हैं। इस देश की मिट्टी में पला आलस्य अब भी रंग ला रहा है। कितने पदाधिकारी या मुलाजिम समय पर दफ्तर आते हैं ? कितने शिक्षक या छात्र वक्त की परवाह करते हैं ? कितनी सभाएँ-गोष्ठियाँ समय पर शुरू होती हैं ? योजनाओं के प्रारूप, उम्मीदवारों की घोषणा, नेताओं की उपस्थिति सब में मनमौजीपन। जब तक समय की पाबंदी की महत्ता को हम नहीं हृदयंगम करेंगे, विकासशील देश ही कहलाएँगे। एक व्यवस्थित जिन्दगी की लालसा रखने वाले व्यक्ति को घड़ी की ओर बार-बार देखना पड़ता है तथा अपने जीवन को समय में बाँधने की भरपूर कोशिश करनी पड़ती है। क्या हमलोग कार्य संस्कृति की ओर कभी लौटेंगे ? समय को साधकर घड़ी को इज्जत देंगे ?"[26]

प्रस्तुत 'घड़ी' शीर्षक वार्ता के अध्ययन से कई बातें स्पष्ट होती हैं। पहली बात यह कि यह प्रस्तुति कहने के लिए वार्ता है, परंतु इसका स्वरूप बहुत कुछ आत्म-व्यंजक या ललित निबंध की तरह है; यद्यपि विषय-वस्तु एक तरह का सरलीकरण है, फिर भी आम जनता के मनोरंजन के लिए इसे रचनाकार ने लालित्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः इससे संकेत मिलता है कि आकाशवाणी ने साहित्य की कई विधाओं पर कुछ ऐसा दबाव

बनाया कि उसके मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुई। दूसरी बात यह है कि यह वार्ता अपनी प्रस्तुति में ऐसे संदर्भों का उल्लेख करती है, जिससे आम व्यक्ति का दिन प्रति-दिन का सरोकार रहता है। तीसरी जो महत्त्वपूर्ण बात है, वह है इसकी भाषा एवं प्रस्तुति-शैली। वस्तुतः रचनाकार ने साहित्यिकता से मुक्त हो कर अभिव्यक्ति की वह स्तर प्राप्त करने की कोशिश की है, जहाँ उसका संप्रेषण आम व्यक्ति तक आसानी से हो सके। शब्दों का चयन, वाक्य संरचना के साथ-साथ लोकजीवन की, खासकर मध्यम वर्ग की मनोवृत्ति को उकेरने का प्रयत्न लगातार किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आकाशवाणी ने सीधे तौर पर साहित्य के विविध विधाओं के भाव और शिल्प को प्रभावित किया है और साहित्यकारों ने आकाशवाणी को ध्यान में रखकर विविध रचनाएं की हैं।

4.(ग). कहानी

आकाशवाणी से प्रसारित की जाने वाली कहानियों को कोई भी लेखक अलग ढंग से नहीं लिखता है; अपितु कहानी का वही रूप आकाशवाणी द्वारा भी प्रसारित किया जाता है, जो आमतौर पर साहित्य में प्रचलित है। सिर्फ़ एक बात ध्यान देने की होती है और वह यह कि आकाशवाणी द्वारा निर्धारित समयसीमा के भीतर उस कहानी को पढ़ा जा सके। समयसीमा के साथ-साथ कहानी लेखक को यह भी ध्यान रखना होता है कि आकाशवाणी की आचार-संहिता के अनुसार कहानी में उल्लिखित पात्र, घटना, स्थान आदि विवादास्पद न हो, यानी किसी व्यक्ति, जाति, धर्म अथवा संप्रदाय पर कोई आक्षेप नहीं हो। रेडियो-लेखक मधुकर गंगाधर का विचार है, "रेडियो की कहानी के लिए भाषा सरल और सुबोध होना आवश्यक है। उलझी हुई अभिव्यंजना और बहुत ही कठिन भाषा की कहानी श्रोताओं की पल्ले नहीं पड़ती है। रोचकता कहानी के लिए परमावश्यक है। इन कहानियों के लिए जहाँ तक

संभव हो, आकर्षक तकनीक प्रस्तुत की जानी चाहिए। कहानी का संक्षेपित होना भी आवश्यक है।"[27]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारण के लिए किसी भी तरह की, किसी भी शैली की, किसी भी घटना पर आधारित या किसी भी कथानक को लेकर लिखी गई कहानी को स्वीकार किया जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर मधुकर गंगाधर ने अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है, "अब अगर हम संक्षेप में रेडियो के लिए प्रसारित की जाने वाली कहानी के बारे में सूत्र-रूप में बातें करें, तो यह कह सकते हैं- (क) कहानी सरल हो, (ख) रोचक हो, (ग) रेडियो के नियम-कानून के अनुकूल हो, (घ) संक्षिप्त हो, (ङ) उद्बोधक हो।"[28] आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों में हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियों के हिंदी रेडियो-रूपांतर भी प्रसारित हुए हैं। इनमें प्रमुख हैं, रोमा दास, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी

(असमिया), वसंतकुमारी पटनायक, सुरेन्द्र महान्ति (उड़िया), अली अब्बास हुसैनी, राजेन्द्रसिंह बेदी (उर्दू), बेटगरी कृष्ण शर्मा, निरंजन (कन्नड़), अख्तर मुहीउद्दीन, सोमनाथ जुत्सी (कश्मीरी), पन्नालाल पटेल, गौरीशंकर जोशी (गुजराती), अखिलन, ता. ना. कुमारस्वामी (तमिल), पालगुम्मि पद्मराज, मुनिमाणिक्यम नरसिंह राव (तेलगु), गुरबख्श सिंह, करतार सिंह दुग्गल (पंजाबी), संतोष के. घोष, मनोज बसु (बंगला), अरविंद गोखले, गंगाधर गाडगील (मराठी), कारूर नीलकंठ पिल्लै, एस. के. पोट्टेकाट्ट (मलयालम)। इन हिंदीतर कहानीकारों की रचनाओं को हिंदी में अनुवाद कर आकाशवाणी से प्रसारित किया गया है। यह स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास लिए एक महत्त्वपूर्ण अवदान है। जिस प्रकार आकाशवाणी अपने विविध कार्यक्रमों के प्रसारण-माध्यम से समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, उसी प्रकार कहानियों का प्रसारण कर जन-जीवन की साहित्यिक रुचियों को तुष्ट करने से पीछे नहीं है। सिर्फ़ हिंदी कहानीकारों की रचनाओं का प्रसारण ही नहीं हुआ; बल्कि

अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियों का हिंदी रेडियो-रूपातर भी प्रसारित किया गया, जिससे स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और धनी हुआ है। उदाहरण के तौर पर रोमा दास की असमिया कहानी 'खोटा रुपया' का हिंदी अनुवाद देखा जा सकता है—

"शादी के बाद ठीक सातवें दिन की बात है।

मैं आया हूं शिलांग से, कर्त्तव्यमय डाक्टरी जीवन से दो महीनों की छुट्टी लेकर। किराए पर एक मकान लेकर ठहरा, प्रतीक्षा कर रहा हूं कि मेरी नव-विवाहिता पत्नी, वृद्धा मातृदेवी और बहन इला भी यहाँ आ जाएं और मेरे विवाहित जीवन की मधुर शुरुआत हो।

ठीक दस बजे में डाकघर के सामने खड़ा हूँ। मेरे हाथ में एक चिट्ठी है, जो लिफ़ाफ़े में बन्द है। सिर्फ़ एक टिकट की ज़रूरत है।

डाकघर में टिकट ख़रीदने वालों की बहुत भीड़ हो रही है। मेरे पास ही लम्बी दाढ़ी वाला एक सिक और उस तरफ़ है एक षोडशी सुन्दरी, जो कि शायद फ़िरंगी की दुहिता ही है। शरीर का हर एक अंग सोने की तरह चमक रहा है। आँखों की दृष्टि भावों से परिपूर्ण है।

मैंने देखा कि वह एक रुपया देकर कुछ टिकट और लिफ़ाफ़े ख़रीदने में लग गई। फिर उसने उन्हें संभालते हुए पास ही खड़ी होकर एक-एक करके चिट्ठी पर लगाया और पते लिखने शुरू कर दिए।"[29]

यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। इसकी शुरुआत काफ़ी रोचक ढंग से हुई है। इस कहानी में विवाहेतर संबंध की थोड़ी झलक मिलती है। विवाहित नायक एक युवती को देख कर उसके प्रेमपाश में आबद्ध हो जाता है। अनजान बनकर उस युवती से इस तरह के संबंध के बारे में अपनी समस्या को दूसरे की समस्या कह कर उसे बताता है—

"--नहीं। पहले की तरह उनका प्यार लतिका के प्रति है। इसीलिए वह इसकी एक मीमांसा चाहते हैं। दो रास्तों के बीच एक सीधा रास्ता।

—तो इसमें सोचने की बात नहीं है। क्योंकि मुहब्बत और वैवाहिक संबंध बिल्कुल अलग चीज़ें हैं। और वे सदा अलग होकर ही रहनी चाहिए। पत्नी के प्रति निष्ठावान होकर भी, दुनिया में किसी और को प्यार करना मुमकिन है।

—तुमने एक असम्भव बात कही है मिनि। शायद तुम जानती ही होगी कि पत्नी साधारणतः संकीर्ण मन की होती है। किसी दूसरी युवती की बात तो छोड़ दो, वह अपने पति का किसी दोस्त के प्रति भी आकृष्ट होना बरदाश्त नहीं करती।

—शायद आप पुराने जमाने की स्त्रियों की बातें कर रहे हैं। शिक्षिता,

प्रगतिशील नारियाँ कहीं भी ईर्ष्यालु नहीं होती है। आप परीक्षा लेकर क्यों नहीं देखते।"[30]

स्पष्ट है कि इस कहानी में भावनाओं और रिश्तों में आने वाले बदलाव को आरेखित करने का प्रयास किया गया है; जो वस्तुतः औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण अधिक जटिल रूप में सामने आने लगी है। यद्यपि यह समस्या असम और आसपास के इलाक़े की उतनी नहीं है जितनी महानगरों की; फिर भी रचनाकार ने अपने ढंग से समस्या को व्यक्त किया है। इस दृष्टि से अगर हम देखें तो आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियां हमारे देश की कहानी की विविधता, संस्कृति की विविधता और साहित्य की विविधता को प्रतिबिंबित करती हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि कहानी साहित्य की एक अति सशक्त विधा है। देश की भावात्मक एकता की नींव को मज़बूत करने के लिए इस तरह के प्रसारण की आवश्यकता आकाशवाणी ने महसूस की है। अन्य भाषाओं की कहानियों के प्रसारण से निश्चय ही हिंदी साहित्य का मार्ग प्रशस्त हुआ है और राष्ट्रीय एकता की आधारशिला पुष्ट हुई है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों के विवेचन से पूर्व हम कुछ ऐसे बिंदु को तलाश

करना चाहते हैं जिससे कहानी एवं आकाशवाणी के अंतर-संबंधों को प्रकट किया जा सके। जहाँ तक कहानियों का प्रश्न है- "अपने प्रारंभिक रूप में कहानी का रूप कलात्मक नहीं था, क्योंकि जिन जातियों या भाषाओं का कोई साहित्य नहीं था; उनमें भी दंतकथाओं के रूप में उसका प्रचलन था। वह केवल परिजनों अथवा समुदाय-सदस्यों के मध्य कही जाती थी इसलिए उसकी 'कहनी' संज्ञा पड़ी। परंतु आज कहानी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, क्योंकि इसके द्वारा पाठकों को थोड़े समय में सरलता से मनोरंजन और ज्ञान दोनों की एक साथ उपलब्धि हो जाती है।

पाश्चात्य कथा-साहित्य के अग्रणी कहानीकार एडगर एलेन पो के शब्दों में- "कहानी रसोद्रेक करने वाला एक आख्यान है जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके।"

एच. जी. वेल्स के अनुसार- "कहानी तो बस यही है जो लगभग बीस मिनट में साहस और कल्पना के साथ पढ़ी जाय।"

डॉ. श्यामसुन्दर दास के शब्दों में- "आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है।"

प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द के शब्दों में- "कहानी (गल्प) एक रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का संपूर्ण तथा वृहद रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता.....।"[31]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'कहानी मनोरंजक हो, बीस मिनट में उस कहानी को पढ़कर समाप्त कर दिया जाए, कहानी का एक निश्चित उद्देश्य हो और इसमें मनुष्य के जीवन के किसी एक हिस्से का वर्णन हो'। ये सारी बातें आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानी पर लागू होती है। इसमें एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आकाशवाणी के लिए स्वीकृति की एक शर्त यह होती है कि वह कहानी आकाशवाणी द्वारा

निर्धारित आचार संहिता के अनुसार लिखी गई हो और निर्धारित समयसीमा के भीतर उसे पूरी होनी चाहिए। यदि दस मिनट की अवधि के लिए कहानीकार को अनुबंध पत्र मिला है तो उसे नौ मिनट के भीतर कहानी को समाप्त कर देनी होती है। कहानी की लंबाई यदि अधिक हुई तो कार्यक्रम निष्पादक को संपादन करना पड़ता है और यदि कम हुई तो प्रसारण कर्ता को बाक़ी समय के लिए वाद्यसंगीत या किसी अन्य प्रकार से, जैसे विज्ञापन, आवश्यक सूचना आदि देकर उस ख़ाली को समय पूरा करना पड़ता है। एक मिनट का समय आरंभिक और अंतिम उद्घोषणा के लिए रखा जाता है। इस उद्घोषणा में लेखक, प्रस्तुतकर्ता, रिकार्डिंग इंजीनियर आदि का नाम श्रोताओं को बताना पड़ता है।

जहाँ तक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों की सफलता की बात है, चाहे कहानीकार अपनी कहानी की कितनी ही प्रशंसा करे और चाहे आलोचक उसमें कितने ही दोष निकाले- इससे कोई वास्तविक अंतर नहीं पड़ता; क्योंकि किसी कहानी के मूल्य का पहला निर्णयकर्ता है आकाशवाणी का कार्यक्रम अधिकारी, जो उसे प्रसारित कर श्रोताओं के सम्मुख लाता है। इस प्रकार कहानीकार और श्रोता के बीच माध्यम का कार्य करता है और दूसरे निर्णायक हैं- श्रोतागण जो कहानी को सुनकर उस पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं। अनेक श्रोता आकाशवाणी के उस केंद्र को, जहाँ से कहानी का प्रसारण हुआ है, पत्र लिखकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। श्रोताओं की प्रतिक्रिया से कार्यक्रम-अधिकारी का प्रभावित होना स्वाभाविक है। ऐसे कहानीकारों को अधिकारी नब्बे दिनों के अंतराल पर अनुबंधित कर सकते हैं।

कहानी का सर्वप्रमुख और सर्वप्रथम गुण है उसकी रोचकता। कहानी चाहे किसी विषय पर हो और किसी प्रकार की हो पर वह रोचक अवश्य होनी चाहिए। कहानी में कितने ही ऊँचे आदर्श, सुंदर भाव, महान विचार और हितकारी उपदेश क्यों न हो, वह श्रोता को केवल रोचकता के बल पर ही आकर्षित कर सकती है। कहानीकार यदि कोई संदेश

अपने श्रोताओं को देना चाहता है तो भी उसे केवल रोचकता के आवरण में ही लपेट कर दे सकता है; अन्यथा श्रोता कहानी सुनने के लिए बाध्य नहीं हो सकते। चूँकि कहानी का कोई निश्चित एवं मुद्रित रूप श्रोताओं के सामने नहीं रहता, इसलिए उन्हें आकर्षित करने के लिए, तत्काल बाँध लेने के लिए यह आवश्यक है कि कहानी का प्रारंभ अत्यंत आकर्षक हो। यदि कहानी का प्रारंभ रोचक नहीं होता तो शेष कहानी काफ़ी रोचक होने पर भी शायद ही कोई श्रोता सुने। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों का अवलोकन करने से यह बात सामने आती है कि प्रसारित कहानियों में से अधिकांश के प्रारंभ में ही कोई ऐसी बात कही गई है, जो श्रोता को आगे सुनने के लिए बाध्य करती है। पात्र किसी उलझन में पड़ा है या उसके सम्मुख कोई महत्त्वपूर्ण समस्या है। श्रोता जानना चाहता है कि अब इन पात्रों का क्या होगा,

वे अपनी उलझन से निकल पाएँगे या नहीं, निकल पाएँगे तो किस तरह ? पात्र जो कदम उठा रहे हैं उसका क्या परिणाम होगा, उनका अंत सुखमय होगा या दुःखमय ? यही बातें हैं जो कहानी के प्रारंभ की रोचकता में वृद्धि करती हैं। कहानी प्रारंभ यदि वार्तालाप से भी किया जाए तो यह रोचकता का एक प्रमुख साधन बन जाता है अथवा कहानी के विषय को सिद्धांत या सूत्र के रूप में प्रारंभ में रखा जाता है। कुछ भी हो, प्रारंभ ऐसा होता है कि वह श्रोता में उत्सुकता, जिज्ञासा और आगे सुनने की अदम्य इच्छा उत्पन्न करता है। इस प्रसंग के माध्यम से हम इस ओर संकेत करना चाहते हैं कि आज़ादी के बाद नई कहानी के दौर में हिंदी कहानी में जो तमाम आंदोलन या धाराएँ चलीं, उनके शिल्प के निर्माण के पीछे आकाशवाणी को भी देखा जा सकता है। वस्तुतः आकाशवाणी की माँग वैसी कहानियाँ थीं, जिनकी प्रारंभिक दो-चार पंक्तियाँ ही सघन रूप से श्रोताओं को पकड़ सकीं। इस क्रम में यशपाल की कहानी 'समाधि के फूल' देखी जा सकती है, जो आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुई थी। अगर इसके प्रारंभ को देखें तो मेरी बात बहुत कुछ स्पष्ट हो सकती है। पूरी कहानी इस प्रकार है—

'गौने'में जा रही थी।

इनके बारे में सुना था कि बड़े भले आदमी हैं। बहुत पढ़े-लिखे हैं। अमृतसर में किसी बैंक में बाबू हैं। ससुराल के बारे में सुना था कि वज्र देहात है, पहाड़ में व्यास नदी के किनारे छोटा-सा गांव है। वहां रेल तो क्या मोटर भी नहीं जाती। अद्‌भुत रीति-रिवाज है।

नदी किनारे मोटर लारी रुकी। नाउन ने मेरे कपड़े सुलझा कर सहारा दे मुझे पालकी पर बैठा दिया। नदी में नाव, नाव में पालकी और पालकी में मैं। ऐसे नदी पार कर कुछ दूर गई, बारात के साथ बाजे बज रहे थे। दूर से और भी बाजे बजने का स्वर सुनाई दिया। साथ के बाजे का स्वर ऊंचा हुआ। समझ गई कि पहुंच गए।

यों तो जो होना था हो चुका था। अब मैं इसी घर की थी, परंतु ससुराल के द्वार पर पहुंच कनपटियों से बही पसीने की धारों के कपड़े भीग गए और हृदय धड़कने लगा।

बाजे बहुत ज़ोर से बजने लगे, बन्दूकें और पटाखे चलने लगे। और स्त्रियों के सम्मिलित गीतों का अस्पष्ट स्वर सुनाई दिया। उन सबको चीरती पुरुषों की चिंता, झुंझलाहट और हुकूमत भरी आवाज़ें। हृदय बैठा जा रहा था और सिर चकरा रहा था।

गीत गाती स्त्रियों के समूह ने पालकी को घेर लिया। पर्दा उठाकर मुझे बाहों से पकड़ पालकी से उतारी गया। कांपते पांवों से द्वार की ओर सरकने लगी। सहसा स्त्रियों का गाना रुक गया। ऊंची पुकार सुनाई दी—पहले समाधि पूजन होगा। ....इधर चलो—स्त्रियों ने मेरे कंधों को घुमा दिया।

छोटे भैया का उत्तेजित स्वर सुनाई दिया—यह क्या तमाशा है। लड़की मसान-मढ़ैया नहीं पूजेगी।

उत्तेजित स्वर में उत्तर मिला—यह तुम्हारा घर नहीं है। हमारे रीति-रिवाज कैसे नहीं होंगे।

मन में आया, भैया व्यर्थ में झंझट कर रहे हैं। जब मुझे दे ही डाला, तो अब

उनका मुझ पर अधिकार क्या ?

मेरे आंचल का छोर इनके दुपट्टे से बांधा गया। स्त्रियों का गिरोह हम दोनों को घेरे ठेलते हुए समाधि पर ले गया। दोनों ने माथा टेका। लौट कर द्वाराचार और दूसरी रीतियां भी बहुत देर तक होती रहीं।

दिन भर की थकावट से शरीर जकड़ा सा था। आंखों में नींद भरी थी, परन्तु मुंद न पाती थीं, जैसे उनमें तिनके अड़े हों। सबसे उत्कट क्षण अभी आने को था।

'ये' बिना आहट किए आए और समीप पलंग पर बैठ गए। मैं और भी सिमट गई। पूछा—तबियत तो ठीक है न ?

मैं चुप रही। स्वयं ही बोले—इस लम्बी यात्रा से बहुत थकावट हो जाती है। आराम से लेट जाओ—लज्जा से मेरा सिर झुक गया।

ये कुछ सोचकर बोले—समाधि की पूजा से तुम्हारे भैया को बुरा लगा। उसमें ऐसी कोई बात नहीं है, कोई पीर-मसान नहीं है। इसे प्रेमियों की समाधि या बल्लू-चमेली की समाधि कहते हैं। यहां इस समाधि की बहुत मानता है। यह पत्थर पूजा नहीं, भाव की अराधना है.........।

ये तकिया बगल में ले कर लेट गए और सुनाने लगे। यहां से दस मील ऊपर पहाड़ में पतिया एक छोटा सा गांव है। बल्लू उसी गांव के गूजर रट्टू का बेटा था, भला सा जवान, ग़रीब माँ-बाप का बेटा। पतिया के समीप ही डामू की बस्ती है। बीच में चीड़ के पेड़ से छाई घाटी है। डामू के राधे साह का बड़ा नाम था। तीस-चालीस कोस में उनकी हवेली की धूम है। चमेली राधे साह की बेटी थी, ओस में धुली, सुगंध से भरपूर चमेली की कली।

बल्लू दोनों गांवों के गोरू चराता था। एक रोज़ उसने बीच की घाटी की बाबड़ी पर चमेली को देखा। देखा चाहे पहले भी हो, पर किसी क्षण का देखना कुछ और ही हो जाता है। जाने, किसी पिछले जन्म के संस्कार जाग उठे। बल्लू चमेली के पीछे हो लिया।

पास-पड़ोस में चर्चा होने लगी। चमेली का घर से निकलना बंद हो गया। बल्लू अपने गोरू छोड़ दिन-रात डामू की परिक्रमा करने लगा।

राधे साह अपना अपमान समझ गूजर के लड़के पर बिगड़े। रद्दू के छप्पर में आग लगवा दी। उनके आदमी लाठी लिए बल्लू को मारने के लिए फिरते रहते। कहते हैं, बल्लू के गोरू को घेर कर बैठ जाते और वह प्रेम का देवता उन्हें वंशी सुनाता रहता। एक दिन राधे साह के नौकर ने बल्लू पर लट्‌ठ उठाया। बल्लू खड़ा हंसता रहा। डामू के ही एक सांड ने नौकर के पेट में सींग दे मारा।

चमेली हवेली के आंगन से निकलने ही न पाती थी। राधे साह ने उसकी सगाई भिजवा गांव के भट्‌ट साह के लड़के से कर दी। प्रेमी के मन की आह लगी। लड़के को सांप काट गया।

समाधि के समीप जलेश्वर का स्थान है। वहीं बैसाखी का बड़ा भारी मेला लगता है। बहुत बड़ा बाज़ार लगता है। खेल-तमाशे आते हैं। दस-पन्द्रह कोस तक का कोई आदमी नहीं, जो उस मेले में न आता हो।

राधे साह लड़की को लेकर पूजन और मनौती करने मेले में आए थे। बल्लू की सूरत तो चमेली में लगी थी, उससे कैसे छिपता। वह भी पीछे-पीछे बंसी बजाता मेले में पहुंचा।

चमेली मेले और पूजा के कपड़े पहन कर आई थी। वह मां, भावज और सहेलियों से घिरी एक बिसाती के यहां टिकुली-बुंदे ख़रीद रही थी। बल्लू की नज़र उस पर पड़ी और पुकार बैठा 'चमेली'।

मां, भावज और सहेलियां चमेली को दूसरी ओर ले गईं। बल्लू पालतू कुत्ते की तरह उनके पीछे-पीछे चला। स्त्रियों ने उसे गालियां दीं, उस पर कंकर फेंके। बल्लू चुप रहा, परन्तु चमेली को देखा तो फिर पीछा न छोड़ा।

धर्मस्थान का मेला ठहरा। भले घरों की बहू-बेटियां पूजन के लिए आती हैं। लोग जमा हो गए। बल्लू को समझाया, फटकारा और मारने की धमकी दी। बल्लू मुसकराता रहा पर चमेली को उसने आंख से ओट न होने दिया।

चमेली के घर के लोग उसे लेकर शिव पूजन के लिए मंदिर में गए। बावला बल्लू भी मंदिर घुसने लगा। प्रेम भगवान के सच्चे पुजारी के लिए ही वहां स्थान न था। उसे धक्के देकर निकाल दिया गया। बल्लू फिर भीतर चला। राधे साह ने गांव के लोगों को पुकारा। बल्लू पर लाठियां और पत्थर पड़ने लगे। माथे का खून एड़ी तक बह गया। पर वह मंदिर में घुसने के प्रयत्न से न हटा।

चमेली मंदिर के भीतर कोने में खड़ी यह सब देख रही थी। कहते हैं न, उस युग में सती ने हरि के लिए तपस्या की थी। हरि बल्लू के रूप में उसी का बदला दे रहे थे।

सती चमेली से न रहा गया। वह आंसू बहाती बाहर आ गई और बोल पड़ी—इतना ही प्यार है, तो जाकर नदी में डूब मर। मेरी जग हंसाई क्यों करा रहा है।

वहीं चट्टानों में नदी की धार ऐसे गिरती है कि बांसों ऊंची फुहारें उठती हैं। फेन ही फेन भरा रहता है। लड़की का भारी कुंदा भी गिर जाए तो छिपटियां उड़ जाएं।

चमेली की बात सुन कर बल्लू क्षण भर को सहमा और फिर नदी की ओर दौड़ पड़ा। लोग देखते रहे वह नदी में कूद पड़ा। अभी लोग देख ही रहे थे कि बल्लू के चरणचिह्न पर चमेली बिजली की तरह लपकी और वह भी नदी के उमड़ते फेन में कूद पड़ी।

प्रेम की महिमा। अगले दिन लोगों ने देखा कि दोनों के शरीर एक-दूसरे के आलिंगन में एक चट्टान पर रखे हैं। लोग उन्हें भक्ति भाव से उठा कर ले गए और उनकी समाधि बनाई गई। जलेश्वर के पूजन के साथ इस समाधि की भी पूजा होती है। ब्याह के पश्चात द्वार प्रवेश से पहले वर-वधू प्रेमियों की समाधि की पूजा करते हैं। कहते हैं इससे

दोनों का प्रेम अमर होता है। घर में कलह होती है, तो समाधि की धूल लाकर रखते हैं। उससे पति-पत्नी का मनमुटाव मिट जात है।

वह पूजा अमर प्रेम का वरदान पाने के लिए ही की गई थी।

मैं सांस रोके सुन रही था। उनका स्वर हृदय में गहरा उतर कर माधुर्य बढ़ा रहा था। मेरा सिर अनुराग से झुक गया। ये आर्द्र स्वर में बोले—तुमने इससे पहले कभी प्रेम किया है?

मेरा श्वास रुकने लगा। अपने देवता के सम्मुख पहली बात ही झूठ कैसे कह दूँ? सिर झुकाए चुप रह गई। इन्होंने मेरी पीठ सहला कर स्नेह से आग्रह किया—बोलो।

ओंठ काट कर आंसुओं का घूंट बर कर उत्तर दिया—प्रेम करना सीखा था।

इनका हाथ मेरी पीठ पर से हट गया।

कितनी ही देर समाधि की पूजा कर समाधि की धूल घर के कोने-कोने रख चुकी हूं। पर वह धूल इनके हृदय में कैसे रख पाऊं ?"[32]

प्रस्तुत कहानी का शिल्प यशपाल की दूसरी कहानियों के शिल्प से काफ़ी कुछ अलग है। यशपाल एक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी चिंतक थे और उनके लेखन में उनका चिंतक स्पष्ट देखा जा सकता है। फिर भी यह प्रश्न उठता है कि आख़िर यशपाल ने लोकजीवन के कोमल प्रसंग को अपनी कथा का विषय क्यों बनाया; जबकि इसमें उनकी मान्य वैचारिकता नहीं दिखाई पड़ती ? क्या इसका अर्थ यह लगाया जाए कि इस कहानी की सर्जना आकाशवाणी को ध्यान में रखकर की गई है अथवा यह कि आकाशवाणी ने इस कहानी के शिल्प में कुछ हेर-फेर या रद्दोबदल किया है ? यद्यपि यह कहानी लोकजीवन से संबंधित है और सरलतम शैली में लिखी गई है; परंतु पूर्वदीप्ति शैली के कारण श्रोताओं को समझने में परेशानी हो सकती है।

आकाशवाणी में कहानी की प्रस्तुति दो तरह से की जाती है। एक तो सिर्फ़

कहानीकार अपनी कहानी का वाचन करता है, दूसरे दो या तीन कलाकार मिलकर कहानी को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं। जब कहानी को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया जाता है; तब श्रोताओं को कहानी समझने में आसानी होती है। अलग-अलग पात्र की भूमिका अलग-अलग स्वर में सुनकर श्रोता इस कहानी को आसानी से समझ लेता है। यदि एक ही वाचक-कलाकार कहानी को प्रस्तुत करता है; तब उसे अपनी आवाज़ में उतार-चढ़ाव, बलाघात आदि पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। जब कोई भी रचना आकाशवाणी द्वारा प्रस्तुत की जाती है, तब श्रोता उसे समझने की कोशिश करते हैं और फिर अपने मस्तिष्क में उस प्रस्तुति का चित्र बनाते हैं। यदि वे सही चित्र अपने मस्तिष्क में नहीं बना सके तो उस प्रस्तुति को असफल कहा जाएगा। आकाशवाणी मुख्य रूप से एक ध्वनि माध्यम है। उच्चारण

इसका मूल है। जो हम उच्चारित करते हैं वही संप्रेषित होता है। यदि उच्चारण त्रुटिपूर्ण है तो संप्रेषण भी त्रुटिपूर्ण माना जाएगा। इसीलिए लेखन भी वैसा ही होता है, जिसका उच्चारण आसानी से कोई भी व्यक्ति कर सके और सुनने वाला आसानी से समझ भी सके।

आकाशवाणी द्वारा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'अमीरी और ग़रीबी' का प्रसारण किया गया था। इस कहानी का कथानक ऐतिहासिक है। यद्यपि इसमें अरबी और उर्दू के शब्दों का खूब प्रयोग किया गया है, जिसे एक आम श्रोता को समझने में काफ़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। फिर भी इस कहानी के प्रारंभ को देखकर अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ ही श्रोताओं को बाँधने में सहायक हो सकती हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए पूरी कहानी दी जा रही है–

'—अजी, तुम भी कैसी बे-सिर-पैर की बातें करते हो ? तुम्हारा सिर फिर गया है क्या ?

—जहाँपनाह ! गुस्ताख़ी माफ़, ग़ुलाम जो बयान करता है, बावन तोले पाव रत्ती सही है और सच है।

—सच है ? सही है ? तुम कह दो और हम मान लें ? कैसे मान लें भला ? मुल्क का गवर्नर और मुल्क में सबसे ग़रीब ?

—हाँ, ग़रीब परवर ! मुल्क भर में सबसे ग़रीब मुल्क का गवर्नर है। और जो बात ख़लीफ़ा ने अपने दूत से कही, कहीं वही बात आप हमें भी कह दें।

—भला पद और मद नदारद यह छत्तीस का मेलजोल ?

—जी, आज के युग में अर्थ ही पुरुषार्थ, अर्थ ही परमार्थ। चाहे जो हो, मगर उन दिनों दिल की दौलत ही अपनी बड़ी पूंजी थी, यह मोहरों से भी भरी तिजोरी नहीं। सच मानिए, यह कोरी कहानी नहीं, बहके मन की मनमानी भी नहीं, इतिहास के पन्ने, लड़ाई-भिड़ाई और हार-जीत के कारनामों की सनसनीख़ेज़ दास्तानों की ओट में दिल के दर्द

से भीगी जिन नायाब नेमतों के छिपाए रहते हैं, उन्हीं में से यह एक है, हां सच्ची घटना, सच्ची बात।

मदीने की ख़िलाफ़त का जमाना था। हज़रत उमर की गद्दीनशीनी रही। मिस्त्र की सल्तनत अपनी मुट्ठी में थाम जब एक अरब मुसलमान को वहाँ के गवर्नर की गद्दी दी तो हज़रत उमर के इक़बाल की बुलंदी सब पर छा गई।

रोबदाब और हुकूमत-रौनक की चकाचौंध में अक्सर सत्ताधिकारी की आँखें झिप-झिप जाती हैं और आते-आते वह दिन आता है जब के सुख-दुख से उसका रिश्ता छूट-सा जाता है। मगर हज़रत उमर एक ऐसे अमीर थे जिनके आँखों में अमारत का नूर भले चमकता हो, सर पर अमारत का भूत नहीं था। प्रजा की ख़ैरियत और सहूलियत पर उनकी नज़र बराबर रहा करती और ख़ुफ़िया दूतों से मुल्क की अंदरूनी हालत की सच्ची जानकारी वह बराबर हासिल करते रहते।

तब से जाने कितने गवर्नर मिस्र के हुए और गए, उनके बाद एक ऐसे साहब आए जिनकी बात आज यहाँ आ गई।

ख़लीफ़ा के दरबार में साहबों-मुसाहबों की भीड़ लगी है। हाथ जोड़े दूतों और मुलाज़िमों की कतारें एक क़रीने से, एक सलीक़े से खड़ी हैं। हज़रत उमर आने ही वाले हैं। ऐन मौक़े पर सभी एक अदब से अपनी-अपनी जगह चौकन्ने हैं।

ख़लीफ़ा आए और गद्दी के क़रीब पहुँचते ही दूतों के सरदार को आवाज़ दी।

—जहाँपनाह ग़ुलाम हाज़िर है।

और हाथ जोड़े, सर झुकाए दूतों का सरदार सामने आ खड़ा हुआ।

—देखो सरदार रिआया की खुशहाली ही शाहंशाह की भी हरियाली क़ायम रख सकती है। दूतों को भेजकर पता लगाओ, मिस्र का सारी जनता खुशहाल तो है । हाँ, कहीं तरफ़दारी और मुंहदेखी की बात जिस ज़बान से निकली वह ज़बान खींच ली जाएगी,

यह भी याद रखना।

—सरकार का हुक्म ताबेदार की सर आँखों पर।

और उसी अदब से सलाम बजाता सरदार अपने गिरोह में जा खड़ा हुआ। दरबार ख़त्म हुआ और ख़लीफ़ा के दूत मिस्र को रवाना हो गए। मुल्क के हर कोने में उनकी छानबीन पोशीदा तरीक़े से चलती रही और हर तबक़े के लोगों से किसी न किसी हीले मिलजुल कर उनकी असली हालात की जानकारी वे लेते रहे।

और एक दिन फिर जब ख़लीफ़ा का दरबार अपने पूरे ओज में जमा था, दूतों के सरदार ने हज़रत उमर के हुजूर में आकर सर नवाया —जहाँपनाह मिस्र के दूत हुक्म बजाकर वापस आ गए हैं। इनायत हो।

—हाँ, हाँ, उन्हें सामने लाओ।

—दूत आए।

—कैसे हैं मिस्र के लोग ? क्या दिक़्क़तें, क्या शिकायत हैं उनकी ? कहो, क्या पता ले आए ?

हज़रत उमर जैसे अपने बिछड़े बेटे का पता पा रहे हों।

—जहाँपनाह , मुल्क की कोई भी ऐसी जगह नहीं जिसकी टोह हमने न ली, मगर कहीं भी दुख और बेबसी की सूरत हमें नज़र न आई।

—देखो, सही-सही बयान करो।

—सही-सही सरकार ! जो चोर की सज़ा, वह झूठ बोलने वाले की सज़ा। सभी सुखी हैं, सभी खुशहाल, सभी अमन-चैन और आराम-इतमीनान की ज़िंदगी बसर कर रहे हैं। ग़रीबी का तो कहीं नाम भी नहीं।

—वाह ! यह कैसे हो सकता है ? आख़िर सभी तो अमीर नहीं होंगे ?

—हमें तो कोई वैसा ग़रीब नज़र नहीं आया सरकार !

—तो जाओ, सरदार दूसरे दूतों को फ़ौरन मिस्र भेजो कि पता लगावें, मिस्र भर में सबसे ग़रीब कौन है ?

—बहुत अच्छा, सरकार हुक्म की तामील में देर ना होगी।

और तब हज़रत उमर के दूत मिस्र में सबसे ग़रीब आदमी की तलाश में जी-जान से जुट गए।

मस्जिद के आगे के मैदान में एक झोंपड़ी खड़ी है और खड़ा है उसके दरवाज़े पर एक सीधा-सादा कोई छियालीस के सिन का मुसलमान।

दूत जब जुमा का नमाज़ में शरीक होने मस्जिद तक पहुँचे तो देखा, शरीफ़ों की टोली बारी-बारी झोंपड़ी के दरवाज़े पर खड़े उस अधेड़ के क़दमों पर सर झुकाती हुई मस्जिद के अंदर दाख़िल होती चली जा रही है।

तो आख़िर यह है कौन ?

होगा नमाज़ पढ़ाने वाला कोई इमाम, कोई पीर, तभी तो मस्जिद से सटी उसकी झोंपड़ी बनी है और सभी उसके आगे सिर नवा रहे हैं।

मगर इमाम और पीर का भी तो एक अपना अलग ठाठ रहता, अलग लिबास, अलग अंदाज़ और कौन कहे, वह अदा किसी भी शौक़ीनी से उन्नीस नहीं, बीस ही आती है।

और यह सीधा-सादा मुसलमान चुपचाप बंदगी के जवाब में हाथ उठाता बेलौस झोंपड़ी के दरवाज़े पर खड़ा जो था, सो खड़ा का खड़ा है, अब भी। न कोई हँसी न स्फूर्ति, न कोई शान, न गुमान।

तो आख़िर यह है कौन ?

मस्जिद के अंदर पहुँचे ।

अरे, नमाज़ पढ़ाने वाला इमाम तो वह, वह एक हाथ की सफ़ेद दाढ़ी बढ़ाए, झूल लटकाए, सबके सामने रुख़ किए बीच में खड़ा है।

क़ुरान की आयतें चलीं और झोंपड़ी के दरवाज़े वाला वह मुसलमान भी सबके साथ आयतें दुहराने लगा।

तब तो दूतों के दिल की बेकली अंदर ही अंदर खौल कर उफन सी उठी।

तो आख़िर यह है कौन ?

नमाज़ ख़त्म हुई सभी लौट पड़े। वह अधेड़ मुसलमान फिर उसी झोंपड़ी के दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। शरीफ़ों ने फिर उसके सामने सर झुकाए और नमाज़ पढ़ने वालों की भीड़ छँट चली कि एक ओर से एक जवान ने एक दूत के कन्धे झकझोर कर कहा —अरे, करीमबख़्श तुम यहाँ कहाँ ?

—अजी, जहाँ सलाम तहाँ करीम !

और बात-बात में झोंपड़ी और झोंपड़ी वाले की बात आकर ही रही।

—भाई सलीम, यह मस्जिद के आगे झोंपड़ी किसकी बनी है और कौन रहता

है इसमें ? हमें तो एक अजीब कुतुहल-सा लगता है उसे देखकर, जाने क्यों ?

—अरे तुम्हें यह भी पता नहीं ताज्जुब है।

—सो कैसे ? —वह चौंक उठा।

—तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जिस मुल्क में तुम आज मौजूद हो उस मुल्क की हुकूमत का सदर मिस्र का गवर्नर यही है और यही है इस गवर्नर का सहल, जिसमें वह और उसका परिवार रहता है —झोंपड़ी की उँगली उठाते हुए सलीम ने कहा।

मुल्क का मालिक ? मिस्र का गवर्नर ? गवर्नर का महल ? गवर्नर की झोंपड़ी ? करीम के तो पैरों तले से धरती सरक गई जैसे।

—क्यों, क्या हुआ ?

—क्या न हुआ कहो, सलीम ! सारा मिस्र हम छान आए। अमीरों को देखा, रोज़गारियों को देखा, रैयतों को देखा, एक से एक अमारत देखी, मगर क्या बताएँ, जो आज

देखा, वह कभी न देखा, कहीं न देखा। मुल्क के मालिक का महल है झोंपड़ी। यह सादगी, यह ग़रीबी !

और दूतों ने लौटकर हज़रत उमर को सारी बातें बता दीं —मुल्क में सबसे ग़रीब मुल्क का गवर्नर है जहाँपनाह।

गवर्नर की नेकनीयती और ख़ाकसारी की बात सुनकर ख़लीफ़ा बाग़बाग़ हो गए और उसी दम अपने खजांजी को बुलाकर कहा—देखो, पांच ऊंट अशर्फियां मिस्र के गवर्नर के यहां फ़ौरन भेजवा दो, और लो परवाना भी साथ रहे।

—जो आज्ञा—खजांजी के मुंह से निकला और देखते-देखते अशर्फ़ियों से लदे ऊंट मिस्र की राह चल पड़े।

ऊंटों के साथ जब दूतों का सरदार उस मस्जिद के अहाते में पहुंचा तो चारों ओर सुनसान-सा पाकर ठिठक गया। झोंपड़ी की मुफ़लिसी देख वह दांतों उंगली काटने

लगा। आख़िर जब कोई नज़र न आया, तो झोंपड़ी के दरवाज़े पर उसने आवाज़ लगाई —हज़रत उमर का दूत बाहर खड़ा है।

आवाज़ सुनकर गवर्नर बाहर आया। ऊंटों का झमेला देख वह कुछ तो अचकचाया कि यह माजरा क्या है, पर परवाना जब हाथ में मिला तो पढ़ते-पढ़ते जाने क्या ऐसा हिल गया अन्दर कि छलक आए आंखों से आंसू के फव्वारे।

सरदार को तो काठ मार गया जैसे। भला जिसके दरवाज़े पांच-पांच ऊंट अशर्फ़ियाँ बिना मांगे पहुंचे, उसकी यह हालत !

सरदार की सारी समझदारी जवाब दे बैठी और उधर गवर्नर का हाल बेहाल हो रहा है, किसी करवट नहीं। आख़िर परवाना सरदार के हाथों में ज्यों-त्यों डाल, नीचे लिखी आयत दुहराता और सिर धुनता वह अपनी झोंपड़ी के अन्दर लौट गया।

—इनालिल्लाह वइन्नाइलेह राजऊन।

मतलब—खुदा के घर से आए हम,

खुदा के घर को जाएंगे।

और गवर्नर की बीवी की हालत की क्या कहिए। वह हैरानी, वह परेशानी कि पेशानी पर पसीना उभर आया। आख़िर यह क्या हो गया। एकबारगी पलक मारते कहां से क्या ऐसी बुरी ख़बर आ गई ? कहीं से तो किसी के बीमार होने का भी कोई ख़त न आया और एकाएक यह मौत.....?

और, गवर्नर रुंधे गले से वही आयत दुहराता जाता।

—अजी, बोलो न, कहां क्या हो गया ? मेरा दिल बैठा जा रहा है।

—या खुदा यह कहर ? —इनालिल्लाह वइन्नाइलेह राजऊन।

—अजी, आख़िर कौन मर गया, जो तुम यह आयत पढ़ रहे हो ? कहो भी.....

—क्या कहूँ नयाज़ की अम्मा ! दुनिया आई है मुझे गिराने के लिए ?

और गवर्नर की ज़बान को वह आयत एक बार जो आ लगी तो ऊंट की पकड़ बन गई जैसे। आँखों से आँसू और ज़बान से आयत; न यह रुके, न वह थमे।

गवर्नर की बीवी तो एक अजीब कशमकश में पड़ गई। क्या करे, क्या न करे। आखिर वह झोंपड़ी के बाहर आई देखा, पाँच बोझ कसे ऊँट खड़े हैं।

सरदार से पूछा —यह सब क्या झमेला है बाबा ?

सरदार ने सलाम बजाया, तपाक से ख़लीफ़ा का परवाना बीवी के हाथों में थमाया और आहिस्ते दो कदम पीछे हटकर खड़ा हो गया।

बीवी ने परवाना पढ़ा।

—मुल्क को एक ज़ोरदार हुकूमत के साथ-साथ सबके आराम और अमन की सल्तनत बख्शने की तारीफ़ में यह पाँच उँटों पर लदी अशर्फ़ियों की रक़म मिस्र के गवर्नर

को बतौर बख्शीस नुमाया है, इस उम्मीद के साथ कि गवर्नर की यह खिदमतपरस्ती और खाकसारी आगे की पीढ़ियों की भी नुमायन्दगी करेगी।

गवर्नर के मिज़ाज का राज़ गवर्नर की बीवी से बढ़कर कौन समझता ? और परवाना पढ़ते ही गवर्नर की बीवी की आँखों के सामने उस आयत की पहेली के सारे पहलू एकबारगी खुल पड़े।

बीवी ने ऊंटों की अशर्फियां देखते-देखते ख़ैराती जमायतों, यतीमख़ानों, अस्पतालों और बेबसों, मुफलिसों के बीच बंटवा दीं और जब एक भी बाक़ी न बची, तो झोंपड़ी के अन्दर दौड़ी आई और गम में मुबतिला गवर्नर को आजिज़ी से झकझोर कर कहा—अजी, अब तो तसल्ली करो, बला तो बिला गई।

गवर्नर को पहले तो पूरा यक़ीन और तस्कीन कहां होने को, मगर जब झोंपड़ी के बाहर आकर देखा तो कहां वह अशर्फ़ियों की बोरेबन्दी, कहां वह ऊंटों का काफिला और

कहां वह दूत का भूत।

तब कहीं गवर्नर के जी में जी आया और जान में जान आई। और जब वह झोंपड़ी के अन्दर लौटा तो कोई देखता उसके चेहरे पर इतमीनान की रोशनी में झलकती मीठी मुसकान और एहसान की चाशनी में पगी रूहानी जबान——

——शुक्र है, खुदा ! तू बड़ा मेहरबान है।

काश आज की मंजी-संवरी दुनिया अपने अन्दर की तह टटोल पाती तो उसकी आंखें खुल पातीं कि हृदय का धनी ही धनी है, धन का धनी-धनी नहीं।"[33]

अगर इस कहानी का मुक़म्मल अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है कि अरबी, फ़ारसी के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी इसमें किया गया है, लेकिन जो दूसरी बात सबसे अधिक ध्यान खींचती है वह यह कि पूरी कहानी का विकास संवादों के माध्यम से हुआ है।

आख़िर इतने अधिक संवादों की आवश्यकता रचनाकार को क्यों पड़ी ? क्या यह नाटक को छूती हुई कहानी नहीं है ? यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि संवादों के छोटे-छोटे प्रयोगों के माध्यम से एक तरह की रोचकता और संप्रेषणीयता उत्पन्न करने की कोशिश की गई है। वस्तुतः अरबी और फ़ारसी के शब्द-प्रयोग से श्रोता जिस कठिनाई का अनुभव करता है, उसे संवादों की प्रायोगिक शैली में आसानी से समझ सकता है। हम भले यह बात दावे के साथ न कह सके; किंतु आकाशवाणी का दबाव तो देख ही सकते हैं।

इसी तरह सच्चिदानन्द हीरानन्द वत्स्यायन 'अज्ञेय' की कहानी 'कलाकार की मुक्ति' आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानी है। जिसका नायक महान कलाकार पिंगमाल्य है। इस कहानी की शुरुआत इस प्रकार हुई है— "शिप्रद्वीप के महान कलाकार पिंगमाल्य का नाम किसने नहीं सुना ? कहते हैं कि सौन्दर्य की देवी अपरोदिता का वरदान उसे प्राप्त

है........उसके हाथ से असुन्दर कुछ बन नहीं सकता। स्त्री जाति मात्र से पिंगमाल्य को घृणा है, लेकिन एक के बाद एक सैकड़ों स्त्री मूर्तियां उसने रची हैं। प्रत्येक को देख कर उसे पहली निर्मित से अधिक सुन्दर बताते हैं और विस्मय से कहते हैं.........इसके व्यक्ति के हाथ में न जाने कैसा जादू है। पत्थर भी इतना सजीव दीखता है कि जीवित व्यक्ति भी कदाचित उसकी बराबरी न कर सके। कहीं देवी अपरोदिता इन प्रस्तर मूर्तियों में जान डाल देती। देश-देशांतर के वीर और राजा उस नारी के पैर चूमते, जिसके अंग पिंगमाल्य की छेनी ने गढ़े हैं और जिसमें प्राण स्वयं देवी अपरोदिता ने फूंके हैं।"[34]

एक कहानीकार की सफलता इस बात से तय होती है कि उसका श्रोता उसकी कहानी को सुनकर अपने मस्तिष्क में तुरंत कहानी का चित्र बना ले। अगर कहानी को समझने के लिए उसे किसी शब्दकोश की आवश्यकता पड़े या किसी पंडित के पास जाना पड़े तो कहानी की सफलता संदिग्ध मानी जाती है। इस कहानी को सुनने के बाद श्रोता के

मन एक-एक चित्र उभरता है और इस लिहाज़ से इस कहानी को सफल माना जाएगा। कहानी का प्रारंभ और अंत दोनों ही अत्यंत आकर्षक हैं और इसकी छाप श्रोताओं के मन पर असर करती है। किसी भी कहानी का प्रारंभ और अंत, श्रोता पर स्थाई प्रभाव डालने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों का एक आवश्यक गुण है नवीनता। नवीनता से रोचकता अपने-आप आ जाती है। मनुष्य स्वभाव से ही नई वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। वह नवीनता को जानना और समझना चाहता है। आकाशवाणी के श्रोता भी नए-नए कार्यक्रमों को सुनना अधिक पसंद करते हैं। इसलिए आकाशवाणी के कार्यक्रम निर्माता कहानियों के शिल्प में भी नवीनता चाहते हैं और यह नवीनता आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों में दिखाई पड़ती है।

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' की कहानी 'मुझसे भी पहले' आकाशवाणी के दिल्ली

केंद्र से दिनांक 15 मई 1996 को प्रसारित हुई । यह कहानी राष्ट्रीय संदर्भ की कहानी है जिसमें एक पुत्र के शहीद हो जाने पर दूसरे पुत्र का भी देश पर बलिदान होने की इच्छा का भावपूर्ण चित्रण है। इस कहानी में पुत्र-मोह पर देश-भक्ति की भावना की विजय दिखाई गई है। पिता अंततः पुत्र की इच्छा का सम्मान करता है। यह कहानी मूलरूप से आकाशवाणी के लिए लिखी गई है। बाद में इसका प्रकाशन एक संग्रह में हुआ। कहानी की लंबाई (अवधि) दस मिनट की है। इस कहानी का कथानक देश-प्रेम पर आधारित है। "युद्ध-भूमि में जाते हुए पुत्र के सिर पर हाथ रख, आशीर्वाद देते हुए माँ ने कहा था— बेटे, इस समय राष्ट्ररक्षा ही सर्वोपरि कर्तव्य है, प्रत्येक भारतीय का। जाओ और अपने कर्तव्य का दृढ़ता से पालन करो। याद रहे भारतीय परंपरा सीने पर गोली खाने की है, पीठ पर नहीं।

जाने कहाँ से इतना साहस आ गया था उस समय पंकज की माँ में। वाणी में जैसे साक्षात दुर्गा माँ बोल रही थी उसकी। पर वह पिता होकर भी एक शब्द नहीं बोल पाया

था। बस पंकज को जाते हुए देखता रहा था चुपचाप। जाते-जाते पंकज ने चरण-धूलि माथे से लगाते हुए कहा था— माँ, तेरा बेटा तेरे दूध की लाज अवश्य रखेगा।

युद्ध की विभीषिका भीषण रूप से फैलती जा रही थी। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से रोंगटे खड़े कर देने वाले समाचार प्रसारित हो रहे थे। सभी दिन भर रेडियो से कान लगाए रहते।

पंकज भी एक मोर्चे पर अपनी टुकड़ी लेकर गया था। दुश्मन के टैंकों को ध्वस्त करते आगे ही आगे बढ़ता जा रहा था कि अचानक एक साथ कई गोलियाँ सनसनाते हुए आई और पंकज का सीना छलनी कर गई।"[35]

पिता अपने एक पुत्र को देश के लिए बलिदान दे चुका है और दूसरा पुत्र भी

देश-रक्षा के लिए जाना चाहता है; किंतु माँ-बाप नहीं चाहते कि उसका दूसरा बेटा भी उनकी नज़रों से दूर हो जाए। इसलिए वे लोग इसके लिए क्लिनिक खुलवा देते हैं, पर देश-प्रेम इस बेटे के भीतर भी है। अतः वह भी देश-सेवा में लगना चाहता है। वह कहता है "—कम ऑन पापा, आपके बड़े बेटे ने देश की रक्षा हेतु कुर्बानी देकर शहीदों में अपना नाम दर्ज कराया था, कायरों में नहीं। सारा देश उनकी कुर्बानी को याद करता है। आपका तो एक बेटा शहीद हुआ पर सोचो भारत माँ के हज़ारों बेटे कुर्बान हो गए था।

आज फिर दुश्मन ने ग़द्दारी की है। दुश्मन को सबक़ सिखाने के लिए हम जैसे नौजवानों को पुकार रही है भारत माता। आप तो भाग्यशाली हैं पापा, ऐसे समय सीमा पर भेजने के लिए जिसके पास दूसरा पुत्र तो है, सोचो जिनके एक ही पुत्र था वो किसे भेजेंगे ?

उसे लगा पंकज उसके सामने खड़ा है और कह रहा है, पापा सीमा पर तैनात सैनिकों की बदौलत ही तो देश चैन की नींद सोता है। यदि सभी आपकी तरह अपने पुत्रों को सीमा पर जाने मना कर दें तो....... और फिर ऐसे समय जब भारत माता बार-बार पुकार रही हों...... जो ऐसे समय राष्ट्र-माता की पुकार नहीं सुनता उसे देश में रहने का भी कोई अधिकार नहीं है पापा......।

उसने आँखें मिचमिचाकर देखा। पंकज या रोहित। रोहित या पंकज। कौन बोल रहा था अभी। शायद रोहित के शरीर में पंकज की आत्मा। ठीक ही कह रहा है, रोहित। इस बार ग़द्दार दुश्मन को सबक़ सिखाना ही होगा।

उसके चेहरे पर पुनः चमक आ गई— बेटे तुम ठीक कह रहे हो। मैं तो भूल ही गया था कि मुझसे भी पहले तुम देश के लाल हो, भारत माँ के लाल। जाओ और दुश्मन

को सीमा से बाहर खदेड़ दो।

उसे लगा निर्णय सुन, दीवार पर टंगा शहीद पंकज का फ़ोटो भी मुस्कराने लगा है।"[36]

इस कहानी की भाषा अत्यंत सरल है। वाक्य छोटे-छोटे हैं। कठिन शब्दों का प्रयोग बिल्कुल नहीं हुआ है। यह कहानी समझने में श्रोताओं के लिए काफ़ी आसान है। वाचक को भी किसी तरह की कठिनाई नहीं होगी। इस कहानी का वाचन स्वयं कहानीकार ने किया है, अतः उच्चारण संबंधी अशुद्धियाँ नहीं हो सकती हैं। जिस प्रकार लिखित कहानी में वर्तनी की शुद्धियाँ अत्यंत आवश्यक है, वैसे ही आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों के लिए शुद्ध उच्चारण अत्यंत आवश्यक है। यदि सरल भाषा का प्रयोग किया जाता है तो उच्चारण संबंधी अशुद्धियाँ होने की संभावना कम होती है।

शोध के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि हिंदी साहित्य में रचित कहानियों और आकाशवाणी से प्रसारित कहानियों के शिल्प में आकाशवाणी द्वारा किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। जैसी लिखित कहानियाँ थी वैसी ही प्रसारित भी हुईं; परंतु उसके बाद आकाशवाणी के लिए अलग शिल्प में कहानियाँ लिखी गईं। इन कहानियों में निर्धारित समय सीमा, सरल शब्दों का प्रयोग, सहज कथानक आदि का विशेष ध्यान दिया गया है। कहानी मूलतः कहने की ही चीज़ है और आकाशवाणी में यह कही जाती है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों में 'कथ्य' के साथ-साथ कहानी का विन्यास, वातावरण, चरित्र-चित्रण, भाषा-संप्रेषण और संवाद-योजना काफ़ी प्रभावी होती है।

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' की एक कहानी 'अंधेरे के बाद' आकाशवाणी के रोहतक केंद्र से दिनांक 4-1-1981 को प्रसारित हुई थी। इस कहानी में कहानीकार ने

परित्यक्त नायिका की समस्या को उभारा है। इसमें नारी-उत्पीड़न जैसी समस्या की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास कहानीकार ने किया है। इस कहानी का प्रारंभ इस प्रकार होता है— "पाश्चात्य अंक-शास्त्री कीरो की गणना में संयुक्त अंक बारह के फलादेश का स्मरण होते ही ऋचा की कमर को टटोलती उसकी उँगलियाँ स्वतः ही रुक गई।

अंक बारह यानी ऋचा का नामांक, ऋचा यानी उसकी पत्नी। उसकी, अपनी स्वयं पसंद की गई पत्नी। क्या हुआ कि ऋचा इससे पहले भी विवाहिता थी कभी। पर उसने तो ऋचा को उसके संपूर्ण भूतकाल सहित स्वीकारा था। सब कुछ जानते-बुझते। जैसी है, जो भी है की शर्त के साथ।

शायद ग़लत कह गया कुछ। प्यार में शर्त तो होती ही नहीं कोई। जहाँ शर्त होती है उसे प्यार नहीं समझौता कहा जाता है और उसने कोई समझौता नहीं किया था बल्कि स्वतः ही सब कुछ होता चला गया था।"[43]

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' की प्रसारित कहानियाँ वर्त्तमानयुगीन पारिवारिक समस्याओं, राष्ट्रीय और मानवधर्मी मूल्यों की मूल संवेदना को उकेरती हैं। ये कहानियाँ जीवन के यथार्थ की भूमि से जुड़ी हुई हैं। वैसे भी आज की कहानी अपने परिवेश की उपज है। आज दांपत्य जीवन की दरार, आतंकवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, नारी-उत्पीड़न, दलितों पर अत्याचार, सुरसे की भाँति बढ़ती बेरोज़गारी की समस्या, भ्रूणहत्या जैसी समस्याओं ने कहानीकारों का लेखकीय ध्यान आकृष्ट किया है।

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' की ही कहानी 'नील कंठ की भाँति' का प्रसारण दिनांक 7-1-2002 को आकाशवाणी के मथुरा केंद्र से हुआ था। यह कहानी दांपत्य-जीवन

के बीच प्रेम-त्रिकोण का संदर्भ लेकर चलती है। इस कहानी में पत्नी की अंतरवेदना और उसकी व्यवहारगत उदात्तता का सजीव चित्रण के साथ-साथ पत्नी और प्रेमिका की स्वाभाविक मनोदशा का सजीव चित्रण कहानीकार ने किया है। यह कहानी आत्मकथात्मक शैली में प्रसारित गई है। पत्नी का सरल व्यवहार पति की मानसिकता को बदल देता है। पत्नी के रहते पति अपनी प्रेमिका से देर रात तक मिलता है फिर घर वापस आता है। कहानी का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

"लौटते-लौटते आज फिर रात के ग्यारह बज गए थे। अन्य दिनों की भाँति ही पत्नी आज भी दरवाज़े पर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। उसको आता देखकर वह अंदर चली गई। अंदर पहुँच कर उसने पत्नी की ओर निहारा। पत्नी के मौन, उदास चेहरे को देखकर वह फिर अपराध बोध से भर उठा और फिर कभी भविष्य में इतने विलंब से न लौटने की कह कर पत्नी को मनाने का प्रयत्न करने लगा।

पत्नी ने उसकी बात सुनी और एक निरीह, अविश्वासी नज़र से देखने लगी जैसे कह रही हो कि ऐसा तो तुम प्रतिदिन कहते हो, पर इस पर अमल कब करोगे ?"[44]

इस कहानी की विशेषता यह है कि समाज में व्याप्त विविध अनाचार एवं अवैध रिश्ते को कहानीकार ने प्रभावशाली ढंग से उठाया है जो तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर एक कड़ी टिप्पणी के रूप में दिखाई पड़ता है। आकाशवाणी द्वारा इसके प्रसारण से जो बात स्पष्ट होती है वह यह कि कहीं न कहीं यह कहानी समाज में चेतावनी की तरह कार्य करे। साथ ही भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में घुटती एवं व्यक्तित्वहीन होती स्त्रियों की पीड़ा भी प्रकट हो सके। नायक का यह कहना कि, "आम पत्नियों की तरह तुम भी ज़ोर-ज़ोर से चीखो, चिल्लाओ, मुझे उलाहने दो और पर-स्त्री के पास जाने की बात कहकर मेरी बदनामी करो तो कम से कम अपराध-बोध से मैं अकेला तो न घिरा पाऊँ अपने को। पर नहीं, तुम तो

बस..... भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति-सी, प्रस्तर शिला की तरह मौन, बिषपाई नीलकंठ की भाँति सारा गरल स्वयं ही पीती रहती हो और उस हलाहल की गर्मी से ही विह्वल और अपराधी मानने लगता हूँ अपने आप को।"[39] वास्तव में आम पुरुष की मानसिकता की जटिलता को व्यक्त करता है और कहानी के अंत में भारतीय नारी का आदर्श जैसे मूर्त हो उठता है तथा एक सशंकित ईर्ष्यालु पुरुष अपने को पूरी तरह पराजित समझता है, "मेरे हाथों को अपने दोनों हाथों के बीच लेते हुए मधु ने धीरे से कहा— 'ठीक है, कल शीरीन को यहाँ ले कर आना। हो सकता है एक स्त्री होने के नाते मैं दांपत्य सुख का रहस्य उसे, तुमसे बेहतर समझा सकूँ।'

सुनकर मैं अवाक रह गया। तो क्या पत्नी को सब पता था, देर से घर आने का कारण। फिर भी वह......सुनकर मेरी नज़रों में पत्नी का व्यक्तित्व और विशाल हो उठा, अपरिमित।"[40]

वस्तुतः इस कहानी के प्रसारण से आकाशवाणी का जो महत् उद्देश्य है वह दिखाई देता है। मनोरंजन के साथ-साथ संस्कार और शुद्धि, सिर्फ़ व्यक्ति की ही नहीं बल्कि पूरे समाज की, जिसे कहानीकार ने बड़ी खूबसूरती से व्यक्त किया है। यहाँ आकाशवाणी ने साहित्य को काफ़ी छूट दी है कि वह जन-परिष्कार का अपना कार्य करे। इससे आकाशवाणी और साहित्य का अंतरसंबंध और भी पुष्ट दिखाई देता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम आकाशवाणी से प्रसारित कहानियों का अध्ययन करें तो स्पष्ट पता चलता है कि दोनों ने ही एक दूसरे को प्रभावित किया है। हाँ, कहानियों के विषय-वस्तु, विधा, शब्द-चयन, संवाद-योजन, भाषा-शौली, ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग आदि में आकाशवाणी का प्रभाव देखा जा सकता है।

4.(घ). नाटक

रेडियो नाटक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह आकाशवाणी के सामान्य कार्यक्रमों तथा विशेष कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'नाटकों का अखिल भारतीय कार्यक्रम' 1956 ई. में प्रारंभ किया गया तथा तब से इसे समूचे देश में लोकप्रियता मिली हुई है। 'नाटकों का अखिल भारतीय कार्यक्रम' के द्वारा एक क्षेत्र के श्रोता सुव्यवस्थित अनुवाद प्रक्रिया के माध्यम से अन्य क्षेत्रों के सर्वश्रेष्ठ नाटकों की जानकारी प्राप्त करते हैं। इसका शाब्दिक और प्रचलित अर्थ जो साहित्य में है वही अर्थ आकाशवाणी में भी लागू होता है। आकाशवाणी के संदर्भ में इसके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता, परिवर्तन होता है तो सिर्फ़ इसकी प्रस्तुति में। नाटकों की प्रस्तुति के लिए आकाशवाणी की अपनी एक अलग शैली है, एक अलग टेकनीक है। यहाँ दर्शक नहीं होते, सिर्फ़ श्रोता होते हैं। यहाँ हर दृश्य और वातावरण को ध्वनि के माध्यम से स्थापित किया जाता है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रेडियो नाटकों को अधिक से अधिक लोकप्रिय और जनोपयोगी बनाने के लिए कार्यक्रम अधिकारी हमेशा प्रयत्न करते रहे हैं। विभिन्न प्रकार के शिक्षा-मूलक और समाज के हर वर्ग के लिए उपयोगी कार्यक्रमों का निर्माण करना आकाशवाणी का उद्देश्य है। इस दृष्टि से आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रेडियो-नाटकों का प्रसारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। रेडियो नाटक एक ऐसी विधा है जो ध्वनि माध्यम से श्रोताओं तक पहुँचती है परंतु यह दृश्य काव्य का ही एक रूप है। दृश्य नाटकों में हम जिन घटनाओं और दृश्यों को मंच पर प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, रेडियो नाटकों में उन्हीं का चित्र श्रोताओं के मस्तिष्क में उभारने की कोशिश की जाती है। अतः हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि रेडियो नाटकों में दृश्य विधान के बदले, ध्वनि संयोजन का उपयोग किया जाता है। यहाँ तक कि दृश्य परिवर्तन के लिए भी ध्वनि का ही प्रयोग होता है। इसलिए रेडियो नाटकों को ध्वनि नाटक भी कहा जाता है। ध्वनि ही रेडियो नाटकों का एक मात्र माध्यम है और इस सूक्ष्म माध्यम के द्वारा सभी

प्रकार के दृश्यों का बिंब तैयार कर श्रोताओं तक पहुँचाना अत्यंत कठिन कार्य है; फिर भी रेडियो नाटकों के निर्माण के पीछे लगभग साठ वर्षों का अनुभव है और आज इस वैज्ञानिक युग में ध्वनि प्रभावों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि रेडियो नाटक के निर्माता को अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हम यह कह सकते हैं कि रेडियो नाटक अपने विकास की चरम सीमा पर है। आज से लगभग बीस वर्षों पूर्व तक मंचीय नाटकों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर उसे रेडियो नाटक बना दिया जाता था, परंतु आज की स्थिति वैसी नहीं है। प्रसारण के तकनीक में काफ़ी बदलाव आया है। रिकार्डिंग को सरल और सुविधाजनक बनाया गया है। आकाशवाणी के रचनाकार श्री बच्चन सिंह का विचार है, "रेडियो पर प्रसारित होने वाले नाटकों के सभी प्रकार पिछली श्रेणी में रखे जाएँगे। एकांकी और रेडियो नाटक की मुख्य विभाजन-रेखा यही है कि पहला दृश्य है और दूसरा श्रव्य; फिर भी रेडियो श्रव्य होकर भी नाटक ही है। हाँ, जहाँ एकांकी का माध्यम रंगमंच है, वहाँ रेडियो-नाटक का माध्यम ध्वनि। इस माध्यम की भिन्नता के कारण दोनों की अपनी अलग-अलग सुविधाएँ-असुविधाएँ हैं।

रंगमंच पर अभिनेताओं में रूप, वाणी, मुद्रा, भंगिमाएँ आदि के साक्षात्कार से जो सामूहिक प्रभाव निष्पन्न होता है, केवल ध्वनि के माध्यम से उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि रेडियो-नाटक एकांकी से हीन नाट्य-विधान है। रेडियो-नाटकों को रंगमंच सुविधा तो नहीं है पर कई अर्थों में एकांकी नाटकों की अपेक्षा वह अपने शिल्प के कारण अनेक और सुविधाओं को अपनी गहनता में समेट लेता है।"[41]

स्वातंत्र्योत्तर रेडियो नाटकों में ज्ञान वृद्धि और मनोरंजन के साथ-साथ जन जागृति के विषयों को शामिल किया गया है। ऐतिहासिक विषयों को आज के संदर्भ में शामिल किया जाता है। साथ ही सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि विषयों पर भी रेडियो नाटक प्रसारित किए गए हैं। रेडियो नाटक एक प्रकार से कम पढ़े-लिखे या निरक्षर लोगों के लिए

वरदान सिद्ध हुआ है और उनमें चेतना जगाने के लिए एक सशक्त माध्यम बना।

हम कह सकते हैं कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया जाता है। जैसे अशिक्षित पात्रों द्वारा गँवारू बोली, बच्चों के अभिनय के लिए तुतली बोली, व्यापारियों द्वारा बाजारू बोली आदि। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों की भाषा सरल हो, संप्रेषणशील हो, अनौपचारिक एवं आत्मीयतापूर्ण हो और उसकी शब्दावली सार्थक हो। वाक्य साधारण, सकारात्मक और छोटे हों। रेडियो नाटक मूलतः श्रव्य नाटक है और श्रव्य का माध्यम है ध्वनि। ध्वनि ही रेडियो-नाटक का मूल आधार है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक आकाशवाणी द्वारा हिंदी में ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों का ही अधिकतर प्रसारण होता रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, सबसे पहले यानी 16 अगस्त, 1947 को सेठ गोविन्ददास और चंद्रगुप्त विद्यालंकार लिखित ध्वनि-रूपक 'नव प्रभात' का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया गया। "हिंदी में रेडियो नाटकों का प्रसारण लगभग स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से शुरू हुआ। कारण स्पष्ट था कि ब्रिटिश सरकार की नीति हिंदी को प्रोत्साहन देने की नहीं थी। वे उर्दू को हिंदी की तुलना में अधिक बढ़ावा देकर राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते थे। अतः उस समय रेडियो पर उर्दू वालों का कब्जा था। संभवतः इसी कारण उस जमाने के बड़े माने हुए रेडियो नाटककार उर्दू में लिखते थे। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जहाँ हिंदी नाटककारों को प्रोत्साहन मिला वहाँ रेडियो नाटकों के शिल्प को लेकर भी नए प्रयोग किए गए। प्रारंभ में रंगमंचीय नाटक रेडियो नाटकों को प्रभावित करते रहे, किंतु धीरे-धीरे रेडियो नाटकों का एक नया युग प्रारंभ हुआ।"[42]

श्री कृष्ण चन्दर द्वारा लिखित नाटक 'सराय के बाहर' 25 नवंबर, 1976 को आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र से प्रसारित किया गया। इस नाटक के पात्र, शायर और भिखारी दोनों का व्यवसाय भीख माँगना है। "बीबी की बच्ची.....बीबी की बन्नो.......अरी तुझे गाली

देती हूँ, भिखारी बाप और तेरी चुड़ैल, कुटनी माँ को। दो गालियों में सौदा क्या महँगा है। मुझे देख, इस सराय में सुबह से लेकर शाम तक जूठे बरतन माँजती हूँ, कुएँ से पानी निकालती हूँ, मालकिन और मालिक की सौ-सौ खुशामदें करती हूँ, और....... अच्छा देख इस वक्त मुझे न सता, मुसाफ़िरखाने में अंदर इस वक्त बहुत से लोग जमा हैं। मुझे कइयों की देखभाल करनी है। जब ये लोग खाना खा चुकेंगे, इस खिड़की की तरफ़ आइयो और जो कुछ तेरी किस्मत में होगा ले जाइयो। अरे देख, अब इन मोटे-मोटे दोदों में आँसू न छलका। हाय राम, इन फ़क़ीरों ने तो नाक में दम कर रखा है। मैं मालकिन से कहती हूँ कि इन भिखमंगों को कम-अज-कम सराय के बाहर ऐन दरवाज़े पर तो जमा न होने दिया करें।"[43]

शायर अपने आप को भिखारी से उच्चकोटि का आदमी समझता है, जबकि उसकी स्थिति भिखारी से भी निम्न स्तर की है। कई दिन ऐसे आते हैं कि कभी पेट भरना मुश्किल हो जाता है। इन दोनों की भेंट एक सराय के मैदान में होती है। ठंड के दिन होने के कारण भिखारी अपने परिवार के साथ एक कोने में आग जलाकर हाथ-पाँव गर्म करते हैं। शायर उनके पास पहुँचता है और दोनों एक दूसरे का परिचय जानते हैं। बदलते जमाने के हालात पर दोनों बातचीत करते हैं- "मुझे अपने सुख के दिन याद आ गए। वे धान के प्यारे-प्यारे खेत, वह बहती नदी का निर्मल पानी, वह जगह जहाँ मैं अपना भेड़ चराया करता था। मेरी माँ जो मुझे लोरियाँ सुनाया करती थी, मेरा बाप जो मुझे कंधे पर बिठा के कस्बे के बाज़ार में सैर कराने लाया करता था।"[44] इसी क्रम में चिरंजीत का एक नाटक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुआ जिसकी पुष्टि डॉ. बाबूराव नंदनवार अपनी पुस्तक 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रेडियो नाटक- एक अनुशीलन' में करते हैं, "1979 में प्रसारित चिरंजीत का लिखा "ऊँचा पर्वत ऊँचे लोग" इस नाटक में भी चाय बगान में काम करने वाले मज़दूर की स्थिति को लेकर राजनीतिक चाल किस तरह खेली जाती है यह स्पष्ट किया गया है।"[45]

नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम का प्रसारण 15 अगस्त, 1956 से आरंभ हुआ और शुरुआती दिनों में ही मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' रेडियो रूपांतर आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया। इस नाटक की निश्चित प्रसारण तिथि का उल्लेख नहीं मिलता है, परंतु प्रसिद्ध लेखक एवं रेडियो नाटककार डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार इस नाटक का प्रसारण 1958 में किया गया था।"[46] नेमिचन्द्र जैन के अनुसार, "1958 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन को सर्वश्रेष्ठ नाटक के लिए और कलकत्ते की नाट्यमंडली अनामिका को विनोद रस्तोगी के 'नये हाथ' के सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतिकरण के लिए पुरस्कारों में बदलती हुई स्थिति की ही स्वीकृति थी। उसके बाद से हिंदी नाटक लगातार बढ़ता रहा है और सारी सीमाओं के बावजूद उसने क्रमशः हिंदी के सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में और देश के नाटक साहित्य में सार्थक स्थान हासिल किया है।"[47]

रंगमंचीय नाटक और रेडियो नाटक में मूलभूत अंतर है और वह यह कि रंगमंचीय नाटक का आधार दृश्य है जबकि रेडियो नाटक का आधार ध्वनि है। रेडियो नाटक श्रव्य है और रंगमंचीय नाटक श्रव्य और दृश्य दोनों है। रेडियो नाटक की अपनी विशेषताएँ हैं और उन विशेषताओं को ध्यान में रख कर ही रेडियो नाटककार किसी नाटक की रचना करता है। स्वातंत्र्योत्तर रेडियो नाटकों के प्रति श्रोताओं में काफ़ी रुचि पैदा हुई। स्वतंत्रता से पूर्व लिखे गए नाटकों में सिर्फ़ पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानकों को शामिल किया गया था। "हिंदी का प्रथम रेडियो नाटक पौराणिक ही था। राजनारायण मेहरा लिखित 'नल दमयन्ती' बीस मिनट की अवधि वाले इस नाटक में हृदय को द्रवित करने वाली मार्मिक स्थिति का चित्रण है। कलि और द्वापर की प्रेरणा से पुष्कर और नल के बीच जुए का आयोजन होता है, जिसमें नल अपना सर्वस्व हार जाता है। अपनी विजय के गर्व के कारण पुष्कर अपने भाई नल को देश से निकाल देता है। दमयन्ती बच्चों को उनके ननिहाल

भेजकर स्वयं पतिव्रत का पालन करती हुई, बिना कष्टों की परवाह किए नल के साथ चल पड़ती है। नल और दमयन्ती जैसे ही सीमा पार करने को होते हैं कि पुष्कर वहीं पहुँच जाता है और दमयन्ती को वस्त्र और आभूषण उतारने का आदेश देता है। 'अच्छा, अच्छा... जहाँ सब कुछ चला गया वहाँ इन थोड़े-से वस्त्र और आभूषण को रख कर मैं क्या करूँगी। तो ये भी...भगवन, हे भगवन।' दमयन्ती की इस करुणामय स्थिति पर ही नाटक समाप्त होता है। नाटक का आरंभ, विकास तथा चरमोत्कर्ष पर समापन अत्यंत आकर्षक है और कहीं भी शिथिलता नहीं आती। एक ही प्रमुख घटना कथानक की विशिष्टता है। कथासूत्र एक सिरे से आरंभ होकर विकास करता हुआ अग्रसर होता है।"[48]

रेडियो नाटक की यात्रा में मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' कई प्रकार से एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। इस नाटक में सहज स्वाभाविकता, नाटकीयता, यथार्थपरकता, काव्यात्मकता का मिश्रण है। समकालीन अनुभव इस नाटक को सार्थक और रोचक बनाते हैं। "माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौंदर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौंदर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है। मैं जीवन में पहली बार समझ पाई कि क्यों पर्वत-शिखरों को सहलाती मेघमालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन-मन की अपेक्षा आकाश में बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है।....क्या बात है माँ ? इस तरह चुप क्यों हो ?"[49]

मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक को 3 मार्च, 1958 से लिखना आरंभ कर 21 अप्रैल, 1958 को पूरा किया। इस नाटक को संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार भी मिला। सबसे पहले इस नाटक का मंचन कोलकाता की एक संस्था अनामिका द्वारा श्री श्यामानंद जालान के निर्देशन में 1959 में हुआ। इससे पता यह चलता है कि इस

नाटक के मंचन से पूर्व आकाशवाणी द्वारा इसका प्रसारण किया गया। आकाशवाणी के चीफ़ प्रोड्यूसर श्री चिरंजीत के अनुसार मोहन राकेश ने इस नाटक को आकाशवाणी के लिए ही लिखा था।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों में मनोवैज्ञानिक आधार आसानी से शामिल किए जा सकते हैं। इन नाटकों में हर प्रकार के विषयों को नाटककारों ने ब-खूबी शामिल किया है। "आज के रेडियो नाटकों में मनोवैज्ञानिक आधार ही अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसमें संवेदना के लिए पर्याप्त स्थान है जिससे जीवन सत्य का आकलन संभव है। आज रेडियो के ध्वनि नाटकों में फ्रायड के मनोविज्ञान, गाँधी के नैतिकवाद, मार्क्स के समाजवाद के दर्शन होते हैं। जिनके कथानक आज के परिवेश से संबद्ध हैं। इनकी जीवन सत्य के प्रति अनन्य आस्था है और यह रेडियो नाटककार अपनी अभिव्यक्ति में इतना स्वच्छंद, स्वतंत्र तथा निर्भय है कि वह समाज, देश, नेता, राजनीतिक दल, व्यवसाय, वैज्ञानिक खोज उपलब्धि और युद्ध तथा आक्रमण संधि की घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण के साथ-साथ अपने घर मालिक, पत्नी और स्वयं अपनी दुर्बलताओं और जीवन के व्यंग्य को कथानक का रूप देते हुए हिचकिचाते नहीं। इस विधा का भविष्य अनंत प्रेरणाओं और मधुरतम आशाओं को विविध संभावनाओं से ओत-प्रोत है, इसके स्तर मात्रा और परिणाम में हम उत्तरोत्तर विकास के अंकुर देख रहे हैं जो एक दिन साहित्य के पथिकों और जिज्ञासु श्रोताओं हेतु वट वृक्ष की छाया बनेंगे।"[50] आषाढ़ का एक दिन नाटक में मोहन राकेश ने अंबिका के मनोदशा का चित्रण इस प्रकार किया है, "सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गई उदासीनता व्यक्ति के महत्त्व को बढ़ा देती है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में भी निष्णात है।"[51] प्रसिद्ध लेखक एवं रेडियो नाटककार डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार मोहन राकेश द्वारा रचित "आधे अधूरे" नाटक का प्रसारण 1969 में आकाशवाणी द्वारा किया गया।[52]

यह नाटक किसी ऐतिहासिक चरित्र या परिवेश पर आधारित नहीं है। इसका आधार समकालीन जीवन की स्थितियों को बनाया गया है। यह नाटक एक सामाजिक समस्या प्रधान नाटक है। इसमें शिक्षा और सभ्यता का अभाव दिखाकर बेकारी और आर्थिक समस्या को सुलझाने की चेष्टा की गई है। पत्नी सावित्री नौकरी कर घर चलाती है जबकि पति महेंद्र व्यापार में अपनी सारी कमाई गँवाकर बेकार बैठा है। दोनों पति-पत्नी अपने-अपने स्वभाव के कारण एक-दूसरे से नफ़रत करते हैं और सामाजिक बंधन के कारण साथ रहने के लिए मजबूर भी हैं। पत्नी अपने पति को आधा-अधूरा व्यक्ति समझती है, इसलिए उसका सम्मान नहीं करती। वह अपने लिए पूरे व्यक्ति की तलाश में हैं, जो कोई नहीं होता। पति-पत्नी के व्यवहार का असर बच्चों पर तो पड़ता ही है। पति-पत्नी के बीच का यह असामंजस्य और कलह बच्चों को उदण्ड बना देता है, फलस्वरूप बड़ी बेटी बिन्नी अपनी माँ के एक प्रेमी मनोज के साथ भागकर विवाह कर लेती है और उसे भी वहाँ अधूरापन ही मिलता है। इस नाटक के सभी पात्र अधूरे व्यक्तित्व वाले हैं और एक जैसा ही चरित्र रखते हैं। "मैंने आपसे कहा है न, बस ! सब-के-सब...सब-के-सब ! एक-से ! बिल्कुल एक-से हैं आप लोग ! अलग-अलग मुखौटे, पर चेहरा ? - चेहरा सबका एक है !"[53]

इस नाटक में महेंद्र की स्थिति विचित्र है। वह अपनी पत्नी को न तो छोड़ सकता है और न उसके साथ रह सकता है। वह अपनी पत्नी को खूब पीट-पीट कर आत्मसंतोष प्राप्त करने का प्रयास करता है और फिर उसे खूब प्यार भी करता है। वह मित्र जुनेजा से सिफ़ारिश करता है कि वह उसकी पत्नी को जाकर समझाए। इस नाटक की नायिका सावित्री अपने लिए एक पूरा आदमी चाहती है। इसकी दृष्टि में उसका पति लिजलिजा और चिपचिपा आदमी है। पति-पत्नी के बीच तनाव, असामंजस्य और कलह के कारण बच्चों का चरित्र भी अनुशासनविहीन हो जाता है। बड़ी बेटी बिन्नी अपनी माँ के एक प्रेमी मनोज के साथ भाग कर विवाह कर लेती है। बेटा अशोक भी बेकारी का जीवन जी रहा

है। उसे काम करना पसंद नहीं है। वह एक निकम्मा युवक है। छोटी बेटी इस घरेलू वातावरण के कारण ज़िद्दी और विद्रोही हो गई है। यह स्थिति अपने आप में असहनीय स्थिति है। इस नाटक में मध्यवर्गीय समाज के एक परिवार के जीवन की सचाई का एक ऐसा रूप श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित होता है कि श्रोता का मन प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों में इस नाटक एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

आकाशवाणी के चीफ़ ड्रामा प्रोड्यूसर चिरंजीत द्वारा रचित रेडियो नाटक 'हम हिंदुस्तानी' का प्रसारण दिनांक 29-5-1970 किया गया। इस नाटक में सांप्रदायिक एकता को आधार बनाया गया है। इसमें दंगे के बाद की स्थिति का सहज रूप से चित्रण किया गया है। यह स्थिति कितनी भयानक होती है नाटककार ने सफलतापूर्वक अंकन किया है। "यह बच्चा, यह औरत, यह ग़रीब मज़दूर तीनों हिंदुस्तानी हैं। ये हिंदू भी हो सकते हैं, मुसलमान भी हो सकते हैं। यह बच्चा किसी मुसलमान का बेटा हो सकता है, किसी हिंदू के घर का दीपक हो सकता है। यह औरत किसी मुसलमान की बीवी,माँ, बहन या बेटी हो सकती है, किसी हिंदू के घर की लक्ष्मी, माता, बहन या कन्या हो सकती है। यह ग़रीब मज़दूर किसी मुसलमान कुनबे के लिए रोज़ीरोटी कमाने वाला हो सकता है, किसी हिंदू परिवार को पालने-पोसने वाला हो सकता है। इन्हें बरबाद करने वाले, इन्हें अनाथ और बेसहारा बनाने वाले फ़सादी भी हिंदू हो सकते हैं, मुसलमान भी हो सकते हैं।"[54]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक नाटकों का केंद्र बिंदु नारी-समस्या है। नाटककारों ने नारी-समस्या को अपने-अपने ढंग से चित्रित किया है। इस सामाजिक परिवेश में नारी आज भी पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है। उसे अपनी इच्छाओं का गला घोंटना पड़ता है। आज भी वह अपने पिता, भाई अथवा पुत्र के निर्णय पर जीवन जीने के लिए मजबूर है। उसकी अपनी इच्छा क्या है, इस संबंध में उससे न तो पहले पूछा जाता है और न बाद में। और हम यह भी स्वीकार करते हैं कि हर स्थान पर नारी को ही समझौता करना

पड़ता है, उसे ही झुकना पड़ता है। प्राचीन आदर्शों को मानने के लिए उन्हें बचपन से ही तैयार किया जाता है। उसकी मानसिकता को परिवार वाले अपने अनुरूप ढालने की कोशिश करते रहते हैं और इसमें उन्हें आशातीत सफलता भी मिलती है। 1979 में चिरंजीत का लिखा नाटक "ऊँचे पर्वत ऊँचे लोग" आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया गया। यह नाटक अपनी रेडियो शैली के लिए मशहूर है। साथ ही इसमें नाटककार ने यह दिखाने की कोशिश की है कि माँ-बाप अपना निर्णय जब अपनी संतान पर थोपते हैं तो उनकी संतान पर इसका असर किस प्रकार पड़ता है।

"**कमला-** **(रोते हुए)** माँ, मैं विष खाकर मर जाऊँगी, लेकिन उस बूढ़े अमोलकचंद से शादी नहीं करूँगी, नहीं करूँगी।

माँ- अरी, अपने बाप की इज़्ज़त का तो ख़्याल कर । तू मर जाएगी, तो तेरी बड़ी बहन की शादी का कर्ज़ कैसे उतरेगा ? गिरवी रखा हुआ मकान कैसे छूटेगा ? तेरी छोटी बहनों का.....?

कमला- तो माँ, तुम लोग अपना कर्ज़ उतारने के लिए मुझे बेच रहे हो ?

माँ- क्या बकती है ? अपने भाग्य को सराह कि एक ग़रीब की बेटी होकर तू करोड़पति के घर जा रही है, कारख़ाने के राजा की रानी बनने जा रही है....।

कमला- उसकी दो रानियाँ तो पहले ही घर बैठी हैं।

माँ- अरी दोनों निपूती हैं। सेठ अमोलकचंद को बेटा चाहिए, करोड़ों की जायदाद का वारिस चाहिए। तेरी जन्मकुंडली में पुत्रवती होने का योग है। इसीलिए सेठ ने हमारे सामने झोली फैलाकर तुझे माँगा है। बेटी, जरा सोच, तेरा ग़रीब बाप सेठ का कारिंदा है। नौकर मालिक की माँग कैसे ठुकरा सकता है ?

कमला- लेकिन, माँ, जरा तुम भी तो सोचो। अमोलकचंद उम्र में बापू से भी बड़ा है।

उस पर दमे का रोगी। **(चीखकर)** नहीं, माँ, मैं उस बूढ़े-खूसट रोगी से शादी नहीं करूँगी। लो, अपने हाथों से मेरा गला घोंट दो.....।

माँ- **(सिसककर)** हाय री, अगर तूने सेठ से शादी नहीं की, तो वह हम सब का गला घोंट देगा। वह तेरे बाप को निकाल बाहर करेगा और हम सब सड़क पर भूखों मरेंगे। बेटी, मैं हाथ जोड़ती हूँ। अपने ग़रीब माँ-बाप पर, अपनी बहनों पर तरस खा और......।"[55]

कुछ प्रसिद्ध नाटककारों के नाटक भी आकाशवाणी द्वारा प्रसारित हुए हैं, जो काफ़ी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। जैसे- सेठ गोविंद दास (नाव प्रभात, 16-8-1947), चिरंजीत (औरंगज़ेब की आँखें, 31-5-1963, हम हिंदुस्तानी, 29-11-1970), निर्मला धर (घर का किवाड़, 4-10-1963), रेवती सरन शर्मा (ज़हर का कोई रंग नहीं, 29-11-1974), के0 पी0 सक्सेना (रंगीन रोशनदान, 1-6-1979), मुद्राराक्षस (विद्रुप, 26-2-1976, काले सूरज की शव यात्रा, 24-7-1975, लाईहरोबा, 24-12-1970), कैलाश भारद्वाज (यक्षप्रिया, 11-3-1975), कांति देव (एक फूल का पतझड़, 22-2-1977), राजेन्द्र कुमार शर्मा (तीसरा डंक, 16-2-1973), विष्णु प्रभाकर (चट्टान से चट्टान तक, 26-12-1974), गिरिजा कुमार माथुर (नया साक्षात्कार, 25-5-1978), उपेन्द्रनाथ अश्क (टूलो, 11-12-1990)

आकाशवाणी से प्रसारित नाटकों में 'लोहा सिंह' नाटक अपने जमाने में काफ़ी प्रसिद्ध हुआ था। इस संबंध में चर्चा करते हुए डॉ. सिद्धनाथ कुमार कहते हैं, "आकाशवाणी पटना से रामेश्वर सिंह काश्यप लिखित 'लोहा सिंह' नाटक का प्रसारण 1952 में आरंभ किया गया। इस नाटक का प्रसारण दस वर्षों तक होता रहा। लोहा सिंह की भूमिका स्वयं काश्यप जी ने निभाई और निर्देशन भी उन्होंने ही किया।"[56] काश्यप जी पटना कॉलेज में प्रोफ़ेसर के पद पर कार्य करते हुए रेडियो के लिए काफ़ी कुछ लिखा। इस नाटक की आत्मा भले ही भोजपुरी की थी लेकिन इसे हिंदी के क्षेत्र में भी काफ़ी लोकप्रियता मिली। इस क्षेत्र में रामवृक्ष

बेनीपुरी, राधाकृष्ण प्रसाद, जितेन्द्र सहाय, हंस कुमार तिवारी, जगदीश चन्द्र माथुर, द्वारका प्रसाद, सत्यनारायण अस्थाना, हिमांशु श्रीवास्तव, रेवती सरन शर्मा, मोहनलाल महतो वियोगी, सिद्धनाथ कुमार आदि के नाम रेडियो लेखन के लिए उल्लेखनीय है। पटना केंद्र से सबसे पहले नाटक के रूप में हंसकुमार तिवारी लिखित संगीत नाटिका 'कच देव्यानी' का प्रसारण किया गया था।

आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से हिंदी नाटकों का प्रसारण स्वतंत्रता प्राप्ति के दस वर्षों पूर्व से ही होता रहा है। प्रारंभ में नाटक लेखकों की कमी थी। परंतु धीर-धीरे तकनीकी जानकारी मिलने पर इस क्षेत्र में लेखक आने लगे और रेडियो के लिए लिखने लगे। रेडियो को काफ़ी लोकप्रियता भी मिली और फिर नाटक मंच से उतर कर रेडियो में समा गया, क्योंकि यह विधा रंगमंच से ही रेडियो में आई है। रेडियो नाटकों की एक अलग पहचान बनी और यह रेडियो-विधा के रूप में जाना गया। शोध के दौरान यह पाया गया कि ये नाटक लिखित साहित्य के रूप में मौजूद नहीं हैं। श्रोता इन नाटकों को दुबारा सुनने या पढ़ने से वंचित हैं। "पिछले पचास वर्षों में एक विशाल नाट्य साहित्य का सृजन रेडियो के माध्यम से हुआ है पर पाठकों के लिए इनका कोई संग्रह उपलब्ध नहीं है। अतः इनका मूल्यांकन संभव नहीं हो सका है। हिंदी साहित्य के इतिहास के लेखकों को इस दिशा में पहल करनी चाहिए।"[57]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि जो नाटक आकाशवाणी से प्रसारित किए गए उनमें प्रमुख हैं, सामाजिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक और रूपांतरित नाटक। आकाशवाणी द्वारा प्रसारण के लिए सामाजिक विषयों और समस्याओं को लेकर लिखे गए नाटकों को सामाजिक नाटक की श्रेणी में रखा जाता है। ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर लिखे गए नाटकों को ऐतिहासिक नाटक

कहते हैं। पौराणिक कथाओं को यदि नाटककार अपने नाटक विषयवस्तु बनाता है तो उसे पौराणिक नाटक कहा जाता है। किसी कहानीकार की कहानी को रूपांतर कर उसे नाटक रूप में प्रसारित करने से वह रूपांतरित नाटक कहलाता है। प्रारंभिक काल आकाशवाणी द्वारा पौराणिक कथानकों के आधार कई नाटककारों ने नाटकों की रचना की है।

नाटकों के प्रसारण में आकाशवाणी के रोहतक केंद्र का बहुत बड़ा योगदान माना जाना चाहिए। हेमराज निर्मम के 27 नाटक, 9-8-1981 को 'सच और झूठ', 9-2-1982 को 'मृग तृष्णा', 8-1-1984 'को दूज का चाँद', 9-12-1984 को 'चादर कितनी उजली', 13-4-1986 को 'अपने लोग', 19-10-1986 को 'नोटिस', 15-11-1987 को 'जीने के लिए', 15-5-1988 को 'हरी पगदण्डी', 14-4-1992 को 'ससुराल का सौग़ात' आदि आकाशवाणी के रोहतक केंद्र से प्रसारित हुए हैं। इसी प्रकार सुखचैन सिंह भंडारी के हिंदी नाटक 'रिहर्सल', 'भगवान बचाए ऐसी बीवी से', 'विषकन्या', 'आँधियाँ', 'बेड़ियाँ', 'दूरियाँ' आदि, डॉ. हरिशरण शर्मा के नाटक 'बाज आए ससुराल जाने से' (1-11-1982), 'गृह लक्ष्मी', 'जीवन की जंग' (8-9-1985), 'रिश्ता' (2-5-1982), 'अँधेरे से उजाले में' (11-12-1988), 'ख़ाली हाथ' (3-9-1993), 'आशा दीप' (6-5-1994), 'अंतिम निर्णय' (9-2-1986) आदि, श्री तरसेम चन्द के नाटक 'आज़ादी के मतवाले' (10-3-1985), 'माधवी' (14-11-1987), 'परिवर्तन' (23-5-1987), 'बेमौसम बरसात' (18-6-1989), 'इच्छापूर्ति' (24-10-1987), 'सीमा के बादल' (21-1-1990), 'रिश्ता नकचढ़ी का' (2-1-1998) आदि, रामफल सिंह चहल के नाटक 'बिघन की जड़', 'पैंसठ साला हुआ रिसाला', 'कड़ियाँ की कड़ी', 'माँ की पोटली', 'खानदानी गवाह' आदि, पूर्णचन्द पाण्डेय के नाटक 'एरियर बिल' (6-7-1986), 'शिकायत' (25-4-1987), 'हड़ताल' (25-7-1987), 'सूखता उपवन' (6-12-1987), 'बिजली की चोरी' (6-3-1988), 'षड़यंत्र' (7-8-1988), 'रास्ते (24-9-1988)', 'तलाश' (27-5-1989),

'एक बच्चा और' (14-7-1991), 'क्या सजा होगी' (9-11-1992), 'बहू बेटी (30-10-1993), 'माँगने से मरना भला' (30-1-1994), 'एक और आशीर्वाद' (1-9-1995) आदि का प्रसारण आकाशवाणी के रोहतक केंद्र से सफलतापूर्वक किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त अमृतलाल मदान, किशनचन्द्र शर्मा, रघुवीर सिंह मथाना, आशा मयाना, अनीता श्योराण, प्रमोद कुमार लखेरा आदि नाटककारों के नाटकों का प्रसारण भी इस केंद्र ने किया है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों के पात्र क्या बोलते हैं और अन्य पात्रों की बातों को वे किस प्रकार ग्रहण करते हैं, इसकी प्रतिक्रिया क्या होती है, यह नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पहलू मना जाता है। आकाशवाणी के नाटक इसलिए सफल नाटक कहे जाते हैं क्योंकि उनके संवादों की रचना ठोस एवं प्रभावी होती हैं। इसके साथ ही पात्रों के अनुकूल बातचीत के कारण कोई भी श्रोता इसे एकदम आसानी से समझ लेता है। आकाशवाणी का श्रोता किसी भी पात्र को देखता नहीं है। उनकी बातचीत को ही सुनकर उसका चित्र अपने मस्तिष्क में बनाता है और उसे समझता है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित स्वातंत्र्योत्तर नाटकों के संवाद अत्यंत छोटे-छोटे हैं, जिन्हें समझने में किसी भी श्रोता को किसी तरह की कोई कठिनाई नहीं होती है। जो संवाद तुरंत ही श्रोता को समझ में आ जाता है, उसे सफल संवाद कहा जाता है। ऐसे संवाद ही नाटक को प्राणवान बनाते हैं। वातावरण का निर्माण करने तथा देशकाल को स्थापित करने में संवादों की भूमिका सहज रूप से सहायक होती है। इसलिए नाटककार आवश्यकता को ध्यान में रखकर संवादों की रचना करते हैं। प्रसिद्ध नाटककार पं. हंसकुमार तिवारी के एक नाटक 'अमृत और सुधा' का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों के संवाद कितने सरल और सहज ढंग से लिखे जाते हैं।

यह नाटक आकाशवाणी के पटना केंद्र से प्रसारित हुआ था।

"(इन्द्र-सारथि मातलि का घर। बाहर रथ रुकने की आवाज़ होती है। मातलि दरवाज़े पर आते हैं)

सुधर्मा (जैसे प्रतीक्षा में ही थी) मुँह मीठा कराऊँ ? शुभ समाचार ?

मातलि (उसाँस लेकर) नहीं सुधर्मा, शुभ समाचार नहीं ला सका। वहाँ से निराश ही लौटना पड़ा।

सुधर्मा (हताश-सी) विलम्ब से काम बनने की सम्भावना समझी जाती है। आपको जब कई दिन लग गये, तो भरोसा हुआ, हो-न-हो कहीं डौल बैठा। हर आहट के साथ मैं दरवाज़े पर ही होती थी। लेकिन वास्तविकता अनुमान के सत्य को झुठला गयी। आप निराश ही लौटे।

मातलि हाँ सुधर्मा।

सुधर्मा आपके भारी कदम ही विफलता का बयान कर रहे हैं, पर उतावले मन को आँख थोड़े ही होती है। ....ओह, तू खड़ी है अलोपा। जा, मिठाई की थाली अब नहीं चाहिए।

(अलोपा एक ओर खड़ी थी—चली जाती है।)

मातलि तो तुमने मुँह मीठा करने की तैयारी कर रखी थी ?

सुधर्मा मैं क्या जानती थी कि इन्द्र-सारथी मातलि जैसे को भी निराश, सर झुकाकर लौटना पड़ेगा ?

मातलि बेटी का बाप-मात्र ही बड़ा ग़रीब होता है सुधर्मा, बड़ा बेचारा। आदमी कोई कितना बड़ा क्यों न हो, उसे बेटी हुई कि सिर सदा के लिए झुक गया। इन्द्र-सारथि मातलि तो क्या, बेटी का बाप होकर भगवान का भी सिर ऊँचा नहीं रह सकता। ख़ैर, यह नौबत नहीं आई।

सुधर्मा तो ?

मातलि इन्द्र सखा मातलि के यहाँ सम्बन्ध करने से भला किसे ख़ुशी न हो, किसे गर्व न हो।

सुधर्मा फिर क्या हुआ कि कहीं सम्बन्ध ही नहीं हो सका ?

मातलि मेरे ही मन ने कहीं हाँ नहीं किया।

सुधर्मा क्यों ?

मातलि रूप की चरमता जिस पर चित्र लिखी सी रह गयी है, अपनी उस बिटिया, गुणकेशी के योग्य कोई तरुण ही मुझे नज़र नहीं आया।

(अचानक गुणकेशी आ पड़ती है)

गुणकेशी पिता जी !

मातलि गुणकेशी, मेरी बिटिया।

गुणकेशी बहुत दिन लगा दिए......ऊँ........(लिपट जाती है)

सुधर्मा लाड़ देख लो, जैसे दूध पीती बच्ची है। थके-माँदे आये हैं, पानी-वानी की पूछें, सो नहीं। लिपट गई आकर।

गुणकेशी तुम तो माँ.......ऊँ

(चली जाती है)"[58]

इस नाटक के संवाद अत्यंत छोटे-छोटे हैं। न तो इसे वाचन में कोई असुविधा होगा और न समझने में। नाटक के कलाकार भी इन संवादों को आसानी से याद कर उसका अभिनय कर सकते हैं और श्रोता भी सरलतापूर्वक समझ सकता है। और यही नाटककार की सफलता भी होती है।

मुद्राराक्षस का एक नाटक 'एक और रोबो' प्रसारण आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से किया गया था। यह नाटक एक वैज्ञानिक परिकल्पना पर आधारित है। इस नाटक

का प्रारंभ अत्यंत रोचक ढंग से किया गया है। संवाद इतने छोटे-छोटे हैं, जिसे कोई भी कलाकार आसानी से अभिनीत कर सकता है। कुछ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग हुआ है जो अत्यंत स्वाभाविक लगता है।

- **"(दूर से विचित्र लयात्मक ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं)**

डॉ. जयदेव सुन रहे हैं डॉक्टर रहमान ।

डा. रहमान सुनो जयदेव, पल्सर रीडिंग बहुत ज़्यादा हो गयी है ।

जयदेव मैं कह रहा था यह आवाज़ें सुन रहे हैं आप ?

रहमान यह आवाज़ें ? .... नाच गाने जैसी ।

जयदेव हां ।

रहमान शायद डॉक्टर बैनर्जी अपने कमरे में म्यूज़िक का मज़ा ले रहे हैं ।

जयदेव नहीं, डॉक्टर बैनर्जी के पास ऐसा कोई क्रिस्टल नहीं है जिससे इस क़िस्म का संगीत निकलता हो ।

रहमान **(थोड़ा हंस कर)** हो सकता है डॉक्टर बैनर्जी को पुराने दिनों की याद आ गयी हो और कबाड़खाने से कोई पुराना कैसेट ले आये हों ।"[59]

चूँकि यह नाटक एक वैज्ञानिक परिकल्पना पर आधारित है, इसलिए अत्यंत रोचक है। इसके पात्र रोबो हैं जो और अधिक रोचकता पैदा करते हैं। हाड़-मांस का बना इन्सान रोबो बनाता है, पर एक समय ऐसा आता है कि वे मानव-निर्मित रोबो मानव को ही नष्ट करने पर मजबूर होने लगते हैं। रोबो भी इन मानवों को रोबो समझते हैं और उनका आदेश नहीं मानते हैं।

"(अजीब यन्त्रों की आवाज़ उभरती है और धीरे-धीरे फेड आउट । दरवाज़े पर ठक-ठक)

जयदेव आ जाइए........(पॉज) ओह रोबो तरेसठ ।

रोबो-63 जी आपने कहा था ।

जयदेव हूं बैठ जाओ ।

रोबो-63 जी-बोलिए ।

जयदेव तुमने हुक्म उदूली की ।

रोबो-63 आप कुछ भद्रतापूर्ण भाषा का प्रयोग करें तो बेहतर हो ।

जयदेव (चीख कर) व्हाट ?

रोबो-63 कृपया चीखें नहीं ।

जयदेव डॉ. रहमान—आख़िर इसे हुआ क्या है ?

रहमान रोबो तरेसठ, तुम्हें रोबोटिक्स के उसूल मालूम हैं ?

रोबो-63 जी—पहला उसूल कोई रोबो किसी इंसान को न तो नुकसान पहुँचाएगा और न पहुँचने देगा । इस उसूल की तो यहाँ कोई ज़रूरत ही नहीं है ।

रहमान क्या मतलब ?

रोबो-63 ज़मीन से दूर समुद्र के एक टापू की तली में क़रीब पैंतीस किलोमीटर नीचे बनी हमारी इस बस्ती में इंसान हैं ही नहीं । ठहरिए, मैं समझ रहा हूँ आप क्या कहेंगे । आप अपने को इंसान मानते हैं । लेकिन यह ग़लत है । आप भी हमारी ही तरह रोबो हैं । मशीनें हैं । फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि हमारे नाम नहीं हैं, संख्याएँ हैं और आपके नाम हैं । दूसरा उसूल है कि रोबो इंसान के हुक्म की उदूली नहीं करेगा........

रहमान एक्जैक्टली !

रोबो-63 मगर इसका मतलब यह नहीं कि है कि आपका हुक्म भी हम मानें । रोबो, रोबो का वही हुक्म मान सकता है कि.........

रहमान रोबो रोबो रोबो—किसने तुम्हें बताया कि हम रोबो हैं ?

जयदेव मिस्टर रोबो सिक्स्टी थ्री । तुम्हें पता है कि मैं सिर्फ़ इसी एक बात को लेकर तुम्हें बिगड़ी हुई मशीन घोषित कर सकता हूँ और तुम्हें तुरंत नष्ट कर सकता हूँ ।

रोबो-63 आप नहीं कर सकते ।

जयदेव शट अप ।

रहमान डॉ. जयदेव——ठहरिए इसे रखिए.....

रोबो-63 डॉ. जयदेव इस औज़ार से आप मुझे शॉर्ट सर्किट करना चाहते हैं न ? कोशिश कर लीजिए, वह होगा नहीं ।

रहमान जयदेव !

(एक सनसनाहट की आवाज़)

रोबो-63 आपकी इस गन से तो कुछ भी नहीं हुआ डॉ. जयदेव । चाहें तो फिर चला लें । आप ताज्जुब न करें। आपके हथियार मैं पहले ही बेकार कर चुका हूँ ।

रहमान आप चुप रहिए जयदेव साहब । रोबो-63 किसके सुझाव से और किसकी मदद से तुमने ये सब किया ?

रोबो-63 सुकरात । सुकरात आपको भी रास्ता दिखाते हैं——मुझे भी उन्होंने ही रास्ता दिखाया । आप जानते हैं, हम, आप सब अपने ज्ञान के लिए उन्हीं के पास जाते हैं ।

रहमान यानी वह एमीनो एसिड्स का लिजलिजा बुलबुला तुम्हारा ईश्वर है ।

रोबो-63 तुम्हारा भी ।

जयदेव डॉ. रहमान ! इस पुतले के बच्चे को समझाइए कि न सुकरात हमारा ईश्वर है न इस सिरफिरे का । हमने, यानी इंसान ने इस जैसे पुतलों को भी बनाया है और एमिनो एसिस्ड्स की उस थैली को भी ।

रोबो-63 बहुत हो गया—सुकरात के ख़िलाफ़ बोलने का हक़ इससे ज़्यादा किसी रोबो को नहीं दिया जा सकता ।

डॉ. जयदेव शट अप एण्ड गेट आउट ।

रोबो-63 ठीक है मैं जा रहा हूं । लेकिन एक बात कहे जा रहा हूं कि मैं दो घण्टे का वक्त देता हूं । उसके बाद मुझे मजबूर होकर देखना पड़ेगा कि आपके सर्किट में कहां गड़बड़ हुई है । अगर उसे ठीक किया जा सकता है तो ठीक है । वरना मुझे अफसोस हो कि आपको नष्ट कर दिया जाएगा ।

रहमान आप ख़ामोश रहिए एक मिनट रोबो-63

रोबो-63 कहिए ।

रहमान तुमने परसो देखा था हमने रोबो सत्तर के हिस्से मंगाए थे और उन्हें जोड़कर रोबो सत्तर को ठीक तुम्हारी तरह तैयार किया था जिसमें पाजिटोनिक ब्रेन भी था ।

रोबो-63 आप का काम था रोबो सत्तर के पुर्ज़े जोड़कर तैयार कर देना । किसी और का काम है पुर्ज़े जोड़कर आपको तैयार करना । उसने आपको तैयार कर दिया......

जयदेव **(हंसता है)** मूर्ख मशीन ।

रहमान ठहरो जयदेव, ये भी रोबो है मैं भी रोबो हूं, डा. बैनर्जी भी रोबो हैं और तुम भी रोबो हो ।

रोबो-63 जी हां । लेकिन रोबो डा. जयदेव में गड़बड़ी पैदा हो गयी है और यह खतरनाक है । मैं अभी जा रहा हूं । लेकिन डाक्टर जयदेव इस कमरे से बाहर नहीं जाएंगे । दो घण्टे बाद मैं वापस आ रहा हूं ।

(जाने की आवाज़) "60

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों में कथानक, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, ध्वनि अथवा उच्चरित शब्द और एक ख़ास उद्देश्य होता है। इस तरह के नाटकों में ध्वनि का विशेष महत्त्व होता है। स्वातंत्र्योत्तर रेडियो नाटकों के कथानकों के विषय में हम कह सकते हैं कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों का कथानक अधिकांशतः ऐतिहासिक अथवा पौराणिक रहें हैं। स्वतंत्रता के बाद श्रोता अपने देश के इतिहास के बारे में अधिक से अधिक जानने के लिए आतुर था। इसलिए तत्कालीन नाटककारों ने इसी पृष्ठभूमि पर नाटकों की रचना की। और जब इस तरह के कथानकों पर आधारित नाटकों को लोकप्रियता मिलने लगी तब आकाशवाणी द्वारा भी ऐसे नाटकों का प्रसारण तेज़ी से होने लगा।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों की लोकप्रियता को मुख्य कारण यह है कि आम श्रोता इसे आसानी से सुन सकता है। सबसे सस्ता और आसानी से उपलब्ध होने वाला माध्यम होने के कारण इस माध्यम से प्रसारित होने वाले सभी तरह के कार्यक्रमों की लोकप्रियता मिलती है। मंचीय नाटकों को देखने के लिए समय निकाल पाना कठिन होता है। रेडियो सुनते-सुनते अपने घर का काम या दफ़्तर का काम भी किया जा सकता है। एक साथ बैठ कर कई श्रोता आकाशवाणी से प्रसारित कार्यक्रमों को सुनने का लाभ उठा सकते हैं। पूर्वोत्तर भारत के श्रोताओं के लिए विशेष रूप से सामुदायिक रेडियो केंद्र खोलने के प्रयास किए जा रहे हैं। "केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय अगले वित्तीय वर्ष तक पूर्वोत्तर में पाँच और सामुदायिक रेडियो केंद्रों की स्थापना करेगा। मिज़ोरम के सूचना एवं जनसंपर्क अधिकारी ने यहाँ मंत्रालय के फ़ैसले की जानकारी देते हुए बताया कि मिज़ोरम में एक और मेघालय तथा नगालैण्ड में दो-दो रेडियो केंद्रों की स्थापना की जाएगी। अधिकारी के अनुसार पूर्वोत्तर के राज्य काफ़ी समय से ज़्यादा रेडियो केंद्रों को स्थापित करने की माँग करते आ रहे हैं।"[61] गुवाहाटी से प्रकाशित हिंदी दैनिक समाचार पत्र 'सेंटिनल' में छपी इस ख़बर के आधार पर हम कह सकते हैं कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने और

इसके कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय कृतसंकल्प है। इतना ही नहीं, आकाशवाणी पहले श्रोताओं से रेडियो सुनने के लिए कर वसूलती थी, जिसके पास रेडियो होता था उसे लाइसेंस लेना पड़ता था और लाइसेंस शुल्क जमा करने के लिए घंटों का समय बर्बाद होता था। इस कारण अधिकांश श्रोता रेडियो सुनने से वंचित हो जाते थे।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्भाव, सामाजिक न्याय, परिवार कल्याण, दहेज-प्रथा का उन्मूलन तथा अन्य सामाजिक बुराइयों को दूर करने जैसे सामाजिक उद्देश्यों पर नाटक के माध्यम से प्रकाश डालना है। इन सबके बावजूद नाटक का उद्देश्य श्रोताओं का मनोरंजन करना भी होता है। आकाशवाणी को राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के लिए उदात्त मूल्यों पर आधारित नाटकों एवं काव्य-कृतियों की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। राष्ट्र-निर्माण की दिशा में आकाशवाणी रचनात्मक योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने राष्ट्रीय उद्देश्य को सामने रखकर अपने नाटकों की रचना की है और उनकी प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया जाना इस बात का संकेत है कि इन नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति करने में आकाशवाणी सर्वप्रथम है।

स्वतंत्रता के पश्चात आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले नाटकों में जिसकी रचना बार-बार प्रसारित होती रही उनमें सबसे प्रमुख नाम पद्मश्री चिरंजीत का है। श्री चिरंजीत स्वभाव और संस्कार से राष्ट्रीय संग्राम के सेनानी हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के समकालीन नाटककारों में श्री चिरंजीत का नाम सम्मान के साथ लिया जा सकता है। इनके नाटकों का यथार्थ सुधारोन्मुख है। श्री चिरंजीत अपनी पुस्तक 'सात राष्ट्रीय रेडियो नाटक' में लिखते हैं, "मैंने सन् 1945-46 में ऑल इंडिया रेडियो की पहली बार नौकरी की थी। तब मेरा रेडियो-लेखन छोटे-छोटे संगीत-नाटकों और एकाध गद्यात्मक प्रहसनों तक ही सीमित रहा

था। सन् 1950-52 में मैंने ऑल इंडिया रेडियो की दूसरी बार नौकरी की थी। तब मैंने लघु संगीत-नाटकों के अलावा लगभग सभी प्रकार के गंभीर एवं हास्य-प्रधान अनेक गद्य-नाटक लिखे थे, परंतु वे सब प्रयोगात्मक थे। वास्तविक रेडियो-नाट्य-लेखन मैंने पूर्ण मनोयोग एवं निष्ठा से आकाशवाणी की अपनी लंबी नौकरी के दौरान किया था। वह नौकरी सन् 1954 से लेकर 31 दिसंबर 1979 तक चली थी। उन 25 वर्षों में मैंने सैकड़ों छोटे-बड़े रेडियो-नाटक लिखे, निरंतर कई-कई वर्ष तक प्रसारित होने वाले 'नया नगर' और 'मास्टर सिलबिल' जैसे हास्य-प्रधान धारावाहिक नाटक लिखे, 'ढोल की पोल' जैसे राजनीतिक व्यंग्य-नाटक लिखे और 'वीरांगना' तथा 'पृथ्वीपुत्र' जैसे बड़े-बड़े संगीत-नाटक लिखे। उनमें से बहुत-से उच्चकोटि के नाटक सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित होकर आकाशवाणी के नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम में प्रसारित हुए और कई-एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी चर्चित-प्रशंसित हुए। अधिकतर नाटक राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत थे।"[62]

चिरंजीत का एक लोकप्रिय रेडियो नाटक 'रतजगा' का प्रसारण वर्ष 1973 के आसपास आकाशवाणी द्वारा किया गया है। निश्चित तिथि का उल्लेख नहीं मिल पाया है। यहाँ तक कि नाटककार को भी स्मरण नहीं है। इस नाटक में गांधीयुग के एक राष्ट्रप्रेमी परिवार की तीन पीढ़ियों की कहानी है। गांधी जी के आदेश पर सत्याग्रह आंदोलन में पुलिस की मार खाने वाले और जेल की यातनाएँ सहने वाले स्वतंत्रता और पुरस्कार आदि से मरहूम रहकर देश की गतिविधियों का अध्ययन करते हैं। प्रत्येक वर्ष 14 अगस्त की रात को रतजगा करते हैं। रामदयाल की पत्नि सन् 1942 के आंदोलन में शहीद हो जाती है, उसका एक पुत्र भी पाकिस्तान के आक्रमण के समय मारा जाता है। उसकी विधवा बहू अपने एकमात्र बेटे को मिलिट्री की शिक्षा दिलवाती है ताकि वह भी देश-रक्षा के लिए फौज में भर्ती हो सके। इस नाटक में गाँधीवादी आदर्श के एक आधुनिक पक्ष को नाटककार ने दिखाया है। इसी परिवार में एक दूसरा पक्ष भी चिरंजीत ने दिखाया है। रामदयाल के दूसरे पुत्र

कृष्णमोहन अपने परिवार के साथ आधुनिकता के रंग में रंगा है। वह देशद्रोही कार्यों में संलग्न है। रामदयाल अत्यंत दुखी है। नाटककार ने देश की वर्तमान दशा का मार्मिक चित्रण प्रभावशाली ढंग से किया है।

आकाशवाणी से प्रसारित नाटकों की तकनीक के स्वतंत्र रूप से विकसित हो जाने पर आकाशवाणी के प्रसारण के लिए अलग से नाटक लिखे जाने लगे। यहाँ एक बात देखने को मिली कि हिंदी के सभी नाटककार जो रंगमंच के लिए नाटक लिखते वहीं आकाशवाणी के लिए भी नाटक लिखने लगे। इस संदर्भ में श्री चिरंजीत का मानना है कि, "हिंदी का जो आधुनिक नाटक है उसके विकास में आकाशवाणी का बहुत बड़ा योगदान है। आज की तारीख़ में जो रंगमंच हिंदी का है, वह आकाशवाणी ने दिया है। रेडियो नाटकों के विकास में आकाशवाणी पटना का योगदान विशेष सराहनीय कहा जा सकता है। आधुनिक नाटक रंगमंच से नहीं आया है वह आकाशवाणी से आया है। जयशंकर प्रसाद को छोड़कर बाक़ी सभी नाटककारों का जन्म आकाशवाणी ने दिया है। पहले आकाशवाणी द्वारा प्रसारित करने के लिए ही नाटक लिखे गए। नाटक पढ़ने की चीज़ नहीं है, देखने और मंचित करने की है। यह कलाकारों द्वारा अभिनीत होकर समाज तक संप्रेषित होता है।"[63] इन नाटककारों ने सभी विषयों पर आकाशवाणी के लिए नाटक लिखे। रेडियो नाटक साधारणतः संक्षिप्त होते हैं और इनमें समय का बंधन अवश्य होता है। पंद्रह मिनट से लेकर एक घंटे तक के लिए रेडियो नाटक लिखे गए हैं। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों में विस्तार के साथ-साथ गहराई भी होती है। नाटककार नाटकों में काम करने वाले अभिनेता से अच्छी तरह परिचित रहते हैं और उनकी बोलचाल की भाषा, भाषा में उतार-चढ़ाव, आरोह-अवरोह क्षमता, आवाज़ की उम्र, आवाज़ में कठोरता या मधुरता आदि भावों से परिचित होने के कारण नाटककार उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है।

आकाशवाणी के प्रारंभिक काल के नाटककारों में कृष्णचन्द्र का नाम उल्लेखनीय है। उनके प्रसिद्ध नाटक निम्नलिखित हैं जो आकाशवाणी से विधिवत प्रसारित हो चुके हैं— 1. बेकारी, 2. हजामत, 3. दरवाज़ा, 4. नीलकंठ, 5. काहिरा की एक शाम, 6. सराय के बाहर, 7. बदसूरत राजकुमारी, 8. मांगलिक, 9. एक रुपया : एक फूल। इनके अन्य कुछ रेडियो नाटक हैं— 'नये गुलाम', 'सच्चा प्रेम', 'कुत्ते की मौत', 'प्रेम के बाद' आदि। विषय की दृष्टि से इन नाटकों में विविधता देखने को मिलती है।

अमृतलाल नागर ने आकाशवाणी के लिए अनेक नाटक लिखे हैं। इनके सामाजिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर खरे उतरते हैं। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने कई प्रहसनों की रचना भी की है। इनकी समस्त नाट्य-कृतियाँ रेडियो नाटक की दृष्टि से सफल कही जा सकती हैं। रेडियो नाटककार के रूप में विष्णु प्रभाकर का नाम गर्व के साथ लिया जाता है। जीवन के अनेक पहलुओं को उजागर कर विष्णु जी ने रेडियो नाटककार की हैसियत से उसे जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयास किया है। विष्णु प्रभाकर के कुछ महत्त्वपूर्ण आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटक हैं— 1. मीना कहाँ है, 2. क्या वह दोषी था ?, 3. दो किनारे, 4. युग सन्धि, 5. प्रकाश और परछाई, 6. दोराहा, 7. गीत के बोल, 8. समरेखा, 9. विषम रेखा, 10. साँप और सीढ़ी, 11. मुरब्बी, 12. संस्कार और भावना, 13. जहाँ दया पाप है, 14. उपचेतना का छल, 15. वार पूजा, 16. दरिन्दा, 17. दस बजे रात, 18. पूर्णाहुति तथा जज का फ़ैसला, 19. सरकारी नौकरी।

विष्णु प्रभाकर के नाटक मानवतावादी दृष्टिकोण दर्शाते हैं। यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित आदर्श का स्वर इनके नाटकों में उभर कर सामने आया है। विषयों की विविधता इन नाटकों में स्पष्टतः दिखाई देती है। इनके नाटककारों के अतिरिक्त अन्य नाटककारों में महत्त्वपूर्ण नाम हैं—उदय शंकर भट्ट, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. सिद्धनाथ

कुमार, डॉ. रामकुमार वर्मा, सत्येन्द्र शरत, जगदीश चन्द्र माथुर, विनोद रस्तोगी, मुद्राराक्षस, रेवती सरन शर्मा, सावित्री रांका आदि।

सावित्री रांका का नाटक 'एक और आवाज़' आकाशवाणी से वर्ष 1981 के आसपास प्रसारित हुआ है। 'एक और आवाज़' आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रेडियो नाटक है जिसका मंचन भी प्रस्तुत किया जा सकता है। 'एक और आवाज़' बँधुआ मज़दूर प्रथा पर आधारित है 'मुक्ति' साधु समाज द्वारा चलाए जाने वाले ढोंग और भ्रष्टाचार की पोल खोलकर धर्मांधता पर प्रहार करने वाला, 'प्रतिशोध' तिष्यरक्षित के प्रेम निवेदन को ठुकराने वाले कुपाल से लिये गये तिष्यरक्षिमा के प्रतिशोध की ऐतिहासिक घटना पर आधारित एकांकी नाटक है।

रेडियो नाटकों का मंचीय स्वरूप तैयार करना उतना आसान नहीं है। केवल ध्वनि प्रभाव वाले निर्देशों को बदलना ही काफ़ी नहीं होता। यद्यपि 'एक और आवाज़' में वह भी बदला गया हो। माध्यम के रूप में एवं मंच की सीमाओं और समझ से गुज़र कर ही यह संस्करण तैयार होता है। 'एक और आवाज़' इस संग्रह में भी रेडियो नाटक ही है, उसकी मंचीय प्रस्तुति हो ज़ाए, यह बात दूसरी है।

इस तरह हम 'रेडियो-नाटक-शिल्प' को 'ध्वनि-शिल्प-नाट्य' भी कह सकते हैं। ध्वनि के माध्यम से ही नाटक को श्रोताओं तक पहुँचाया जाता है। नाटक में प्रयुक्त तीन तरह की ध्वनियों को क्रमशः शब्द, वाद्य और प्रभाव कहा जा सकता है। पात्रों की विशेषताओं को ध्वनियों के माध्यम से ही प्रकट किया जाता है। दृश्य परिवर्तन के लिए प्रभाव ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। प्रभाव ध्वनि वातावरण के निर्माण में काफ़ी सहायक होती है। जहाँ तक हिंदी साहित्य के नाटकों पर आकाशवाणी के प्रभाव की बात है, उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि आज़ादी के बाद हिंदी साहित्य में सृजित नाटकों के शिल्प में वैविध्य दिखाई पड़ता है, उसमें पहले से अधिक संक्षिप्तता, क्षिप्रता के साथ-साथ सरल वाक्य-योजना में आई;

परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वतंत्रता के पूर्व जहाँ लंबे-लंबे बहु-अंकीय नाटक लिखे जाते थे, वहीं आज़ादी के पश्चात एकांकी का ज़ोर बढ़ा। यह विचारणीय प्रश्न हो सकता है कि आख़िर दीर्घ नाटकों के स्थान पर संक्षिप्त एकांकी के सृजन की आवश्यकता क्यों महसूस हुई ? इस संदर्भ में बच्चन सिंह का कथन है, "विषय की दृष्टि से जितने व्यापक विषय को रेडियो-नाटकों में प्रस्तुत किया जा सकता है उतने व्यापक विषय को एकांकियों में नहीं उपस्थित किया जा सकता है। एकांकियों के बंधन रेडियो-नाटकों में स्वीकार नहीं हैं। संकलनत्रय के लिए रेडियो-नाटकों में कोई स्थान नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि एकांकियों के कतिपय बाधक तत्व इसके लिए साधक सिद्ध हुए हैं। आलोचकों ने नाटकों और एकांकियों से बेचारे 'स्वगत' को लगभग बहिष्कृत कर दिया है। पर रेडियो- नाटकों में जाकर जैसे इसे अपना उचित स्थान मिल गया। स्वप्न, विक्षेपावस्था आदि नाटकों, एकांकियों में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है। वातावरण निर्माण में तो रेडियो-नाटक ने एकांकियों को बुरी तरह पछाड़ दिया है। प्लेटफ़ॉर्म की भीड़-भाड़, फेरी वालों के शोरगुल, कुली के पुकारने की आवाज़, यात्रियों की चीख-पुकार, कनाडियन इंजिनों के भोंपू आदि को रेडियो-नाटकों में बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। एकांकियों में दूसरे स्थान की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को, जो नाटकीय कथानकों से अच्छी तरह संबद्ध हैं, केवल सूचित किया जा सकता है। पर रेडियो नाटकों में उन्हें उपस्थित करने में कोई कठिनाई नहीं है।"[64]

वस्तुतः नाटक अथवा एकांकी संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम माना जाता है, जिनमें अभिनय के द्वारा निरक्षर और कम पढ़े-लिखे लोगों तक भी विचार अथवा संदेश पहुँचाया जा सकता है। इस क्रम में आकाशवाणी नाट्य विधा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम मानी गई , क्योंकि उसकी पहुँच बहुत दूर तक आम जनता के बीच थी। आकाशवाणी की इस संचार-शक्ति को पहचान कर ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्य ने अपने को आकाशवाणी के अनुरूप ढाला और उसका प्रभाव हम कई स्थानों पर देख सकते हैं।

4.(च). फीचर (रूपक)

फीचर शब्द मूलतः अंग्रेजी का है। आकाशवाणी में फीचर को हिंदी भाषा में रूपक कहने का प्रचलन है; जबकि रूपक को नाटक का एक भेद भी कहा गया है। आज फीचर का तात्पर्य आकाशवाणी के लिए उस विधा से है, जिसमें तथ्य को ध्वन्यात्मक बनाकर रेडियो द्वारा प्रसारित किया जाता है। फीचर को मुद्रित माध्यम के साथ-साथ संचार माध्यमों में भी प्रयोग किया जाता है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित फीचर में तथ्यों, तर्कों और आँकड़ों की व्याख्या नहीं होती। प्रस्तुतकर्ता यह मानकर चलता है कि तथ्य तो श्रोताओं को पहले से ही मालूम हैं, बस प्रस्तुतकर्ता यह चाहता है कि उन तथ्यों को लेकर श्रोताओं के मन में संवेदना जाग्रत हो। रेडियो फीचर के निर्माण के लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती है- भिन्न-भिन्न प्रकार के ध्वनियों की। इन ध्वनियों को बिम्ब या साउण्ड इफेक्ट कहते हैं। आकाशवाणी के हर केन्द्र पर ये ध्वनियाँ वहाँ की लाइब्रेरी में उपलब्ध रहती हैं।

हम यह कह सकते हैं कि आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य का लिखित रूप जिस विधा का मिलता है वह है रेडियो रूपक। इस विधा पर अनेक शोधग्रंथ उपलब्ध हैं तथा इस पर विस्तृत रूप में चर्चा भी हुई है। रूपक की चर्चा करते हुए डॉ. श्यामसुन्दर दास लिखते हैं- "काव्य के दो प्रकार होते हैं - एक दृश्य, दूसरा श्रव्य। दृश्य काव्य वह काव्य है जो देखा जा सके, जिसमें नाट्य की प्रधानता हो, जिसको देखने से ही विशेष प्रकार से रस की अनुभूति हो और जिसका अभिनय किया जा सके। इसी दृश्य काव्य को संस्कृत आचार्यों ने 'रूपक' नाम दिया है। रूपक में अभिनय करने वाला किसी दूसरे व्यक्ति का रूप धारण करके उसके अनुसार हाव-भाव करता और बोलता है। इस प्रकार का व्यक्ति या उसके रूप का आरोप दूसरे व्यक्ति में होता है, इसलिए ऐसे काव्य को 'रूपक' नाम दिया गया है।"[65]

आकाशवाणी द्वारा समय-समय पर रूपकों का प्रसारण किया जाता है। रेडियो रूपक अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं। इनकी प्रसारण अवधि 15 मिनट से 60 मिनट तक की होती है। रेडियो-रूपकों में ध्वनि की प्रधानता रहती है , इसीलिए इसे ध्वनि-रूपक भी कहा जाता है। इसके अनेक भागों को वर्णन कर काम चलाया जाता है और ध्वनि तथा ध्वनि संकेत के माध्यम से कहानी को आगे बढ़ाया जाता है। "रेडियो रूपक अथवा रेडियो वृत्तचित्र ध्वनि प्रसारण का अति महत्त्वपूर्ण एवं अभिन्न हिस्सा है, जिसके द्वारा एक ही कार्यक्रम के द्वारा श्रवण प्रयास के समूचे रेंज इसमें सीधी बातचीत, साक्षात्कार, कविता, नाटक, संगीत और ध्वनि प्रभावों का इस्तेमाल किया जाता है। शब्द चित्रण, चरित्र-चित्रण और घटनाओं तथा विधिसार द्वारा क्षेत्रीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के किसी भी विषय/निष्कर्ष को प्रस्तुत किया जा सकता है। आर्थिक सामाजिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए इनका व्यापक रूप से इस्तेमाल किया गया है। आकाशवाणी में 1956 में रूपक का राष्ट्रीय कार्यक्रम (हिंदी तथा अंग्रेजी) चालू किया गया तथा तबसे प्रत्येक मास राष्ट्रीय नेटवर्क पर प्रसारित किया जाता है।"[66]

इसी तरह "ऑल इण्डिया रेडियो के रिपोर्ट में रूपक की परिभाषा निर्धारित करते हुए लिखा गया है- A feature programme is a method of employing all the available methods and tricks os broadcasting to convey information or entertainment in a palatale form."[67]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रेडियो-रूपक की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। जहाँ मंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले रूपक दृश्य और श्रव्य दोनों हैं वहीं रेडियो-रूपक केवल श्रव्य है। मंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले रूपकों में दृश्यों का वर्णन, वस्त्र-विन्यास, सजावट, पात्रों का चरित्र-निर्माण आदि का प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया जाता है, वहीं रेडियो रूपक में इन सबका

प्रदर्शन एकमात्र ध्वनि के माध्यम से किया जाता है। रेडियो-रूपकों को सुनने के लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई श्रोता या दर्शक नहीं होता, केवल अभिनेता होते हैं। प्रसारित रूपक के विषय में कलाकारों को श्रोताओं की प्रतिक्रिया जानने का अवसर नहीं मिलता है। रेडियो फीचर में गति और कार्य के साथ ही साथ घटनाओं का प्रदर्शन बड़ी सरलता के साथ करना पड़ता है। इस विधा में कल्पना-प्रधान कथानक को प्रस्तुत करना बहुत ही आसान है। इसमें किसी प्रकार के दृश्य, स्थान, काल, पात्र आदि की कल्पना प्रस्तुतकर्ता बड़ी आसानी से कर लेता है। "रूपक का विषय कुछ भी हो सकता है। एक चींटी से लेकर हाथी तक और बैलगाड़ी से लेकर अन्तरिक्ष यान तक या फिर समुद्र से लेकर आकाश तक रूपक का विषय बनाया जा सकता है। कसौटी यह कि रूपक प्रस्तुत करने के लिए चयनित विषय के लिए कितनी तथ्यपरक सूचनायें आप इकट्ठी कर पाते हैं और फिर इसी अंदाज से इसे श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। विषय का चयन आप जो भी करें पर उस विषय से सम्बंधित सारी जानकारियाँ आप चयन कर लें। इसके लिए सभी स्रोतों तक पहुँचने की आवश्यकता होगी और यह एक शोधपरक कार्य होता है। एक ही विषय पर एक वार्ता लिखी जा सकती है, एक कविता के माध्यम से भी भाव को अभिव्यक्ति दी जा सकती है, एक भेंटवार्ता के रूप में भी इस विष्य का निरूपण किया जा सकता है पर रूपक द्वारा उस विषय का प्रतिपादन प्रभावी रूप से किया जा सकता है। घटनाओं के उचित संयोजन, वेग और भाषा के आकर्षक प्रयोग द्वारा इसमें चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है। जिस विषय पर सामग्री का उपलब्ध होना संदिग्ध है या सम्भावना शून्य है, उस विषय को रूपक का स्वरूप देना संभव नहीं है। अतः तथ्य ही रूपक की कसौटी है। इस प्रकार रूपक में यथार्थ वस्तु और तत्सम्बन्धी एकत्रित तथ्यों को नाटकीयता का पुट देकर प्रस्तुत किया जाता है।"[68]

चूँकि रेडियो-रूपक श्रव्य-प्रधान है और इसे प्रस्तुत करने के लिए तीन प्रधान रूप हैं- भाषा, ध्वनि-प्रभाव और संगीत। वास्तव में रेडियो-रूपक का प्राण भाषा-शैली ही है।

इसमें उसी प्रकार के शब्दों, वाक्यों और पदों का मूल्य है, जो सहजता और सरलता से बोले जा सकते हैं, जिनका अर्थ एवं भाव कोई भी श्रोता बिना किसी परिश्रम और कठिनाई के समझ ले। ध्वनि-प्रभाव का अर्थ है, दूरभाष, रेलगाड़ी, मोटर, हवाई जहाज, रुदन, हास्य आदि की ध्वनि। इन ध्वनियों को प्रयोग करना रेडियो-रूपक के प्रस्तुतकर्ता के लिए आवश्यक है। वातावरण के निर्माण के लिए ध्वनि-प्रभावों का विशेष महत्त्व है। रेडियो रूपक में संगीत का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है। स्वतंत्र रूप में और संलाप या कथोपकथन की पृष्ठभूमि में। संगीत के द्वारा दृश्य-परिवर्तन का भी संकेत कराया जाता है। संगीत को प्रतीक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संगीत रेडियो-रूपक का एक महत्त्वपूर्ण साधन है और इसका उपयोग उचित समय पर, उचित कार्य के लिए और उचित स्थान पर किया जाता है।

फीचर-लेखन के विषय में डॉ. ठाकुरदत्त शर्मा आलोक का मत है, "फीचर लिखना एक मनोहारी विषय है। फीचर लिखते समय अत्यंत सतर्क रहने की भी जरूरत है। क्योंकि फीचर लेखन में नीरसता, लंबाई व गहन-गंभीरता का पुट नहीं होना चाहिए। फीचर तो ऐसा होना चाहिए जिससे दिल और दिमाग में अद्‌भुत हलचल हो तथा मन व मस्तिष्क भी प्रसन्न हो जाए। प्रसन्नता की अनुभूति भी ऐसी होनी चाहिए जिससे दूसरों का दुःख व दर्द अपना लगे। फीचर में सारगर्भिता का अत्यंत महत्त्व है। सारगर्भिता के बल पर, फीचर, रोचकता व असर के साथ बात को व्यक्त करने में सक्षम होता है। फीचर हमें मनोरंजन के गहरे एहसास के साथ शिक्षित करता है। विनोद भाव व आनंद की अनुभूति होती है। पर यह आनंद केवल महसूसा जाता है। जब हम किसी अजनबी व्यक्ति की करुण गाथा सुनते हैं तो ऐसा लगता है जैसे उसकी गाथा कहीं न कहीं हमारी भी है और उससे हमारा गहरा तादात्म्य हो जाता है।"[72]

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रूपकों का विषय विस्तृत है और इसके शिल्प और टेकनीक भी अनेक हैं। नाटक, फीचर, रूपांतर, संगीत-रूपक, काव्य-रूपक, झलकियाँ आदि रेडियो-रूपक के मुख्य रूप हैं। इसके श्रोता अपार हैं और इसके लिए विषय का विपुल भण्डार है। रूपक की समय-सीमा सीमित होने के कारण कथानक की गति सरल और सीधी होती है। किसी भी तरह का उलझाव श्रोता पसंद नहीं करता है। इसमें पात्रों की संख्या भी सीमित होती है। रेडियो-रूपक का शीर्षक इतना आकर्षक होता है कि रूपक के विषय से श्रोता पहले ही परिचित हो जाता है और पूरा रूपक सुने बिना रेडियो बंद नहीं करता है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित फीचर का अनुशीलन करने से पूर्व हमें यह समझना आवश्यक है कि आखिर फीचर कहते किसे है ? क्योंकि कुछ श्रोता फीचर और लेख में अंतर महसूस नहीं करते हैं। "फीचर को अच्छी तरह से समझाने के लिए हमें फीचर और लेख में फर्क समझना चाहिए, क्योंकि दोनों का खबरों से कोई संबंध नहीं और दोनों की कामयाबी सुंदर गद्य और शैली पर निर्भर है। किताब पढ़कर, आंकड़े जमा करके लेख लिखे जा सकते हैं, लेकिन फीचर लिखने के लिए अपने आंख, कान, भावों, अनुभूतियों, मनोवेगों और अन्वेषण का सहारा लेना पड़ता है। लेख लंबा, अरुचिकर, भारी भी हो सकता है, लेकिन यह बातें `फीचर` की मौत हैं। `फीचर` को मजेदार, दिलचस्प और दिलपकड़ होना पड़ेगा, यदि लेखक चाहता है कि उसे बहुत से लोग पढ़ें और उन्हें मजा आए। एक मानी में लेख लिखना आसान है और `फीचर` लिखना उससे कठिन काम है। किसी समस्या का अध्ययन कर आप एक लेख तो लिख सकते हैं परंतु `फीचर` लिखने के लिए आपको एक नया और दिलचस्प तरीका अपनाना पड़ेगा। `फीचर` एक प्रकार का गद्य-गीत है। जो नीरस, लंबा और गंभीर नहीं हो सकता। `फीचर` की खास बात यह है कि उसे मनोरंजक और तड़पदार होना चाहिए। जिससे लोगों के दिल हिले और चित्त प्रसन्न हों, या पढ़कर दिल में गम का दरिया बहे। मिसाल के लिए अगर आप देश के फकीरों की समस्या पर लिखना चाहे तो किताबें

पढ़कर और आंकड़े जमा करके लिख सकते हैं, लेकिन यदि आप किसी फकीर के गम और दर्द की कहानी सुनाना चाहते हैं तो आपको उसके पास बैठना पड़ेगा और उसकी कहानी सुननी पड़ेगी और उसके दुख का अनुभव करना पड़ेगा। `फीचर` का महत्त्व इसी बात में है कि वह किसी बात को थोड़े से शब्दों में रोचकता और असर के साथ कहे।

लेख हमें शिक्षा देता है, `फीचर` हमारा मनोरंजन करता है। लेख आवश्यकता से अधिक छोटा तथा पढ़ने में जी उबा देने वाला होने पर भी अच्छा हो सकता है। फीचर मुख्य रूप से विनोद और आनंद के लिए लिखा जा सकता है। लेख जानकारी बढ़ाने वाला होना चाहिए और उसमें दिलचस्प या उससे निकलने वाले नतीजों का समावेश किया जा सकता है। `फीचर` में आपको अपनी मनोवृत्ति और अपनी समझ के मुताबिक किसी विषय का या व्यक्ति का चित्रण करना पड़ता है। `फीचर` लिखने में हास्य और कल्पना का विशेष हाथ रहता है।"[70]

डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय द्वारा लिखित रूपक 'मेघालय : एक परिचय' आकाशवाणी की पूर्वोत्तर सेवा से दिनांक 28–04-2003 को शाम 7-30 बजे प्रसारित किया गया। इस रूपक की अवधि 30 मिनट है और इसे चार स्वरों में प्रस्तुत किया गया है। इस रूपक में पूर्वोत्तर भारत के मेघालय राज्य के विषय में काफी जानकारी दी गई है। इसकी शुरुआत इस प्रकार होती है–

स्वर-एक प्रातःकालीन सूर्य के कोमल प्रकाश में विद्यमान सात रंगों की तरह भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में बसे सातों राज्य अपनी परम्परा तथा संस्कृति में अलग-अलग होते हुए एक दूसरे से गहराई से जुड़े हैं– हृदय से, आत्मीयता से, प्रेम से,। इन्हीं राज्यों में एक राज्य है— मेघालय।

स्वर-दो उत्तर में ब्रह्मपुत्र घाटी तथा दक्षिण में बंगलादेश के बीच बसा—बादलों का घर। सबसे निराला- सबसे अलग- प्रेम और आत्मीयता का प्रदेश।

स्वर-तीन 22,429 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला यह प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए प्रसिद्ध है। यह पूरा प्रदेश पर्वतीय है तथा यहीं से इस प्रदेश की अपनी विशेषता प्रकट होती है।

स्वर-चार कहीं निर्मल जल-प्रपातों की कल-कल धारा से अभिनंदित चीड़ के उन्नत विशाल वृक्ष की मनोहारी शोभा तो कहीं घास के दूर-दूर तक फैले विशाल मैदान। मानो हरीतिमा का विशाल चादर ओढ़ाया गया हो।

(संगीत)

स्वर-एक नक्काशी से जड़े सुन्दर सुकुमार पुष्पों की अनन्त प्रजातियाँ मानो किसी अदृश्य सत्ता द्वारा करीने से टाँके गए बेल-बूटे हों। विधाता ने प्राकृतिक सौन्दर्य का खजाना शायद यहाँ खोल दिया है अथवा प्रकृति-सुन्दरी के श्रृंगार की गठरी छूट पड़ी हो शायद। वही स्वर्गीय सौन्दर्य फैला है यहाँ के कण-कण में, पोर-पोर में।

स्वर-दो प्रशांत हरीतिमा किसी अनजान, अनन्त सत्ता की अभिव्यक्ति करते आनन्द की समाधि में डूबे प्रतीत होते हैं। पूरा वातावरण एक अद्‌भुत साधना-भूमि-सा प्रतीत होता है। अनन्त दूर-दूर तक उनन्त पर्वतों का आक्षितीजीय विस्तार। धन्य है वह जिसे ऐसे परिवेश में रहने का अवसर मिला।

(संगीत)[71]

इस फीचर में मेघालय राज्य की भौगोलिक स्थिति की जानकारी भी लेखक ने दी है—

"**स्वर-तीन** भौगोलिक दृष्टि से मेघालय राज्य को 'मेघालय प्लैटू' के नाम से पुकारते हैं। यहाँ पर्वतों की उत्तुंग श्रेणियाँ नहीं हरीतिमा से आवृत ऊँचे-ऊँचे पठार पाये जाते हैं। समुद्र तल से इनकी ऊँचाई राज्य के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग है। यह समुद्र तल से 1500 मीटर से लेकर 1961 मीटर तक फैला हुआ है।

स्वर-चार प्रदेश की राजधानी शिलांग के पास का 'शिलांग पीक' सर्वाधिक ऊँचा समुद्र तल से 1961 मीटर ऊँचा है। ऊँचाई में इस विभिन्नता के कारण पूरे प्रदेश की जलवायु में भी पर्याप्त अंतर है। निचले क्षेत्र वाले पश्चिमी भाग में जहाँ औसतन 32.4 डिग्री सेल्सियस तापमान रहता है, वहीं पूर्वी क्षेत्र में वर्ष का औसत तापमान 13.2 डिग्री सेल्सियस के आसपास रहता है।"[72]

इसके अतिरिक्त इस फीचर में लेखक ने मेघालय राज्य में रहने वाली जनजातियों और उनकी भाषाओं के विषय में विस्तृत जानकारी दी है—

"**स्वर-तीन** मेघालय की इन जनजातियों की भाषा में पर्याप्त विविधता है। खासी, जयंतिया तथा गारो यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हैं। खासी ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार के मान-ख्मेर भाषा समूह से उत्पन्न मानी जाती है। यह अत्यंत प्राचीन भाषा-रूप है तथा तमाम सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद इसने अपनी पहचान कायम रखी है, यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जयन्तिया भाषा को 'प्नार' भी कहा जाता है।

स्वर-चार वास्तव में यह खासी भाषा की ही एक उपभाषा है तथा किंचित परिवर्तन के साथ बोली जाती है। गारो भाषा सिनो-तिब्बतन भाषा परिवार के बोडो समूह से सम्बंधित मानी जाती है। कीथ, जोवांग डी. मरक, आर. सांगमा इत्यादि विद्वानों ने इस पर परिश्रम पूर्वक कार्य किया है। वैसे इन भाषाओं का व्यापक अध्ययन अभी बाकी है। इन भाषाओं की प्रकृति अयोगात्मक प्रतीत होती है तथा इनकी अपनी कोई लिपि आज नहीं है। रोमन लिपि का प्रयोग ही ये करते हैं।"[73]

रेडियो रूपक की कसौटी पर यह रूपक अत्यंत खरा उतरता है। इस रूपक में जो सामग्री होनी चाहिए वे सभी सामग्री इसमें समाहित किया गया है। बीच-बीच में मेघालय राज्य के लोकगीत और आधुनिक गीतों को शामिल कर इसे अत्यंत रोचक बनाया गया है। मेघालय प्राकृतिक सुंदरता, यहाँ की वेश-भूषा, खान-पान, धर्म, रहन-सहन, कृषि-उत्पादन, पर्यटन-स्थल आदि का पूरा विवरण शामिल करने से लेखक नहीं चूका है। कुल मिलाकर यह रूपक अत्यंत सरल और सहजतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

आकाशवाणी की पूर्वोत्तर सेवा, शिलांग द्वारा दिनांक 28-7-2003 को शाम 7-30 बजे डॉ. श्रुति पाण्डेय का लिखा हुआ एक फीचर प्रसारित किया गया है और इस फीचर का पुनर्प्रसारण भी पूर्वोत्तर सेवा द्वारा कई बार किया जा चुका है। इस रूपक का शीर्षक है- "पूर्वोत्तर भारत में कृषि विकास के लिए सतत प्रयत्नशील-आई.सी.ए.आर।" इस रूपक का प्रारंभ इसकी स्थापना के विषय में बताते हुए किया गया है–

"**स्वर-एक** देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र में कृषि के विकास लिए पर्याप्त अनुसंधान को बढ़ावा देने हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने 9 जनवरी 1975 को शिलांग में उत्तर-पूर्वी परिषद परिसर की स्थापना की।

स्वर-दो इस परिसर में कृषि से सम्बन्धित सभी पक्षों जैसे बागवानी, पशुपालन, कृषि, अभियंत्रण, मत्स्य पालन और कृषि वानिकी इत्यादि पर एक साथ अनुसंधान किया जा रहा है। इस दृष्टि से यह परिषद द्वारा स्थापित एक विशिष्ट केन्द्र है। पूर्वोत्तर के जनजातीय क्षेत्रों की अनुसन्धान और विकास संबंधी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनका समाधान खोजने की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

स्वर-एक इस परिसर की स्थापना के बाद के दिनों में अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह, गोवा और लक्षद्वीप के अनुसंधान केन्द्र भी इसी के प्रशासन के अंतर्गत रखे गए परंतु कुछ समय पश्चात् प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से इन क्षेत्रों को अलग कर दिया गया। साथ ही असम के दीफू केन्द्र को भी इस परिसर से अलग किया गया।

स्वर-दो इस परिसर का मुख्यालय मेघालय के बड़ापानी में स्थित है। इसके कई क्षेत्रीय केन्द्र भी हैं, जो त्रिपुरा राज्य के लैंबूचेरा, नगालैण्ड राज्य के झरनापानी, मिजोरम राज्य के कोलासिब, मणिपुर राज्य के इंफाल और अरूणाचल राज्य के बसार स्थानों पर स्थित हैं।

स्वर-एक इस परिसर के अन्तर्गत छह कृषि विज्ञान केन्द्र भी है जो विभिन्न शाखाओं में ग्राम स्तर के कर्मचारियों और कृषकों को प्रशिक्षित किया जाता है। परिसर के कार्यों के अन्तर्गत नगालैण्ड में एक प्रशिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना भी की गई है। इसका उदेश्य इस संपूर्ण क्षेत्र के राज्य सरकार के अधिकारियों को कृषि संबंधि प्रशिक्षण देना था। इस केन्द्र का स्थानान्तरण बाद में मेघालय के बड़ापानी स्थित परिसर में कर दिया गया।"[74]

इस रूपक की अवधि 30 मिनट की है और इसका वाचन दो कलाकारों ने मिलकर किया है। इस रूपक को वृत्त-चित्र भी कहा जा सकता है। क्योंकि लेखिका ने इसमें साक्ष्य और तथ्य दोनों को कुशलतापूर्वक शामिल किया है। बड़ापानी स्थित इस परिसर की उपलब्धियों के बारे में, उपयोगिता के बारे में, विकास कार्यक्रमों के बारे में सबकुछ शामिल कर रूपक के हर पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विवेचन किया है।

"**स्वर-एक** परिसर के पुस्तकालय में 14,000 से अधिक पुस्तकें और जर्नलों के 8,000 से अधिक अंक उपलब्ध हैं। सम्प्रतिः इस परिसर में सभी संवर्गों के अन्तर्गत 650 से अधिक अधिकारी एवं कर्मचारी कार्यरत हैं जिनमें वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रशासनिक, ऑक्जिलरी और सपोर्टिंग कर्मी सम्मिलित हैं।

स्वर-दो परिसर के प्रमुख कार्यक्रमों में फसल सुधार कार्यक्रम शामिल हैं, जिसके अन्तर्गत तिलहन, दलहन, धान, मक्का आदि फसलों का सुधार कार्यक्रम हैं। इसके अतिरिक्त कृषि-मौसम विज्ञान, भूमि उपयोग की विभिन्न प्रणालियों में पोषण का प्रबंध, पर्वतीय कृषि प्रणाली का अध्ययन, जल संसाधन का विकास, सजावटी पौधों का संवर्धन, फसल प्रणाली का अनुसंधान आदि हैं।"[75]

इस प्रकार इसस रूपक का विषय सूचनात्मक है अतः इसे सूचनात्मक रूपक की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस रूपक के माध्यम से लेखिका ने परिषद के तथ्यों को विस्तारपूर्वक श्रोताओं के समक्ष रखा है। इस रूपक को विषयानुकूल शोध द्वारा अत्यंत उपयोगी बनाया गया है। शिक्षा हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। विकास का कार्य शिक्षा के माध्यम से ही संभव है और शिक्षा सूचना के माध्यम से ही संभव है। वैज्ञानिक प्रगति, आधुनिक खेती, औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार आदि अनेक विषय होते हैं फीचर के। इन विषयों को शोध द्वारा अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत कर उपयोगी बनाया जाता है।

आकाशवाणी द्वारा समय-समय पर व्यक्तिपरक रूपक भी प्रसारित किए जाते हैं। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व, उसकी सफलता हमारे लिए उदाहरण साबित होता है और उस व्यक्तित्व के बारे में श्रोता जानना चाहते हैं। सफल गीतकार, संगीतकार, पार्श्वगायक, वादक कलाकार, अभिनेता-अभिनेत्री, विख्यात लेखक या पत्रकार आदि के जीवन पर आधारित होता है व्यक्तिपरक रूपक।

बुद्ध पूर्णिमा के अवसर पर राजकुमार शर्मा का लिखा हुआ एक व्यक्तिपरक फीचर का प्रसारण आकाशवाणी से दिनांक 16-3-2003 को बुद्ध जयंती के अवसर पर किया गया है। इस रूपक में महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में जानकारी दी गई है।

***(वाद्य संगीत- 30 सेकेण्ड के लिए)**

स्वर-एक आज से करीब ढाई हज़ार वर्ष से अधिक की बात है। गौतम बुद्ध का जन्म शाक्यवंश की राजधानी कपिलवस्तु के लुम्बिनी नामक स्थान में हुआ था। उनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनके पिता का नाम शुद्धोदन था जो शाक्यों के राजा थे तथा कौशल सम्राट के अधीन थे। शाक्य लोग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे तथा गौतम गोत्र के थे। यही कारण है कि सिद्धार्थ को शैशव काल में गौतम के नाम से पुकारा जाता था। इनकी माता का नाम माया देवी था जो इनके जन्म के कुछ ही दिन बाद इस संसार से मुक्ति पा गयी।

स्वर-दो सत माँ प्रजावती ने इनका लालन-पालन किया। ये अपने माता-पिता के इकलौते बेटे थे। क्षत्रिय होने के कारण इनके माता-पिता इन्हें वीर, योद्धा तथा बहादुर बनाना चाहते थे। परंतु सिद्धार्थ जन्म से ही ऐसा संस्कार लेकर

आए थे कि होश संभालते ही विश्व की करुणा से भर गया। अन्होंने समझ लिया कि इस संसार में मूलरूप से दुख, वेदना, पापा, मृत्यु और विनाश का साम्राज्य है। यद्यपि हमें प्रकट रूप से सुख, प्रसन्नता, पुण्य, यौवन और सौन्दर्य की झलक दिखाई पड़ती है, परंतु इस खुशी और आनंद का परिणाम दुख और वेदना है।

(बुद्ध के गीत - 2 मिनट के लिए)

स्वर-एक मनुष्य जन्म लेकर ही मरता है। यौवन का सौंदर्य एक न एक दिन वृद्धावस्था की कुरुपता में परिवर्तित हो जाने वाला है। भ्रमण के समय देखे गए घटनाओं का सिद्धार्थ के हृदय पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उनका हृदय मानव जाति के कष्ट निवारण हेतु अधीर हो उठा। उनकी इस भावना का लक्षमण घर वालों को पहले ही ज्ञात हो गया था, इसलिए शीघ्रता से यशेधरा सी सुन्दरी के साथ उनका विवाह कर दिया गया।

स्वर-दो यद्यपि नश्वर का चिंतन सिद्धार्थ के मस्तिष्क में पहले ही से हाहाकार कर रहा था, परंतु राहुल के जन्म के बाद वे सवेदन का मानसिक बोझ न ढो सके। उन्होंने बड़े ही कातर स्वर में कहा 'आज मेरे बंधन की शृंखला में एक कड़ी और जुड़ गयी। उनके हृदय में हाहाकार सा मच गया। उन्हें माया में उलझाने के लिए शुद्धोदन के द्वारा जो... आकर्षण और वैभव का महल खड़ा किया गया था उन सबमें उन्हें नश्वरता के दर्शन हुए।

(बुद्ध के गीत)

स्वर-एक 30 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गृह त्याग किया। एक रात को अपनी स्त्री

तथा नवजात शिशु को निद्रा अवस्था में छोड़कर अपने सारथी के साथ वन की ओर प्रस्थान किया। इस करुण जनक रात्रि की यात्रा के बाद राजकीय वेशभूषा उतारकर संन्यास धारण किया और रोते हुए सारथी को अपने राजसी वस्त्रों को देकर कपिलवस्तु लौटा दिया। सबके लिए उनका यही संदेश था कि वे सिद्धि लाभ करके लौटेंगे।

स्वर-दो सारथी के विदा करने के बाद स्वयं एक साधु के वेष में नितांत अकेले गृहहीन भिखारी बनकर चल दिए। सांसारिक यश, प्रिय स्त्री तथा नवजात शिशु का त्याग सचमुच एक महान त्याग था। स्व. कवि दिनकर जी ने बड़े ही मार्मिक ढंग से इन बातों को अपनी कविता के निम्नलिखित छः पंक्तियों द्वारा व्यक्त की है।'

(वाद्य संगीत)

स्वर-एक सिमट विश्व वेदना निखिल बज उठी
करुण अंतर में,
देव हुँकरित हुआ कठिन युग धर्म तुम्हारे
स्वर में।
काँटों पर कलियाँ, गैरिक पर किया मुकुट
का त्याग,
किस सुलग्न में जगा प्रभाल ! यौवन का
तीव्र विराग,
चले ममता का बंधन तोड़,
विश्व महामुक्ति की ओर।'"[76]

इस फीचर में एक स्थान पर 'निम्नलिखित' शब्द का प्रयोग लेखक ने किया है, जो आकाशवाणी में प्रयोग होने वाले आलेख के लिए वर्जित शब्द है। आकाशवाणी का प्रस्तुतकर्ता इस शब्द के स्थान पर 'इन' शब्द का प्रयोग बाद में अभ्यास करते समय किया है। प्रायः लेखक इस तरह की भूल कर बैठता है, क्योंकि उसे आदत होती है मुद्रण लेखन की। मुद्रण के लिए निम्नलिखित , उपरोक्त, नीचे आदि शब्दों का प्रयोग लेखक करते हैं। इस फीचर में वाक्य काफी लम्बे-लम्बे हैं। वाक्य छोटे होने पर वाचक आसानी से वाचन कर सकता है। श्रोता समझ भी सकता है।

प्रो. जगमल सिंह का लिखा हुआ रूपक आकाशवाणी से प्रसारित हुआ है। यह एक विशेष रूपक है। क्योंकि पूर्वोत्तर राज्य के धरोहर कार्यक्रमों में इसे प्रस्तुतकर्ता ने शामिल किया है। इस रूपका का प्रसारण सन् 2004 में हुआ है। लेकिन निश्चित तिथि का पता नहीं चलता है। रूपक का शीर्षक है- 'मीतई विवाह की प्रथाएँ'

"(शहनाई और मणिपुरी संगीत के बाद एक पुरुष एवं नारी स्वर का संवाद)

पुरुष अतिया गुरु सिदबा अर्थात् आकाश का स्वामी और उनकी आर्धांगिनी लैमारेन आकाश में विराजमान थे।

स्त्री आकाश के नीचे जल-ही-जल था।

पुरुष जल का अपार विस्तार।

स्त्री गुरु सिदबा के मन में सृष्टि का विचार आया।

पुरुष गुरु ने नौ लाइपुम निङ थौ या देवताओं और सात लाइनुरा या देवियों को सृष्टि की आज्ञा दी।

स्त्री इन देवी-देवताओं ने जल में मिट्टी फेंकी। जल में पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने इसको अपने पैरों तले रौंदा जिससे मैदान व पर्वत बने।

पुरुष गुरू ने कोदिन को प्राणी बनाने की आज्ञा दी।

स्त्री कोदिन ने मछली, मेंढ़क, बन्दर और मनुष्य बनाया।

पुरुष गुरू ने उनमें प्राण डाले।

स्त्री गुरू ने सात देवियों का सात देवताओं से विवाह किया और पृथ्वी से स्वर्ग में लौटने से पहले अपनी पुत्री मीनू लैमा का विवाह किया।

पुरूष मीतई या मणिपुरी विवाह परम्परा सृष्टि कथा से जुड़ी हुई है । सात देवी-देवताओं की संतान सात वंश या गोत्र बन गए जिन्हें मणिपुरी भाषा में सलाई या येक कहते हैं।

स्त्री एक ही गोत्र में विवाह वर्जित है इसलिए एक सलाई का लड़का दूसरी सलाई की कन्या से विवाह करता है।

पुरूष सृष्टि के उषाकाल में मीतई विवाह का प्रचलन हुआ।"[77]

इस फीचर की विशेषता यह दिखाई देती है कि इसमें प्रयुक्त वाक्य छोटे-छोटे और सरल भाषा में हैं। इस तरह के वाक्यों को समझने में श्रोताओं को आसानी होती है। साथही वाचक भी इसे आसानी से बोल सकता है। याद कर उन्हें अभिनीत कर सकता है। यह फीचर एक घण्टे में समाप्त होने वाला है। इसलिए इसे दो भागों में प्रसारित किया गया है। मणिपुर अपनी सांस्कृतिक वैभव के लिए विख्यात है। वहीं की रीति रीवाज, खान-पान,

रहन-सहन आदि का उल्लेख इस फीचर में लेखक ने विस्तारपूर्वक किया है। पुरूष और स्त्री स्वर के अतिरिक्त अन्य कई स्वर हैं- जैसे, थोइबी, इबोहल और रामधन। यह फीचर नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। बीच-बीच में संगीत, धुन, वाद्य संगीत आदि का समावेष लेखक ने स्वयं किया है और कुछ प्रस्तुतकर्ता को करना पड़ा है।

हिन्दी भाषा में आकाशवाणी विभिन्न केन्द्रों द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण रूपकों का सफल प्रसारण हुआ है। साथ ही अनेक रूपक अखिल भारतीय कार्यक्रम में भी रूपक प्रसारित हुए हैं। हिंदी के रूपक लिखने वाले अनेक लेखक आकाशवाणी में ही कार्यरत थे। इसलिए उन्हें रूपक लिखने में कोई असुविधा नहीं होती थी। जैसा वे चाहते थे वैसा लिख लेते थे। उन्हें समय-सीमा का ध्यान रहता था। विशेष अवसरों पर प्रसारित होने वाले रूपक अधिकांशतः आकाशवाणी के स्टाफ लेखकों द्वारा ही लिखा गया है। जैसे हरिश्चन्द्र खन्ना, रमानाथ अवस्थी, गोपालदास, शिवसागर मिश्र, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, प्रशांत पाण्डेय, नर्मदेश्वर उपाध्याय, डॉ. मधुकर गंगाधर, चिरंजीत, डॉ. चतुर्भुज इत्यादि। परंतु कई बाह्य लेखकों ने भी आकाशवाणी का लिए रूपक लिखकर ख्याति अर्जित की है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रूपकों में ज्यादातर व्यक्तियों के बारे ही लिखे गए हैं। स्वतंत्र्योत्तर रूपक अधिकांशतः वैसे व्यक्तियों पर हैं जो स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े हुए थे। पूर्वोत्तर भारत में स्थित आकाशवाणी के केन्द्रों से यहाँ जो स्थानीय स्वतंत्रता सेनानी हैं उनके बारे में रूपक प्रसारित किए गए हैं। आकाशवाणी से लगभग हर साल ही पर्व-त्योहार जैसे, दीवाली, दशहरा, होली, क्रीसमस, ईद, मोहर्रम आदि अवसरों पर फीचर प्रसारित किए जाते हैं। इन्हें पौराणिक फीचर कहा जा सकता है। महापुरुषों की जयंतिया जैसे, गाँधी जयंती, बुद्ध जयंती, नानक जयंती, विवेकानंद जयंती महावीर जयंती आदि के अवसरों पर भी रूपकों का प्रसारण होता रहता है। इनके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण दिवसों पर भी रूपकों का प्रसारण होता है,

जैसे- नववर्ष, राष्ट्रीय युवा दिवस, मेघालय दिवस, गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, भारतीय पर्यटन दिवस, शहीद दिवस, सर्वोदय दिवस, राष्ट्रीय सुरक्षा दिवस, अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस, बाल दिवस, पर्यावरण दिवस, मई दिवस, हिंदी दिवस, संस्कृत दिवस, साक्षरता दिवस, विश्व एड्स दिवस आदि अवसरों पर रूपकों का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया जाता है। इसीतरह अखिल भारतीय हस्तशिल्प सप्ताह, रेलवे सप्ताह, हिंदी सप्ताह, अस्पृश्यता सप्ताह आदि अवसरों पर भी रूपकों का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया जाता है।

"बौद्धों तथा जैन धर्मावलम्बियों की तीर्थस्थली राजगृह या राजगीर हिन्दुओं की भी पुण्यभूमि रही है। महाभारत काल की अनेक घटनायें यहां की धरती पर घटित हुई, जिसमें जरासंध और भीम के बीच का मल्ल युद्ध प्रसिद्ध है। बौद्ध कालीन मगध सम्राट बिम्बिसार ने इस नगरी को अपनी राजधानी बनाया था। कृष्ण, भगवान बुद्ध और जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के चरण इस धरती पर पड़े थे। राजगीर की भूमि इनकी यादें अपने अंक में समेटे हुए है। कुछ वर्ष पूर्व आकाशवाणी द्वारा इस पुण्य भूमि पर एक रूपक प्रसारित किया था। इसके लेखक और प्रस्तुतकर्ता थे प्रसिद्ध नाटककार और आकाशवाणी के पूर्व निदेशक डॉ. चतुर्भुज। यह रूपक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है जिसे एक साधु और एक पर्यटक के मध्य संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। वास्तविकता को दर्शाने के लिए बौद्ध भिक्षुओं के स्वर और स्थल से संबद्ध कुछ अन्य ध्वनि-प्रभावों का उपयोग किया गया है।

(रूपक : राजगीर)

(संगीत-पौज, मोटर चलने की आवाज। हार्न। मोटर रुकती है।)

यात्री : जरा सुनिये।

साधु : कहिये।

यात्री : क्या यही राजगीर है ?

साधु : राजगीर पहुँच कर भी आप पूछते हैं कि क्या यही रागीर है ? आश्चर्य है। सामने देखिये—राजगीर के पर्वत अपने मस्तक उठाये आपके स्वागत में खड़े हैं।

यात्री : आज से कई वर्ष पूर्व मैं यहाँ आया था। तबसे आज बहुत परिवर्तन हो गया है, उस समय यह विरान था—न इतनी दूकानें थीं, न इतने भवन, न पर्यटकों की व्यस्तता। आज तो राजगीर मानो घोर निद्रा से जाग उठा है। चारों ओर प्रगति के लक्षण नजर आ रहें हैं।— हाँ, क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ ?

साधु : आप मेरे वस्त्र से नहीं पहचानते ? मैं तो एक साधु हूँ, राजगीर की प्राकृतिक छवि का एक उपासक, कुण्ड में स्नान करता हूँ और शेष समय भ्रमण में बिताता हूँ।

यात्री : आप अपना अधिकांश समय राजगीर में ही बिताते हैं क्या ?

साधु : राजगीर की पुण्य भूमि में प्राचीन काल से भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के ध्यान को भी अपनी ओर खींचा था। फिर मैं कैसे इस से दूर रहता ?

यात्री : क्या ऐसा है राजगीर का आकर्षण ?

साधु : आप यहाँ कुछ रोज रह जायें तो मेरे मन वचन की सत्यता आजमा लें। शान्त रजनी में जब सारा राजगीर घोर निद्रा में लीन रहता है तो इन पर्वतों की ओर देखिये। दुर्दमनीय प्रहरी की तरह मानो यो सुरक्षा में खड़े हैं। जाड़े के दिनों में विचित्र बहार रहती है। देश-विदेश के यात्री, अपनी विभिन्न पोशाकों में, विभिन्न भाषाओं में बातें करते नजर आते हैं। कुण्ड के गर्म जल में स्नान करने में अपूर्व आनन्द का बोध होता है। वर्षाकाल में राजगीर के गहरे खेत जल से भरे रहते हैं। बच्चे उनमें खेलते रहते हैं। वर्षा का वेग पर्वतों से

टकरा कर जल बरसाता है और हरे भरे वृक्ष वायु के स्पर्श से स्पन्दित होकर जल में नाचते नजर आते हैं। आप ही बतायें, कौन इस प्राकृतिक सुषमा का उपभोग करना नहीं चाहेगा ?

यात्री : क्या आप इस स्थान के बारे में कुछ पुरानी बातें बतायेंगे ?

साधु : क्यों नहीं ? पर्वतों की ओर देखते रहने से ही जान पड़ता है कि ये अपनी तह में प्राचीन गौरव को छुपाये हैं। इसका पुरानी नाम राजगीर नहीं है। यह तो आज का नाम है। समय के अनुसार उसके नाम भी बदलते गये। इसके अनेक नाम रहे हैं—वसुमती, बार्हद्रथपुर, गिरिव्रज, कुशाग्रपुर, राजगृह और अन्त में राजगीर। इसने वैभव का चरम उत्कर्ष देखा, साम्राज्य का उत्थान और पतन देखा, राजाओं को अपने पुत्रों के हाथों मरते देखा, सन्तों के मन्त्र सुनें। अन्त में बनैले पशुओं का गर्जन भी सुना।"[78]

इस रूपक में साधु और यात्री, दो पात्रों के माध्यम से राजगीर के विषय में काफी जानकारी दी गई है। इन पात्रों के अलावा भी अन्य पात्र हैं जो नाटकीय ढंग से इस रूपक को आगे बढ़ाने में सहायता करते हैं, जैसे- जरासंध, कृष्ण, भीम, अजातशत्रु, देवदत्त और बुद्ध। इस रूपक में मोटर चलने की आवाज, गाड़ी के हार्न की आवाज, चिड़ियों की कलरव, मल्लयुद्ध की ध्वनि, बुद्धं शरणं गच्छामि (समवेत स्वर), कल-कल करती धारा, मेला का शोर, सामूहिक लोक गीत, पूजा गीत, उद्‌घोषणा संगीत, दृश्य परिवर्तन संगीत आदि ध्वनि संयोजनों का प्रयोग किया गया है। इस रूपक के बीच में फ्लैश बैक का प्रयोग भी हुआ है, जो रूपक की रोचकता को बढ़ाता हैं। और श्रोता इस तरह के रूपकों को सुनने में काफी रूचि लेते है यही कीरण है कि "दिन-प्रतिदिन समाचार-पत्रों, सूचना विभागों तथा रेडियो और दूरदर्शन केन्द्रों में अच्छे फीचर लेखकों की निरंतर बढ़ती हुई माँग फीचर की महत्ता और महिमा को रेखांकित करती है।"[79]

इसी प्रकार आकाशवाणी की पूर्वोत्तर सेवा से स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रो. डी. पी. जैन का लिखा हुआ एक संगीत रूपक का प्रसारण किया गया है। इस रूपक का शीर्षक है- 'आजादी और हमारा दायित्व।'

(वन्दे मातरम् की धुन- 30 सेकण्ड)

स्वर-एक स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है - यह कथन कितना अच्छा, कितना उन्मादक और आनंददायक है । स्वतंत्रता प्रत्येक प्राणी को प्रिय होती है । चाहे वह मनुष्य हो या कोई पशु-पक्षी, जीवजंतु । वस्तुतः स्वाधीनता में सुख है । तभी तो तुलसी दास जी ने लिखा है - पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं । इसी तरह महर्षि दयानंद का कथन है कि विदेशी राज्य चाहे कितना अच्छा हो, स्वदेश के लिए हानिकारक होता है ।

स्वर-दो इसीलिए अँग्रेज़ों के शासन से मुक्त होने के लिए, स्वतंत्रता पाने केलिए भारतवासी छटपटा रहे थे । लगभग दो सौ वर्षों से अँग्रेज़ों ने भारत को अपना गुलाम बना रखा था । इस गुलामी से छुटकारा पाने के लिए लाखों लोगों ने अपने प्राण न्योछावर किए । जेलों में वर्षों कष्ट झेले । काला पानी की सजा भुगती ।

देशभक्ति गीत- ऐ मेरे वतन के लोगों............

गायिका-लता मंगेश्कर

स्वर-एक अंततः 15 अगस्त 1947 को उन्हें सफलता मिली । आधी रात के समय पंडित जवाहर लाल नेहरु ने जब स्वतंत्रता प्राप्ति की घोषणा की तब सारे देश में खुशी की एक लहर दौड़ गई । सरकारी भवनों पर राष्ट्रीय झंडा

फहराया गया । इस अवसर पर देश भर में उत्सव मनाए गए । राष्ट्रीय गीत गाए गए । राष्ट्रीय धुन बजाई गई । भारत माता की जय, स्वतंत्रता की जय आदि नारों से आकाश गूँज उठा । दीपों आदि से नगरों को दुल्हन की तरह सजाया गया । तब से प्रतिवर्ष 15 अगस्त का दिन एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में धूमधाम से मनाया जाता है ।

गीत- ऐ वतन तेरे लिए-

फिल्म- कर्मा,

गायक- कविता कृष्णमूर्ति, मो. अजीज एवं साथी)

स्वर-दो दिल्ली के लाल क़िला पर प्रधानमंत्री झंडा फहराते हैं । इक्कीस तोपों की सलामी दी जाती हैं । एक बड़ा समारोह होता है । लाल क़िले के प्राचीर से प्रधानमंत्री देश को संबोधित करते हैं । देश के अन्य नगरों में भी इसी समय यह पर्व उत्साहपूर्वक मनाया जाता है । नगरों और गाँवों में प्रभातफेरियाँ निकाली जाती हैं । तरह तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। यह हमारा राष्ट्रीय पर्व है । ऐसे उत्सव देश को उन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं । भारत देश हमारे लिए स्वर्ग के समान सुंदर है । इसने हमें जन्म दिया । इसकी गोद में पलकर हम बड़े हुए हैं । इसके अन्न जल से हमारा पालन पोषण हुआ है ।

गीत- जहाँ डाल-डाल पर,

फिल्म- सिकन्दर-ए-आजम, गायक- मो. रफी एवं साथी

स्वर-एक हमारा प्यारा भारत उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक

और पूर्व में मणिपुर से लेकर पश्चिम में गुजरात-राजस्थान तक फैला हुआ है। उत्तर में हिमालय पर्वत भारतमाता के सिर पर हिम मुकुट के समान सुशोभित है तथा दक्षिण में हिंद महासागर इसके चरणों को निरंतर धोता है। हमारा प्यारा भारत संसार के बड़े राष्ट्रों में से एक है । भारत ही संसार का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक राष्ट्र है । प्राकृतिक सुंदरता की दृष्टि से भारत एक अद्भुत देश है ।

गीत- मेरे देश के धरती सोना उगले,

फिल्म- उपकार, गायक- मो. रफी और साथी

स्वर-दो यहाँ हिमालय का पर्वतीय प्रदेश है, गंगा -यमुना का समतल मैदान है, पर्वत एवं समतल मिश्रित दक्षिण का पठार है, राजस्थान का रेगिस्तान है । इस प्रकार विभिन्न ढंग के भूमि भाग यहाँ विद्यमान है और विभिन्न प्रकार का वायुमंडल यहाँ पाया जाता है । यही एक देश है जहाँ समय समय पर छः ऋतुएँ आती हैं और अपनी अपनी विशेषताओं से इस देश को अनुप्राणित करती है । भारत के पर्वत, निर्झर, नदियाँ, वन, उपवन, हरे भरे मैदान, रेगिस्तान, समुद्र तट -इस देश की विविध प्रकार की शोभा के अंग हैं . धरती का स्वर्ग एक ओर कश्मीर में दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर केरल में। संसार की सबसे ऊँची पर्वत चोटी माउंट एवरेस्ट भारत में है, जो संसार के सबसे ऊँचे पर्वत हिमालय का एक अंग है । यहाँ अनेक सरिताएँ हैं, जिनमें सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब, गंगा, यमुना, कावेरी, कृष्णा, नर्मदा आदि प्रसिद्ध हैं ।

(गीत- कदम कदम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाये जा)

स्वर-एक भारत एक अत्यंत प्राचीन देश है । यहाँ अनेक महापुरुष हो चुके हैं, जिन्होंने मानव को संस्कृति का पाठ पढ़ाया । यहाँ ऋषि हुए, जिन्होंने वेदों का गान किया । राम हुए, जिन्होंने न्याय पूर्वक शासन का आदर्श स्थापित किया । कृष्ण हुए, जिन्होंने गीता का गान करके कर्म का पाठ पढ़ाया । यहाँ महावीर और बुद्ध हुए, जिन्होंने अहिंसा की शिक्षा दी । यहाँ बड़े-बड़े प्रतापी सम्राट हो चुके हैं, जिनमें विक्रमादित्य, चंद्रगुप्त मौर्य, अशोक, अकबर आदि की प्रशंसा इतिहास ने की है ।

स्वर-दो आधुनिक काल में ग़रीबों और पराधीनों का सहारा महात्मा गांधी, विश्व मानवता के प्रचारक रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जवाहर लाल नेहरु इसी देश में जनमे थे । भारत में विभिन्न राज्य हैं । अनेक नगर और गाँव हैं । अनेक जातियों के लोग हैं । रहन सहन, वेशभूषा और भाषा में भिन्नता होते हुए भी इस देश के निवासियों में एक प्रकार की समान संस्कृति मौजूद है । इसी कारण भारत राष्ट्र है । यहाँ की विविधता में एकता इसका भूषण है । भारत की आकांक्षा है कि विश्व में मानव प्रेम से रहें, सभी देशों की दरिद्रता दूर हो और मानवता का कल्याण हो ।

गीत- अपनी आजादी को हम,

फिल्म- लीडर, गायक- मो. रफी एवं साथी)

स्वर-एक यह निर्विवाद सत्य है कि जन्मभूमि के समक्ष स्वर्ग भी तुच्छ है । जननी हमें जन्म देती है तो जन्मभूमि की रज में लोट लोट कर हम बड़े होते है । उसका हम जल पीते हैं, अन्न खाते हैं और उसी की वायु हमारे प्राणों में जीवन का संचार करती है । अतः मातृभूमि हमारे जीवन का आधार होती है ।

अपने देश से प्रेम करना मनुष्य का एक नैसर्गिक गुण है । विवंकशील मानव की तो बात ही क्या पशु पक्षी भी इस गुण से रहित नहीं हैं । विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि देश-मक्तों ने अपने देश के इतिहास को नई दिशा दी है, उन्होंने अपने खून से इसे सींचा है । हमारे अपने देश का इतिहास भी ऐसे अलिदानियों से भरा पड़ा है जिन्होंने इसके लिए अपना सबकुछ अर्पण कर दिया ।

स्वर-दो महाराणा प्रताप, शिवाजी, राजा छत्रसाल, रानी लक्ष्मीबाई ऐसे ही वीर थे जिन्होंने स्वदेश गौरव हेतु अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया । कवियों की वाणी उनके शौर्य एवं देश प्रेम का गुणगान करती है । वे आगामी पीढ़ियों के लिए आदर्श स्तम्भ होते हैं । इतिहास उन्हें श्रद्धा से सिर झुकाता है । यह महिमा है स्वदेश प्रेम की जो अपनी जन्मभूमि के लिए फाँसी के फंदे को सहर्ष चूम जाते हैं ।

स्वर-एक आइये हम सब मिलकर इस पावन राष्ट्रीय पर्व पर यह संकल्प करें कि हम अपने देश की सेवा तन मन और धन से करेंगे । देश की एकता को बनाए रखने में अपना भरपूर सहयोग देंगे । सौहार्द तथा सामन्जस्य का वातावरण विलुप्त नहीं होने देंगे । देश में सामाजिक समरसता का संचार करेंगे । स्वतंत्रता दिवस के इस पुनित अवसर पर हम सभी संकल्प करें कि अपनी विकास योजनाओं को बनाने और क्रियान्वित करने में हम जनता की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करके उन्हें स्वालम्बी, सुखी एवं समृद्ध बनाएंगे ।

गीत- ताकत वतन की हम से हैं,

फिल्म- प्रेम पुजारी,

गायक- मो. रफी, मन्ना डे एवं साथी-

फेड आऊट"[80]

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रसारित यह रूपक अत्यंत सरल ढंग से लिखा गया एक संगीत रूपक है। दो स्वरों में प्रस्तुत इस रूपक में आजादी की कहानी के साथ-साथ लेखक ने आजाद भारत के नागरिकों को उनके दायित्वों के बारे में भी बताया है। लेखक ने उन गीतों को भी दर्शाया है जो इस फीचर में शामिल किए जा सकते हैं। इससे प्रस्तुतकर्ता का परिश्रम कम हो गया है। वैसे आकाशवाणी के प्रस्तुतकर्ता अपनी सुविधानुसार गीतों का चयन करते हैं। कभी-कभी लेखक के द्वारा चयन किये गये गीत उपलब्ध न होने की दशा में प्रस्तुतकर्ता उन्हीं गीतों का प्रयोग करते हैं जो उनके केन्द्र की लाइब्रेरी में उपलब्ध होता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रेडियो-रूपक के लिए सजीवता, सरसता, सरलता, यथार्थता, गतिशीलता और समुचित परिवेश की सृष्टि अनिवार्य है। यद्यपि फीचर अथवा रूपक आकाशवाणी की अपनी विधा है जिसमें प्रस्तुति पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है, फिर भी अगर देखा जाए तो इसमें हिंदी साहित्य के कई विधाओं से शक्ति ग्रहण की है। एक ओर जहाँ इस विधा में नाटकीयता का प्रभाव दिखाई पड़ता है वहीं ललित निबंध की शैली भी इस विधा के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है। वास्तव में लालित्यपूर्ण ढंग से विषय को प्रस्तुत करना ही इसका उद्देश्य होता है। हिंदी साहित्य के गद्य का विविध वाधाओं में जो नाटकीयता दिखाई पड़ती है उन पर इस विधा का दबाव देखा जा सकता है। ऐसा नहीं है कि सभी रचनाकार इससे प्रेरित हों परंतु आकाशवाणी से जुड़े रचनाकारों पर यह प्रभाव एकदम साफ है। ऐसे रचनाकारों में श्री विष्णु प्रभाकर, चिरंजीत, सिद्धनाथ कुमार, हंसकुमार तिवारी, बच्चन सिंह आदि रचनाकारों के नाम लिए जा सकते हैं।

4.(छ). भेंटवार्ता (साक्षात्कार)

भेंटवार्ता अथवा साक्षात्कार हिंदी साहित्य की नई विधाओं में से एक विधा है जिसका प्रचलन विदेशी प्रभाव एवं आधुनिक युग की आवश्यकताओं के कारण लगातार बढ़ता जा रहा है। आज साहित्य के विविध गंभीर विषयों पर भेंटवार्ताएँ विभिन्न पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित की जाती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि साहित्य में जबसे इस विधा का प्रचलन बढ़ा, लगभग तभी से आकाशवाणी द्वारा भी भेंटवार्ताओं का प्रसारण प्रारंभ हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्य ने जिस विधा का अनुसंधान किया उसकी प्रायोगिक परिणति आकाशवाणी के माध्यम से संभव हुई। सामान्यतः साक्षात्कार किसी वरिष्ठ स्वीकृत एवं समय-सिद्ध रचनाकार, कलाकार अथवा महान पथ-प्रदर्शक, दिशा-निर्देशकों का लिया जाता है। इस दृष्टि से अगर देखें तो इस विधा के मूल में सामान्य-जन को दिशा निर्देश देने का भाव सन्निहित है और यहीं यह विधा आकाशवाणी से जुड़ती है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि साक्षात्कार का लिखित-रूप साहित्य की विधा है; जबकि उसी का ध्वन्यांकित रूप आकाशवाणी के प्रसारण की विधा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी भाषा और साहित्य काफ़ी समृद्ध हुआ है तथा उसमें अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर लेखन में विविधता आई और आकाशवाणी के कार्यक्रमों के प्रसारण पर भी इसका प्रभाव पड़ा। आज के युग में घटनाएँ इतनी तेज़ी से घटती हैं कि उनसे तालमेल बनाए रखना कठिन हो जाता है और आकाशवाणी इसी तालमेल को बनाए रखने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का निर्माण करती है। आकाशवाणी के कार्यक्रमों को निरंतर प्रासंगिक बनाए रखने के लिए विभिन्न विधाओं का सहारा लेना पड़ता है। इन्हीं विधाओं में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा है- भेंटवार्ता। इस विधा के अभाव में आकाशवाणी का प्रसारण अधूरा माना जा सकता है। भेंटवार्ता को प्रभावशाली ढंग से प्रसारित करने के लिए भेंटकर्ता का प्रश्न-कला में निपुण होना अत्यंत आवश्यक होता है। यदि भेंटकर्ता

को प्रश्न तैयार करना, प्रश्न पूछना और उपयुक्त उत्तर प्राप्त करने का तरीक़ा नहीं आता है तो उसे एक सफल भेंटकर्ता नहीं माना जाता है और आकाशवाणी द्वारा उन्हें अनुबंधित नहीं किया जाता है। भेंटवार्ता में प्रश्न की रचना, उसका आकार, उसकी संप्रेषणीयता और उसके उद्देश्य पर काफ़ी ध्यान दिया जाता है। यदि प्रश्न वज़नदार नहीं हैं तो उत्तरदाता आसानी से उपेक्षा कर सकता है। अतः भेंटकर्ता को उत्तरदाता के विषय में काफ़ी जानकारी रखनी होती है। भेंटवार्ता या साक्षात्कार वह कला है जिसमें भेंटकर्ता अपने कौशल का भरपूर प्रयोग करता है।

आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों द्वारा देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, पत्रकारों, राजनेताओं, फ़िल्मी-कलाकारों आदि के साक्षात्कार समय-समय पर प्रसारित किए जाते हैं। इस तरह के साक्षात्कार केवल श्रोताओं का मनोरंजन ही नहीं करते, अपितु इन कार्यक्रमों के द्वारा उनके जीवन में घटी घटनाओं या तथ्यों का उद्‌घाटन हुआ जो इनके जीवनी-शक्ति के मूल में कार्य करते रहे। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित भेंटवार्ता न तो जीवनी होती है और न इतिहास। आकाशवाणी द्वारा पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र, पं. नरेन्द्र शर्मा, जनार्दन भट्‌ट, डॉ. रामकुमार वर्मा, अज्ञेय, अमृता प्रीतम, बाबा आम्टे, विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, विभूति भूषण मुखोपाध्याय, उपेन्द्रनाथ अश्क, अनिल विश्वास, प्रो. यशपाल, राजेन्द्र यादव, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, सतीश भाटिया आदि सुविख्यात लोगों का साक्षात्कार प्रसारित किया जा चुका है।

आधुनिक हिंदी, भारत और विश्व-साहित्य को अपनी महान् काव्य-कृतियों से महिमा मंडित करने वाली कवयित्री महादेवी वर्मा से उनके इलाहाबाद के अशोक नगर स्थित निवास स्थान पर दिनांक 18 जुलाई, 1983 को श्री गोपालदास, डॉ. रामजी पाण्डेय और श्री नर्वदेश्वर उपाध्याय द्वारा लिया गया यह साक्षात्कार श्रीमती वर्मा के जीवन के कई पक्षों को उद्‌घाटित करता है—

"ठण्डे पानी से नहलाती

ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती

इनका भाग हमें दे जाती

फिर भी कभी नहीं बोले हैं

ठाकुर जी कितने भोले हैं।

तो यह हमारी पहली तुकबन्दी है। एक कविता हो गई।

प्र. यह किस उम्र में लिखी गई होगी ?

उ. यह छह बरस की उम्र में, उससे ज्यादा नहीं थी।

प्र. और पहली कविता यह खड़ी बोली में ही लिखी ?

उ. हाँ। बात यह है कि पंडित जी आए तब यह मालूम हुआ कि कविता होगी ब्रज भाषा में। उसके पहले तो जैसे बोलते थे ऐसी ही करते थे। फिर सोचा कि अब कुछ और लिखें। तो लिखते तो थे नहीं बस यह तुक मिलाते थे। लिखना आता नहीं था उस समय तक। तो हमने रहा अपनी "बया" पर भी लिखें। तो दूसरी तुकबन्दी-

बया हमारी चिड़िया रानी

तिनके चुन-चुन महल बनाती

और उल्टा पेड़ों पर लटकाती

खेतों से दाना ले आती,

नदियों से लाती है पानी।

अच्छा हो गया। फिर और आगे कहना चाहिए—

तुझको दूर न जाने देंगे, दाने से आंगन भर देंगे,

और- अपने हौज में भर देंगे हम मीठा-मीठा पानी।

इतना हो गया। फिर भी अभी पूरा नहीं हुआ। रामा को सुनाया- कैसी कविता है ?

कविता भी जानते नहीं थे। तो रामा ने कहा, हाँ, हाँ ठीक है। फिर वह अण्डे देती है, फिर सेती है, फिर बच्चे होते हैं। उड़ जाते हैं। यह ज्ञान तब हुआ। तो फिर हमने लिखा कि—

तू अण्डे सेएगी (हंसी)
निकलेंगे नन्हें बच्चे तब,
हम सब आयेंगे बारी-बारी से
करने को तेरी निगरानी।

उसके बाद अन्त में जोड़ा कि—

फिर जब उनके पर निकलेंगे,
यह तो रामा ने बता दिया।
जब उनके पर निकलेंगे।
उड़ जाएंगे, क्या बनेंगे।
हम तब तेरे पास रहेंगे।
तू रोना मत चिड़िया रानी। (हंसते हुए)

प्र. कविता पूरी हो गई ?

उ. कविता पूरी हुई। अब तो हमारी माँ ने देखा यह तो मामला कुछ न कुछ गड़बड़ करती है। तो बाबूजी से कहा। तो बाबू जी से उन्होंने कहा कि- पंडित कोई रख दीजिए। अच्छा, तो इनको हिंदी पढ़ा दें। और कुछ, क्योंकि यह तो बहुत कुछ जोड़ती रहती है। और वह सवेरे ही उठ के—

जागिए कृपा निधान पंछी बन बोले।

प्र. मूल प्रेरणा वहीं से मिली ?

उ. और लोरी भी, शाम को सोते वक्त भगवान को सुलाने में गाती थी और उठाने में गाती

थी।

प्र. लोरी याद है आपको उनकी ?

उ. उनकी, वह तो भगवान को सुलाती-जगाती थीं। हम लोगों को तो नहीं सुलाती थीं। लेकिन पूरी तरह कुछ याद नहीं है। तो अब पंडितजी आए। पंडितजी आए तो उन्होंने घुटाई शुरू की। अलंकार, पिंगल, यह मात्रिक है, यह वर्णिक है।" तब हम आठ-नौ बरस के हो गए थे। वह हमको बताने लगे- "कविता ऐसी होगी, इस भाषा में होगी, उस भाषा में होगी। बड़ी उलझन लगती थी। लेकिन फिर वह हमारे काम आया बहुत। उन्होंने जो हमको रटा दिया। उससे हमारे कोनों में बड़ी जल्दी खटकता है अगर कुछ ऐसा हो, यति भंग हो, कुछ मात्रा की कमी हो, तो तुरंत हमारे कान में खटकता है। तो पंडित जी एक समस्या दे जाते थे। तब हम आठ साल के या नौ साल के हो गए। पंडित जी ने एक समस्या जो दी कि कठिन है वह तो "फूलयो"

बांधे मयूखन की डोरिन से।
किसलय के हिंडोरन में नित झूलयो।

फूल से कह रहे हैं। फूल पर यह हमारी पहली कविता है। तो उन्होंने हमको बता दिया- "किरणों को मयूख कहते हैं। हाँ, ठीक है अब दूसरों से हमारा ज्ञान कुछ अधिक हो ही गया था, पढ़ाने से उनके। वह भी कोई उपाध्याय थे। क्या उनका रामचरित कुछ ऐसा ही नाम था।

जब हम 78 बरस के हैं तो सौ बरस के हो गए होंगे। तो हमने लिखा :

बांधे मयूख के डोरिन से,
किसलय के हिंडोरन में नित झूलयो।
शीतल मंद समीर तुम्हें
दुलराए, अंक लगाए कबूलयो।

रीझियों भोंरन के गयन पे,

तितली के नरतन पर बन भूलयो।

फूल तुम्हें तब ही कहें जब

कांटन में धंस के हंस फूलयो।

प्र. वाह-वाह। चुनौती यहाँ भी है। चुनौती का श्रीगणेश हो गया।

उ. तो यानी हमारे पंडितजी तो बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे- "आहा कैसी नयी बात सोची। आज हमको लगता है कि हमारा विश्वास कहीं से खंडित नहीं हुआ। हम अब भी मानते हैं जो बिना संघर्ष के चलता है, वह चलता नहीं है। जो फूलों पर चलता है, वह नहीं चलता। चलने के लिए अपने पैरों से कांटे तोड़ने होंगे। तो कहाँ तो हम इतने छोटे थे। लेकिन हमने कहा : फूल तुमको तब कहेंगे जब "कांटन में धंस के हंस फूलयो।" इसके बाद इतने बरसों में हमने दूसरी बात नहीं कही। जब कहा है तो वही कहा है कि संघर्ष से बचो मत, कष्ट से मत बचो। कोई उसमें, मखमल में बीज तो नहीं उगाता है। बीज तो धरती के अंधकार में गलेगा, तब ही उगेगा। तो वह बड़े प्रसन्न हुए हमसे। तो यह हमारा पहला छंद है।

प्र. ब्रजभाषा का ?

उ. और फिर आगे चले तो फिर। पंडित जी एक हमको समस्या दे गए - "बोले नाहि"। तो उनेहोंने बताया कि राधा कृष्ण से बांसुरी मांग रही हैं, वह नहीं देते हैं। वह नहीं देंगे तो नहीं बोलेंगे। अच्छा अब हम लिखने बैठे, लिखने बैठे तो हमने बिलकुल दूसरी बात लिख डाली। हमने लिखा :

मंदिर के पट खोंलत का,

यह देवता तो हृदय खोलिए नाहिं।

अक्षत फूल चढ़ाओ भले,

हरसाए कबहों अनुकूलिए नाहिं।।

बरे हजारन शंख हैं फूंके,

ये जागिए नाटकों और डोलिए नाहिं।।

प्राणन में नित बोलत है,

पुनि मन्दिर में यह बोलिए नाहिं।।"84

आकाशवाणी का महत्त्वपूर्ण कार्य है अपने श्रोताओं को सूचना देना। सूचना देने का कार्य कई साधनों द्वारा किया जा सकता है। सूचना समाचार के माध्यम से तो दिया जाता है लेकिन साक्षात्कार के माध्यम से भी सूचनाएँ दी जा सकती हैं। साक्षात्कार के माध्यम से कवि, लेखक, पत्रकार अथवा अन्य कोई कुशल व्यक्ति अपने जीवन के बारे में, अपनी सफलता के बारे में या ऐसा कुछ जो जब श्रोताओं के बीच रखना चाहता है, उसे अपने साक्षात्कार के माध्यम से कहता है। इस साक्षात्कार में महादेवी जी ने अपने जीवन की सचाइयों को उजागर किया है। कोई भी श्रोता उनके मुँह सुनी हुई बात को अक्षरशः विश्वास करेगा।

आकाशवाणी साहित्य की अनेक विधाओं में अपने उत्कृष्ट अवदानों के लिए विष्णु प्रभाकर सदैव उल्लेखनीय रहेंगे। उनका साक्षात्कार आकाशवाणी के तत्कालीन महानिदेशक श्री कृष्णचन्द्र शर्मा "भिक्खु" ने दिल्ली में 13 जून, 1989 को लिया था। इस साक्षात्कार में गांधी चिंतन की साहित्यिक दृष्टि है–

"प्र. विष्णु जी, मैं सोचता हूँ कि बचपन से अच्छी शुरुआत क्या हो सकती है ? जिज्ञासा है कि आप शांत बालक थे या चपल ? आपकी बाल-लीलाओं से आपके व्यक्तित्व का या विगत में जो भविष्य का बीज रोपित हो चुका था उसका, बहुत कुछ पता चल सके।

उ. शर्मा जी, यह जो सीधा-सा प्रश्न आपका है कि मैं शांत था या चंचल, इसका मैं हाँ या न में उत्तर नहीं दे सकता। मुझे पूरी पृष्ठभूमि आपको बतानी पड़ेगी। और वह

बहुत महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि मेरे प्रारम्भिक जीवन का, मेरे भविष्य पर बहुत गहरा असर पड़ा। यानी समय- जो कुछ मैं आज हूँ, उसकी नींव उसी समय पड़ गई थी। मैं एक संयुक्त परिवार में रहा और संयुक्त परिवार भी केवल मेरे चाचा का नहीं, बल्कि मैंने बाबाओं का संयुक्त परिवार भी देखा है। और अपने गाँव में या कहिए छोटे कस्बे में जिसमें मैं रहा हूँ, आज वह मकान तो नहीं है, ज़मीन है। बड़ा विशाल भवन था और उसमें हमारे कई बाबाओं के परिवार रहते थे। तो शुरू से ही मुझको एक इतना व्यापक परिवेश मिला अपने ही परिवार में कि, मुझे बाहर कहीं भटकना नहीं पड़ा।

प्र. अच्छा ।

उ. हाँ। मेरी परदादी जो थीं, शायद वह नब्बे पार कर चुकी थीं, लेकिन हमको पास बिठाकर के और चादर के अन्दर छिपाकर के हमको घी और रोटी जो खिलाती थीं उसके साथ-साथ कहानियाँ सुनाती थीं। शर्मा जी जो कहानी मैंने उनसे सुनी थी, आज तक उसने मुझे परेशान किया।

प्र. कैसे ?

उ. वह कहानी सुनाती थीं, बहुत सारी कहानी सुनाई। वह तो मैं क्या बताऊँ ? लेकिन एक कहानी थी कि- राजा का लड़का या व्यापारी का लड़का, जब वह विदेश जाने के लिए चलता था तो उसकी माँ कहती या पिता, जो भी पात्र होते वह कहते कि पूरब जाना, पश्चिम जाना, उत्तर जाना, दक्षिण मत जाना।

प्र. दक्षिण क्यों नहीं ?

उ. और वह राजकुमार, जो भी था वह दक्षिण ही जाता था। अच्छा, आपने पूछा था दक्षिण क्यों नहीं, इसका भी एक रहस्य है। क्योंकि आप जानते हैं दक्षिण हमारे यहाँ यमराज की दिशा है। इसलिए वह हमेशा संकट की दिशा है। मृत्यु का सामना-साक्षात्कार करना पड़ता है। तो इसलिए वह कहते थे उधर मत जाना। और

राजकुमार हमेशा उधर ही जाता था। क्योंकि साक्षात्कार करने में ही सफलता मिलती थी।

इस कहानी में मैं नहीं समझता कि वह 1918 का साल था या क्या था, मैं शायद 6 बरस का रहा होऊँगा 1918 का साल होगा और आज 1989 है। तब से लेकर आज तक यह कहानी मुझे अंग्रेजी में जिसे कहते हैं "हौंट" करती रही है। और बहुत कुछ मैंने इससे सीखा है। आज भी मेरे में घूमन्तूपन जो है कि मैं बैठ नहीं सकता, निकल पड़ता हूँ अपने देश में कहीं भी और उसका यह बीज वहीं पर है कि दक्षिण मत जाना, और मुझे यात्रा करते हुए डर लगता है। लेकिन मैं यात्रा पर जाता हूँ।

प्र. और इस प्रकार हिमालय का तो आकर्षण रहा ही है ?

उ. हाँ, हिमालय देखा। समुद्र से मुझे बड़ा लगाव है। तो यह एक चीज़ जो है आज तक रही है बचपन की। और भी जो चीज़ें थीं संयुक्त परिवार में रहने के कारण, जिसको कहते हैं कि सहनशक्ति, दूसरे की दृष्टि को समझ लेना यह स्वभावतया हमारे लिए वहाँ संभव हो गई। बचपन से जो हमारा लालन-पालन हुआ और बहुत सारे बच्चे परिवार के खेलने-कूदने में भी रहे। व्यक्तिगत रूप से मेरे परिवार में मेरे पिता सबसे कम कमाने वाले व्यक्ति थे। जब सब लोग अलग-अलग हो गए, संयुक्त परिवार में भी रहा हूँ लेकिन जब बँटे तो सबसे कम आय वाले, मेरे पिता थे। और मेरी माँ, परिवार में सबसे अधिक कहना चाहिए सम्माननीय भी थी. और उनका बड़ा, एक तरह से प्यार भी था। तो यह जो विरोधाभास था, विरोध था कि आय कम है और, क्योंकि मेरी माँ कई कारणों से, एक तो यह कि वह बहुत सुन्दर थीं, दूसरी जबकि वह पहली पढ़ी लिखी महिला थीं, उस परिवार में आई थी, उस जमाने में.......।

प्र. मतलब कितने वर्ष पूर्व आज से.......?

उ. पिछली सदी की बात कहना चाहिए। तो वह पढ़ी-लिखी थीं मेरठ में रहीं और वहीं

आर्यसमाज का बहुत प्रभाव हुआ तो परिवार में उनको पढ़ाया गया। स्कूल तो नहीं भेजा गया। तो अपने साथ जो सामान लाई थीं उसमें एक बक्सा किताबों से भरा हुआ था।

प्र. समय को देखते हुए बड़ी असाधारण बात थी।

उ. असाधारण बात थी। तो इसलिए कि वह पहली महिला थीं जिन्होंने अपने ससुर से बात की थी।

प्र. *वाह !*

उ. *पर्दे को यहाँ तक ले गई थीं।* इस *कारण उनका बड़ा सम्मान था और आर्थिक* दृष्टि से देखा जाए तो-तुलनात्मक दृष्टि से, सबसे कम थीं।

परिवार में बहुत स्नेह *था हमारे। लड़ाई भी होती थी वह तो कहते हैं* न चार बरतन होंगे खड़केंगे, मुझे तो यह लगता है कि लड़ना चाहिए। वह बहुत ज़रूरी है। उसके बिना प्यार बढ़ता नहीं है। गहराई नहीं आती है। वह लड़ाई ऐसी ही होती। तो मेरे साथ विशेष बात यह थी कि मेरे बड़े भाई तो बहुत पहले मामा के यहाँ चले गए थे... मेरी माँ पढ़ी-लिखी थीं तो उनका दृष्टिकोण यह था कि मेरे बच्चे पढ़े-लिखें, गाँव से बाहर जाएँ।

तो मैं जब कहता हूँ न कि मेरे दो गुरु हैं—मेरी माँ को मैं इसलिए गुरु मानता हूँ कि उन्होंने बहुत जल्दी हमको अपने से अलग कर के पंजाब भेज दिया था कि हम पढ़ सकें, कुछ कर सकें यहीं गाँव में न हम डंडी मार, तोलते रहें या तम्बाकू बेचते रहें। मेरे पिता जी की तम्बाकू की दूकान थी। लेकिन आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर होने से उनकी जो, एक कहना चाहिए घुटन अन्दर थी। हालाँकि बाहर नहीं प्रकट करते थे। अन्दर वह घुटन होती थी। अच्छा, उसी समय जो एक घटना घटी। मेरे जो एक छोटे चाचा थे परिवार में सबसे पढ़े-लिखे और परिवार को चलाने वाले वह ही थे, तो

उनके बच्चा नहीं था कोई। मेरे छोटा भाई जो था वह उन्हीं को चला गया था। और बड़े भाई जैसे पंजाब चले गए थे पढ़ने के लिए। तो अब हम परिवार में बराबर के दो रह गए, दोनों में ऊपर से ठीक-ठाक था.....।

प्र. मगर क्षमा करें। यह तो बताया नहीं आपका जन्म स्थान ?

उ. जन्मस्थान मेरा उत्तर प्रदेश जिला मुजफ्फरनगर में एक कस्बा है छोटा-सा गाँव कहना चाहिए - मीरापुर, गंगा के किनारे है।

प्र. तो लाहौर क्यों जाते थे, पढ़ने के लिए ?

उ. मेरे मामा जो वह पंजाब में रहते थे तो मेरी माँ ने अपने भाई के पास हमको भेज दिया था। उस समय यह हिसार भी पंजाब में ही था। लाहौर भी पंजाब में ही था वह बड़ा पंजाब था। तो हम दो भाई जो रहे, ऊपर-नीचे के होने से आप जानते हैं कि ऊपर-नीचे के भाई-बहन लड़ाई बहुत करते हैं.....।"[85]

इस साक्षात्कार से यह स्पष्ट होता है कि भेंटकर्ता ने एकदम छोटे-छोटे प्रश्न किया है और उसका उत्तर भेंट-प्रदाता ने विस्तारपूर्वक दिया है। इसकी भाषा एकदम बोलचाल की भाषा है। छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जो कोई भी श्रोता आसानी से समझ सकता है। कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। भेंट-प्रदाता ने अपने जीवन के विविध पक्षों का उद्‌घाटन सरलता एवं सहजता से किया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के उदय और प्रचलन होने के कारण भेंटवार्ता के चरित्र में काफ़ी परिवर्तन आया है। आजकल विशिष्ट व्यक्तियों की भेंटवार्ताएँ सीधे प्रसारित होने लगी हैं। फ़ोन-इन प्रोग्राम में भेंटकर्ता अपने अतिथि से उसके सीधे ड्राइंगरूम में बैठकर वार्ता करता है और वहीं से उसका सीधा प्रसारण भी होता है।

साक्षात्कार लेने में एक विशेष तकनीक अपनाने की आवश्यकता होती है। यह आकाशवाणी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा है। यह आकाशवाणी में सबसे सबल और

भरोसेमंद साधन है। साक्षात्कार दो तरह के होते हैं। एक तो व्यक्तित्व संबंधी साक्षात्कार और दूसरा समाचार की जानकारी प्राप्त करने के लिए। दोनों तरह के साक्षात्कार में किसी नवीन अथवा रोचक जानकारी की खोज की जाती है। व्यक्तित्व संबंधी साक्षात्कार में रोचकता आवश्यक है। वैसे तो हर विधा में रोचकता एक अनिवार्य शर्त है। साक्षात्कारकर्ता के प्रश्न यदि रोचक नहीं हुए तो श्रोता भी उसे सुनने में रुचि नहीं लेगा और रेडियो या तो बंद कर देगा या दूसरा केंद्र सुनना चाहेगा।

उपरोक्त साक्षात्कार में विष्णु प्रभाकर जी ने अपनी निजी, पारिवारिक, सामाजिक पृष्ठभूमि का उल्लेख जिस सहजता के साथ किया है। साक्षात्कारकर्ता को किन सुखों और पीड़ाओं की अनुभूति हुई है, इसका उल्लेख इस में हुआ है। सम्मान और सफलताओं ने उनके जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया है, उनके जीवन में किस प्रकार बदलाव आया है, अन्य व्यक्तियों से वे कैसे प्रभावित हुए हैं, उनकी भावी योजनाएँ और आकांक्षाएँ क्या हैं, इसका भी खुलासा हुआ है। इस प्रकार की विविध जानकारियाँ प्राप्त करने की संभावनाएँ व्यक्तित्व-साक्षात्कार में रहती है। साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के साथ बातचीत करके उसके निजी जीवन, चरित्र, स्वभाव, मनोभाव, विचार-दर्शन, कृतित्व और भविष्य की योजनाओं के बारे में जाना गया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भेंटवार्ता वह प्रक्रिया है जिसमें समालाप द्वारा भेंटदाता के जीवन की वैसी बातों का पता लगाया जाता है, जो वह सरलता से सबको बताना नहीं चाहता। भेंटदाता को यह अनुभव करना आवश्यक होता है कि भेंटकर्ता उसके विचारों को मूल्यवान मानता है, तभी वह भेंट देने के लिए तैयार होता है और अपना समय निकाल पाता है। साक्षात्कार के दौरान कभी-कभी सच निकालने के लिए भेंटकर्ता को दृढ़ता भी बरतनी होती है। साक्षात्कार का उद्देश्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करना नहीं होता है; बल्कि इस विधा में साक्षात्कार से जानकारी प्राप्त करना ही उद्देश्य होता है। भेंटकर्ता ऐसा कोई सवाल नहीं करता, जिसका उत्तर सिर्फ़ 'हाँ' या 'ना' में होता हो।

संदर्भ

1. सम्प्रेषण और रेडियो शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 225-226
2. साहित्य- एक विवेचन, राजमल बोरा, पृ. 9,
3. रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, पृ. 46-47
4. तीसरा सप्तक, सं. अज्ञेय, पृ. 211
5. भीतर साँकल, बाहर साँकल, पृ. 72
6. डॉ. कृष्णावतार उमराव विवेक निधि की स्वरचित कविता 'स्वदेशी सहगान' आकाशवाणी मथुरा से दिनांक 12.09.1995 को प्रसारित।
7. रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, पृ. 112
8. वही, पृ. 113
9. आकाशवाणी विविधा- दो, पृ. 114
10. सात राष्ट्रीय रेडियो-नाटक, चिरंजीत, पृ. 13-14
11. वही, पृ. 15-16
12. तिनका-तिनका सुख, ओमप्रकाश केजरीवाल, प्रस्तावना
13. वही,, पृ. 151
14. वही, पृ. 19
15. आकाशवाणी विविधा-दो, पृ. 76-77
16. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 77
17. रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, पृ. 75
18. रेडियो-वार्त्ता-शिल्प, सिद्धनाथ कुमार, पृ. 9-10
19. वही, पृ. 10
20. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, पृ. 43
21. चिन्तन पर्व, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 3
22. वही,, पृ. 3
23. वही, पृ. 4-5
24. वही, पृ. 6
25. वही, पृ. 39-43
26. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 91-97
27. रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, पृ.- 107
28. वही, पृ.- 11
29. आकाशवाणी कथा भारती, पृ. 9
30. वही, पृ. 12-13
31. साहित्य-विधा-विवेक, लेखक- डॉ. देवेन्द्र त्यागी, पृ. 41
32. आकाशवाणी कथा भारती, पृ. 146-149
33. वही, पृ. 154-159
34. वही, पृ. 150

35. धुंध के पार, दिनेश पाठक 'शशि', पृ. 25-26
36. वही, पृ. 27-28
37. वही, पृ. 34
38. वही, पृ. 72
39. वही, पृ. 79
40. वही, पृ. 79
41. हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ. 198
42. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी रेडियो नाटक- एक अनुशीललन, डॉ. बाबुराव नन्दनवार, पृ. 91
43. रेडियो नाटक संग्रह, भाग-2, पृ. 287
44. वही, पृ. 295
45. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रेडियो नाटक- एक अनुशीलन, डॉ. बाबूराव नंदनवार, पृ. 132
46. दिनांक 17 दिसम्बर 2006 को 11 बजकर 30 मिनट पर डॉ. सिद्धनाथ कुमार से शोधकर्ता की फोनवार्ता।
47. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, संपादक, नेमिचंद्र जैन, पृ. 5
48. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रेडियो नाटक- एक अनुशीलन, डॉ. बाबूराव नंदनवार, पृ. 22
49. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश, पृ. 8
50. हिन्दी नाट्य कला तथा रेडियो नाटक- डॉ. राधेश्याम वाजपेयी, पृ. 109
51. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश, पृ. 28
52. दिनांक 26 अप्रैल 2006 को डॉ. सिद्धनाथ कुमार से शोधकर्ता की फोनवार्ता।
53. आधे-अधूरे,मोहन राकेश, पृ. 93
54. हम हिंदुस्तानी, चिरंजीत, प्रसारण तिथि- 29-7-1970
55. सात रेडियो-नाटक, चिरंजीत, पृ. 66
56. दिनांक 17 दिसम्बर 2006 को 11 बजकर 30 मिनट पर डॉ. सिद्धनाथ कुमार से शोधकर्ता की फोनवार्ता।
57. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 229
58. वही, पृ. 107
59. रेडियो नाटक संग्रह (भाग-3), पृ. 221
60. वही, पृ. 225-228
61. सेंटिनल, वर्ष 18, अंक 222, दिनांक 9-1-2007, पृ. 1
62. सात राष्ट्रीय रेडियो-नाटक, चिरंजीत, प्रस्तावना- पृ. 8-9
63. आकाशवाणी महानिदेशालय के चीफ प्रोड्यूसर (ड्रामा) श्री चिरंजीत, जिन्होंने दिसम्बर 1979 में अवकाश प्राप्त किया, से मुनीरका, नई दिल्ली स्थित उनके निवास स्थान पर दिनांक 9 जून 2004 को शोध छात्र के साथ साक्षात्कार।
64. हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ. 198
65. रूपक-रहस्यः डॉ. श्यामसुन्दर दास, पृ. 2
66. AIR Manual, P. 8
67. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 121
68. वही, पृ. 121

69. हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार, डॉ. ठाकुरदत्त शर्मा आलोक, पृ. 106
70. हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम, भाग-2, संपादक- डॉ. वेदप्रताप वैदिक, पृ. 101
71. मेघालय : एक परिचय, डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, 28-4-2003 को पूर्वोत्तर सेवा, आकाशवाणी, शिलांग से प्रसारित फीचर।
72. वही
73. वही
74. पूर्वोत्तर भारत में कृषि विकास के लिए सतत प्रयत्नशील-आई.सी.ए.आर, डॉ. श्रुति पाण्डेय, 28-7-2003 को आकाशवाणी से प्रसारित फीचर
75. वही
76. महात्मा बुद्ध, राजकुमार शर्मा, 16-3-2003 को आकाशवाणी से प्रसारित फीचर
77. 'मीतई विवाह की प्रथाएँ', डॉ. जगमल सिंह, आकाशवाणी द्वारा प्रसारित फीचर
78. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प, विश्वनाथ पाण्डेय, पृ. 132-133
79. फीचर लेखन स्वरूप और शिल्प, डॉ. मनोहर प्रभाकर, पृ. 17
80. आकाशवाणी द्वारा स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रसारित फीचर
81. आकाशवाणी विविधा- संकलन एक, पृ. 16-17
82. वही, संकलन दो, पृ. 14-16

****

पंचम् अध्याय

आकाशवाणी का अवदान

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि आकाशवाणी और साहित्य में कोई प्रत्यक्ष संबंध भले ही नहीं है लेकिन दोनों ने एक-दूसरे को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद इन दोनों माध्यमों का आपसी संपर्क अधिक रहा है; क्योंकि विधाओं के निजी चरित्र होने के बावजूद ये दोनों माध्यम स्वतंत्रता के बाद के देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे है। हम यहाँ स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर साहित्य ने आकाशवाणी को यदि गरिमा प्रदान की है तो आकाशवाणी ने भी साहित्य के विकास को व्यापक मंच दिया है। वस्तुतः साहित्य और आकाशवाणी के परस्पर आदान-प्रदान को कभी महत्त्वपूर्ण नहीं समझा गया, जबकि दोनों ही वैचारिक एवं भवानात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम रहे। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि प्रारंभ में आकाशवाणी केवल एक सरकारी सूचना तंत्र ही थी और इसे एक सराकारी माध्यम के रूप में ही स्वीकार किया गया। कालान्तर में यद्यपि इसकी भूमिका में परिवर्तन आया और सिर्फ सूचना तंत्र से मुक्त हो कर इसने अपना जन-चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भी विकास किया परंतु सरकारी आधिपत्य होने के कारण इसे कभी अभिव्यक्ति के स्वतंत्र माध्यम के रूप में नहीं देखा गया। बावजूद इस मूलबद्ध अवधारणा के साहित्य और आकाशवाणी का आपसी आदान-प्रदान चलता रहा और दोनों ने ही एक दूसरे को गंभीरता से प्रभावित किया। पिछले अध्यायों में यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि साहित्य और आकाशवाणी दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। साहित्य ने आकाशवाणी का चरित्र बदला और आकाशवाणी ने साहित्य की विविध विधाओं में परिवर्तन किया। वस्तुतः आकाशवाणी वह ध्वन्यात्मक विधा है जो ध्वनि-प्रभाव के माध्यम से भावानात्मक एवं

वैचारिक प्रभाव उत्पन्न करती है। साथ ही आकाशवाणी एक समयबद्ध एवं पूर्व नियत कार्यक्रमों के माध्यम से ही अपनी अभिव्यक्ति आम जन में करती है। इसलिए आकाशवाणी के माध्यम से साहित्य के जिन रूपों का प्रसारण होना संभव था उसने अपने विस्तार एवं समयावधि में आवश्यक परिवर्तम किए। यह बारिक परंतु महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि आजादी के बाद के साहित्य की विविध विधाओं में जो क्षिप्रता, संक्षिप्तता, ध्वन्यात्मकता, नाटकीयता आदि गुण विकसित हुए उनमें आकाशवाणी की भूमिका कहीं न कहीं अवश्य थी।

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि कहानी, रूपक, वार्ता, नाटक, रेडियो रूपक, साक्षात्कार आदि विधाओं में काफी परिवर्तन हुए। नाटक का साथ-साथ एकांकी जैसी नई नाट्य-विधा का विकास हुआ। इसी तरह गीति नाट्य या गीति काव्य जैसी विधाएं भी प्रचलन में आईं। निश्चित रूप से जहाँ इन पर परिस्थितियों का दबाव था, वहीं तेजी से हदलते हुए समाज में आकाशवाणी जैसे संचार माध्यम का प्रभाव भी था।

5.(क). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विविध विधाओं के विकास में आकाशवाणी का अवदान

भारत में जबसे आकाशवाणी की स्थापना हुई तब से लेकर आज तक हिंदी साहित्य के विविध विधाओं के विकास में इसका महत्वपूर्ण अवदान रहा है। हिंदी साहित्य का विरले ही कोई ऐसा विद्वान होगा जिसकी रचना आकाशवाणी से कम से कम एक बार भी न प्रसारित हुई हो। चाहे मनोरंजन का क्षेत्र हो या शिक्षा का आकाशवाणी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है, किंतु हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इसके अवदान की महत्ता सर्वमान्य है। हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी हिंदी भाषा के माध्यम से प्रसारित कर आकाशवाणी ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। दूसरी भाषाओं के साहित्यकारों ने अपनी भाषा के साहित्य को हिंदी साहित्य में पाकर गौरवान्वित हुए हैं। ऐसे

साहित्यकारों में प्रमुख हैं, भवेन्द्र नाथ सइकिया, तरुण सइकिया, अरुण शर्मा (असमिया), कालिंदी चरण पाणिग्रही, जयन्त कुमार दास (उड़िया), सत्यजीत राय, शंकर नारायण सान्याल (बंगला), टी. पतंजलि शास्त्री और बी. एस. कामेश्वर राव (तेलुगु), सदानन्द पुतियारा, प्रो. जी. शंकर पिल्लै (मलयालम), नन्द कुमार पाठक (गुजराती), विजय तेंदुलकर, लक्ष्मीकांत देशमुख (मराठी), करतार सिंह दुग्गल (पंजाबी), बंसी निर्दोष, हृदय कौल भारती (कश्मीरी), कृष्णचंदर (उर्दू), डॉ. शिवराम कारंत (कन्नड़), श्री रंगम नरसिंहन (तमिल), पुण्डरीक नारायण नायक (कोंकणी), आनन्द खेमाणी (सिंधी) आदि। इन साहित्यकारों की रचनाओं का हिंदी अनुवाद कर आकाशवाणी के राष्ट्रीय प्रसारण में शामिल किया गया। दूसरी भाषाओं के साहित्य को आकाशवाणी द्वारा हिंदी में प्रसारित किया जाना, राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ हिंदी साहित्य को समृद्ध करना आकाशवाणी का एक महत्वपूर्ण अवदान है। इस संदर्भ में क्षेमचन्द्र सुमन का विचार है, "आपको स्मरण होगा कि गांधीजी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के क्रमशः सन् 1918 तथा सन् 1935 में सम्पन्न हुए वार्षिक अधिवेशनों की अध्यक्षता की थी और वे दोनों ही अधिवेशन इन्दौर में हुए थे। हिन्दी को भारत की राष्ट्रीयता का मेरुदण्ड सिद्ध करते हुए गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में जो घोषणा उस समय की थी, वह वास्तव में आगे चलकर स्वतंत्रता-आंदोलन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रेरणा सिद्ध हुई। उन्होंने कहा था- जो स्थान इस समय अनुचित ढंग से अँग्रेज़ी को मिला हुआ है, वह स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए। इस विषय में मतभेद होने का कोई कारण न होने पर भी मतभेद होना, दुर्भाग्य की बात है। शिक्षित वर्ग को एक भाषा अवश्य चाहिए, और वह हिन्दी ही हो सकती है। हिन्दी के द्वारा करोड़ों व्यक्तियों में आसानी से काम किया जा सकता है। इसलिए उसे उचित स्थान मिलने में जितनी देर हो रही है, उतना देश का नुकसान हो रहा है। - महात्मा जी ने यह विचार सन् 1918 के अधिवेशन में प्रकट किए थे। सन् 1935 में तो उन्होंने हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा मानते हुए स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की थी- हम किसी भी हालत में

प्रान्तीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते । हमारा मतलब तो सिर्फ़ यह है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्धों के लिए हम हिन्दी भाषा सीखें। ऐसा कहने में हिन्दी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे देश के अधिसंख्य लोग जानते-बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है।"[1] स्पष्ट है कि राष्ट्र के विकास में राष्ट्रभाषा हिंदी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और हिंदी साहित्य का महत्व उससे भी अधिक। अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को आकाशवाणी ने हिंदी साहित्य में शामिल कर हिंदी-साहित्य के भंडार को समृद्ध किया है। वास्तव में आकाशवाणी के माध्यम से देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों को एक मंच पर लाकर और सभी भाषाओं के उत्कृष्टतम रचनाओं को अनूदित करके भारत की साहित्यिक एकता के लिए जो अवदान दिया है वह अनुपम और प्रशंसनीय है। इसी संदर्भ में बर्द्धमान विश्वविद्यालय (पं.बं.) के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. श्रीनारायण पाण्डेय से दिनांक 8 जनवरी 2006 को शोधछात्र की बातचीत हुई। उनके अनुसार, "हिंदी साहित्य को आकाशवाणी ने लोकप्रियता प्रदान की। जो साहित्य जन-जन तक नहीं पहुँच पाता था, जो लोग पढ़ नहीं सकते हैं, निरक्षर हैं या नेत्रहीन हैं, उन तक साहित्य को आकाशवाणी ने पहुँचाया। आकाशवाणी के माध्यम से आमलोगों में साहित्यिक जागरूकता आई। जिनके पास लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं था, उनके पास साहित्य पहुँचा तो आकाशवाणी के माध्यम से। आकाशवाणी के द्वारा ही साहित्यिक अभिरुचि जागृत हुई। इसके द्वारा सामाजिक चेतना लोगों में जगी। जो शिक्षित या साहित्यकारों का वर्ग था, उनमें नए-नए विषयों का बोध हुआ। उन लोगों ने आकाशवाणी के संदर्भ में नए-नए विषयों का चयन किया। विषयों के चुनाव के साथ-साथ शिल्प का भी विकास हुआ। आकाशवाणी के अनुवाद साहित्य का प्रचार-प्रसार हुआ। दूसरी भाषाओं का अनुवाद किया गया।"[2]

पिछले अध्यायों का अगर हम विवेचन करें तो यह प्रमाणित होता है कि आकाशवाणी ने साहित्य की निम्नलिखित विधाओं पर अलग-अलग तरीके से प्रभाव डाला है–

5.(क).1. कविता

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में ध्वन्यात्मकता, सहजता, सरलता, किंचित गद्यात्मकता एवं संक्षिप्तता का जो गुण दिखाई पड़ता है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि अन्य तमाम प्रभाव एवं दबावों में आकाशवाणी की मांग भी उसमें अवश्य शामिल थी। आकाशवाणी ने कविता के विषय-वस्तु अथवा कथ्य में भले ही परिवर्तन न किया हो, उसके शिल्प और संरचना के निर्माण में उसका दबाव महसूस किया जा सकता है। जन-संप्रेषण की अपनी अद्भूत शक्ति के कारण आकाशवाणी साहित्य को आम जन तक प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। ऐसे में रचनाकार यदि शब्द-चयन, भाव-योजना आदि के प्रति सतर्क रहे हों तो इसमें आश्चर्य नहीं। इससे इस तथ्य को भी जोड़ा जा सकता है कि आजादी के बाद लगभग सभी मूर्धन्य साहित्याकार आकाशवाणी से जुड़े रहें हैं और उनका साहित्य आकाशवाणी के माध्यम से निरंतर प्रसारित होता रहा है। इतना ही नहीं हिंदी कविता में गीति-नाट्य अथवा नाट्य-गीति जैसी ध्वनि प्रधान नाटकीयता युक्त शैली के विकास के पीछे आकाशवाणी की भूमिका देखी जा सकती है। यद्यपि हिंदी कविता का विकास तो मुख्यतः उसके साहित्यिक एजेंडे के तहत ही हुआ और उसमें साहित्यिक मुद्दे हावी रहे, परंतु कविता के चरित्रगत बदलाव में गीतात्मकता अथवा सांगीतिकता की उपस्थिति आकाशवाणी की भूमिका को किसी अंश तक पुष्ट करती है। हम यह बात निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस गीतात्मकता के पीछे कहीं न कहीं आकाशवाणी की भूमिका अवश्य रही होगी।

आकाशवाणी के माध्यम से कविता की एक अपेक्षाकृत नई धारा का प्रसारण भी खूब हुआ जिसे गीति-नाट्य अथवा नाट्य-काव्य कहा जाता है। आकाशवाणी अपने श्रव्य-रूप के कारण वाणी की नाटकीयता के साथ विशेषरूप से जुड़ी है, इसलिए इससे प्रसारित होने वाली कविताओं में नाटकीय तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी तथ्य के आधार पर आरंभ में आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले साहित्यिक कार्यक्रमों में गीति-नाट्य की अधिकता है। यह आकाशवाणी का ही प्रभाव है कि आरंभ में इस माध्यम से प्रसारित होने वाले साहित्यिक कार्यक्रमों में गीतिनाट्यों की अधिकता है। यही कारण था कि सुमित्रानंदन पंत ने 'शिल्पी', 'सौवर्ण', 'रजत शिखर' जैसे गीति-नाट्यों की रचना मूलतः आकाशवाणी के लिए ही की थी। पंत की ये रचनाएँ आकाशवाणी के कारण ही हिंदी साहित्य के उद्यान में स्थापित हो सकीं।

आकाशवाणी से प्रसारित कविताओं का अध्ययन करने से यह भी स्पष्ट होता है कि कुछ कविताएँ विषय को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं और उनमें साहित्यिकता का अभाव भी है। तमाम गीत या कविताएँ बालगीत के रूप में मिलती हैं; जिनका साहित्यिक स्तर काफ़ी कमज़ोर दिखाई पड़ता है। इसी तरह से राष्ट्र-प्रेम या अन्य सामाजिक विषयों को लेकर लिखी गई कविताएँ नितांत आदर्शवादी हैं और उनमें जीवन की वास्तविकता बहुत कम व्यक्त हो पाई है। ऐसा विशेषतः उन साहित्यकारों के साथ हुआ जिन्हें साहित्य लिखने का अभ्यास नहीं था, परंतु प्रसारण की प्रतिबद्धता के चलते उन्होंने कविताएँ लिखीं। स्वतंत्रता के पश्चात् आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कविताओं का उद्देश्य राष्ट्र-विकास की ओर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले इस राष्ट्र में विकास की राहें प्रशस्त हों, इस ओर कवियों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया। अथक प्रयत्नों और असंख्य बलिदानों के बाद मिली आजादी को एकता और अखण्डता की मजबूती मिले और इसका प्रचार जन-जन तक पहुँचने वाला सबसे सस्ता माध्यम आकाशवाणी ही था।

इसीलिए देशभक्ति को कवियों ने प्रमुखता प्रदान की और अपनी कविताओं में इसकी सृष्टि की। आजादी के बाद की हिंदी कविता कई स्तरों पर आकाशवाणी से प्रभावित है। उदाहरण के तौर पर नवगीत के रूप में गीतात्मक कविताओं का विकास, राष्ट्रधर्म, राष्ट्रभक्ति को लेकर कविताओं का सृजन एवं सरलतम शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों एवं सहज बिंबों, प्रतीकों का प्रयोग कहीं न कहीं कविता को आकाशवाणी के अनुकूल सिद्ध करता है।

5.(क).2. वार्ता

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में साहित्य के स्थापित विधाओं के साथ अन्य कई नई विधाओं का विकास हुआ। इनमें कुछ विधाएँ ऐसी थीं जो तकनीकि और साहित्य के आपसी मेलजोल से विकसित हुईं। वैसी ही एक विधा है- वार्ता। यद्यपि अंग्रेजी में इसे 'Talk' कहते हैं परंतु इसमें बातचीत जैसी कोई चीज न होकर एक निबंधात्मक आख्यान होता है जिसे रचनाकार निर्धारित समय-सीमा के भीतर प्रस्तुत करता है। वार्ता का विकास संचार माध्यमों के दबाव के चलते ही हुआ है। इसीलिए देखा जाता है कि साहित्य में प्रायः वार्ताओं का अभाव है। यद्यपि इसे उस प्रकार के निबंध के श्रेणी में रखा जा सकता है जो किसी एक सीमित विषय पर केन्द्रीत हो कर निर्धारित समय-सीमा के भीतर संपन्न हो सके। वार्ता की समय-सीमा काफ़ी महत्वपूर्ण है। समय-सीमा के भीतर ही वार्ताकार को अपनी वार्ता पूरी करनी पड़ती है। किसी भी परिस्थिति में वार्ता की समय-सीमा दस मिनट से अधिक नहीं होती। स्पष्ट है कि कभी-कभी आकाशवाणी के दबाव के कारण भी किसी रचना की भाषा-संरचना एवं उसकी प्रस्तुति पर असर पड़ता है। हम कहीं न कहीं आकाशवाणी का प्रभाव इसकी संपूर्ण संरचना पर देख सकते हैं। इसका स्वरूप बहुत कुछ आत्म-व्यंजक या ललित निबंध की तरह है; यद्यपि विषय-वस्तु एक तरह का सरलीकरण है, फिर भी आम जनता के मनोरंजन के लिए इसे रचनाकार ने लालित्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत

किया है। वस्तुतः इससे संकेत मिलता है कि आकाशवाणी ने साहित्य की कई विधाओं पर कुछ ऐसा दबाव बनाया कि उसके मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुई। शब्दों का चयन, वाक्य संरचना के साथ-साथ लोकजीवन की, खासकर मध्यम वर्ग की मनोवृत्ति को उकेरने का प्रयत्न लगातार किया गया है। आकाशवाणी ने सीधे तौर पर साहित्य के विविध विधाओं के भाव और शिल्प को प्रभावित किया है और साहित्यकारों ने आकाशवाणी को ध्यान में रखकर विविध रचनाएं की हैं।

5.(क).3. कहानी

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियां हमारे देश की कहानी की विविधता, संस्कृति की विविधता और साहित्य की विविधता को प्रतिबिंबित करती हैं। देश की भावात्मक एकता की नींव को मज़बूत करने के लिए इस तरह के प्रसारण की आवश्यकता आकाशवाणी ने महसूस की है। अन्य भाषाओं की कहानियों के प्रसारण से निश्चय ही हिंदी साहित्य का मार्ग प्रशस्त हुआ है और राष्ट्रीय एकता की आधारशिला पुष्ट हुई है। जहाँ तक हिंदी कहानियों का प्रश्न है आकाशवाणी ने ऐसी तमाम कहानियों का प्रसारण किया जिनमें आम जनता के जीवन की समस्याएँ प्रतिबिंबित हुई थीं। साथ ही समाज एवं परिवार में आने वाले परिवर्तनों को लक्ष्य कर लिखी गई कहानियों को भी आकाशवाणी द्वारा प्रमुखता से प्रसारित किया गया। इसके अतिरिक्त कुछ मनोरंजन प्रधान, व्यंग्यात्मक कहानियों को भी आकाशवाणी ने प्रसारित किया। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि आकाशवाणी ने सीधे तौर पर हिंदी कहानियों को प्रभावित किया परंतु इतना तो स्पष्ट है कि आकाशवाणी ने नए भावबोध की कहानियों को प्रचारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों का एक आवश्यक गुण है नवीनता। नवीनता से रोचकता अपने-आप आ जाती है। मनुष्य स्वभाव से ही नई वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। वह नवीनता को जानना और समझना चाहता है। आकाशवाणी के श्रोता भी नए-नए कार्यक्रमों को सुनना अधिक पसंद करते हैं। इसलिए आकाशवाणी के कार्यक्रम निर्माता कहानियों के शिल्प में भी नवीनता चाहते हैं और यह नवीनता आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कहानियों में दिखाई पड़ती है।

5.(क).4 नाटक

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित नाटकों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्‌भाव, सामाजिक न्याय, परिवार कल्याण, दहेज-प्रथा का उन्मूलन तथा अन्य सामाजिक बुराइयों को दूर करने जैसे सामाजिक उद्देश्यों पर नाटक के माध्यम से प्रकाश डालना है। इन सबके बावजूद नाटक का उद्देश्य श्रोताओं का मनोरंजन करना भी होता है। आकाशवाणी को राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के लिए उदात्त मूल्यों पर आधारित नाटकों एवं काव्य-कृतियों की निरंतर आवश्यकता पड़ती है। राष्ट्र-निर्माण की दिशा में आकाशवाणी रचनात्मक योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने राष्ट्रीय उद्देश्य को सामने रखकर अपने नाटकों की रचना की है और उनकी प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया जाना इस बात का संकेत है कि इन नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति करने में आकाशवाणी सर्वप्रथम है।

रेडियो-नाटकों के माध्यम से आकाशवाणी ने हिंदी साहित्य को काफ़ी समृद्ध किया है। यही एक विधा है जिसे आकाशवाणी ने पूर्ण रूप से ग्रहण किया और इसकी तकनीक में परिवर्तन कर इसे अपने प्रसारण-योग्य बनाया। कहानी, कविता, उपन्यास आदि

सभी विधाओं में सर्वप्रथम स्थान रहा है हिंदी नाटकों का, जिसका प्रसारण आकाशवाणी ने सर्वाधिक किया है। यहाँ तक कि अन्य भाषाओं के नाटकों का रूपांतर भी हिंदी में करने के बाद नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम में प्रसारित किया गया। यह इस बात का संकेत है कि हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी ने किस प्रकार अपना योगदान किया है– "समय के साथ-साथ लोगों की मनोरंजन की प्राथमिकताएँ बदलती रही हैं। इसी बदलाव के क्रम में आज रेडियो काफ़ी पीछे छूट गया है। इसके बावजूद आम जन-जीवन में रेडियो ने जिस कदर घुसपैठ की हुई है, इसे देखते हुए नहीं लगता कि मनोरंजन का कोई दूसरा साधन रेडियो का विकल्प बन सकता है। फ़िल्मी गीतों के बाद रेडियो पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में लोकप्रियता की दृष्टि से नाटकों का दूसरा नंबर है। फिर भी बिडम्बना ही है कि इस विधा को समझने तथा अन्य माध्यमों से किए जाने वाले नाटकों से रेडियो नाटक की भिन्नता को जानने का हिंदी में कोई प्रयास नहीं किया गया।"[3]

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी के द्वारा प्रसारित नाटकों को काफ़ी लोकप्रियता मिली और जब प्रसिद्ध साहित्यकार जगदीशचन्द्र माथुर आकाशवाणी के निदेशक हुए और उन्होंने साहित्यकारों को आकाशवाणी से संबद्ध करने की योजना बनाई, इस क्रम में सिद्धनाथ् कुमार जैसे हिंदी साहित्य के कई विद्वान आमंत्रित हुए और उन्होंने अपनी प्रतीभा से साहित्य और आकाशवाणी के संबंध को और अधिक पुख्ता किया। अमृतलाल नागर, वृंदावनलाल वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, विपिन कुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, भीष्म साहनी, लक्ष्मीकांत वर्मा, विनोद रस्तोगी, सुरेन्द्र वर्मा आदि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यो सभी किसी न किसी रूप में आकाशवाणी से संबद्ध थे और इनकी कई रचनाओं का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया गया। इस संदर्भ में एकांकी के विकास को विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है। आकाशवाणी के लिए नाटकों का प्रसारण जहाँ

अपेक्षाकृत दुष्कर एवं कष्टसाध्य कार्य था वहीं दूसरी ओर इस विधा की लोकप्रियता के कारण लगभग अनिवार्य भी था। एकांकी ने इस समस्या को बहुत हद तक कम किया क्योंकि एकांकी की नाट्ययोजना अपेक्षाकृत अधिक संक्षिप्त एवं सरल थी। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि नाटक के साथ-साथ एकांकी जैसे संक्षिप्त नाट्य विधा का विकास आकाशवाणी के दबाव से ही हुआ जान पड़ता है। यही कारण है कि हिंदी नाट्य साहित्य में रेडियो नाटक का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है और रेडियो से प्रसारित नाटकों की संख्या मंचीय नाटकों से कई गुना अधिक है। स्वातंत्र्योत्तर युग से लेकर आज तक आकाशवाणी से जितने भी नाटक प्रसारित हुए हैं उनकी संख्या काफ़ी बड़ी है। ये सभी नाटक लोगों के आनंद के स्रोत रहे हैं। क्योंकि "यहाँ यह कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं कि साहित्य मानव जीवन के लिए आनंद का स्रोत है, तो उसके जीवन संबंधी रहस्यों को जानने की जिज्ञासा भी आनंद तथा ज्ञान की वृद्धि का कारण हो सकती है।"[4]

5.(क).5. रेडियो-रूपक (फीचर)

वार्ता की ही तरह रेडियो रूपक भी साहित्य और तकनीकी के योग से विकसित विधा है जिसमें दृश्य रूप को श्रव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। मंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले रूपकों में दृश्यों का व्रणन, वस्त्र-विन्यास, सजावट, पात्रों का चरित्र-निर्माण आदि का प्रत्यक्ष प्रदर्शन किया जाता है, वहीं रेडियो रूपक में इन सबका प्रदर्शन एकमात्र ध्वनि के माध्यम से किया जाता है। रेडियो-रूपकों को सुनने के लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई श्रोता या दर्शक नहीं होता, केवल अभिनेता होते हैं। प्रसारित रूपक के विषय में कलाकारों को श्रोताओं की प्रतिक्रिया जानने का अवसर नहीं मिलता है। रेडियो फीचर में गति और कार्य के साथ ही साथ घटनाओं का प्रदर्शन बड़ी सरलता के साथ करना पड़ता है। इस विधा में कल्पना-प्रधान कथानक को प्रस्तुत करना बहुत ही आसान

है। इसमें किसी प्रकार के दृश्य, स्थान, काल, पात्र आदि की कल्पना प्रस्तुतकर्ता बड़ी आसानी से कर लेता है।

रेडियो रूपक यद्यपि आकाशवाणी की विशिष्ट विधा है जिसमें आलेख वाचन के साथ-साथ बातचीत, साक्षात्कार, संगीत आदि का प्रयोग भी बीच-बीच में किया जाता है, परंतु इसके निर्माण में साहित्यिक समझ की बड़ी आवश्यकता रहती है। ऐसे कार्यक्रम आम लोगों में अत्यंत लोकप्रिय होते हैं। अतः रेडियो रूपक का प्रसारण आकाशवाणी का नियमित कार्यक्रम होता है। आकाशवाणी से जुड़े विभिन्न साहित्यकारों ने अच्छी पहल की और विशेष रूप से रेडियो रूपकों की रचना उनके द्वारा की गई। अतः यह कहा जा सकता है कि रेडियो रूपक जैसी विधा का विकास पूरी तरह से आकाशवाणी के द्वारा ही हुआ है। सामान्यतः जो नाटककार आकाशवाणी से संबद्ध रहे उन्होंने समायसमय पर आवश्यकतानुसार रेडियो रूपको की रचना की। इस क्रम में विष्णु प्रभाकर, चिरंजीत, सिद्धनाथ कुमार, हंसकुमार तिवारी, बच्चन सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि इसने हिंदी साहित्य के कई विधाओं से शक्ति ग्रहण की है। एक ओर जहाँ इस विधा में नाटकीयता का प्रभाव दिखाई पड़ता है वहीं ललित निबंध की शैली भी इस विधा के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है। वास्तव में लालित्यपूर्ण ढंग से विषय को प्रस्तुत करना ही इसका उद्देश्य होता है।

5.(क).6. साक्षात्कार (भेंटवार्ता)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी भाषा और साहित्य काफ़ी समृद्ध हुआ है तथा

उसमें अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर लेखन में विविधता आई और आकाशवाणी के कार्यक्रमों के प्रसारण पर भी इसका प्रभाव पड़ा। आज के युग में घटनाएँ इतनी तेज़ी से घटती हैं कि उनसे तालमेल बनाए रखना कठिन हो जाता है और आकाशवाणी इसी तालमेल को बनाए रखने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का निर्माण करती है। आकाशवाणी के कार्यक्रमों को निरंतर प्रासंगिक बनाए रखने के लिए विभिन्न विधाओं का सहारा लेना पड़ता है। इन्हीं विधाओं में एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है- भेंटवार्ता। इस विधा के अभाव में आकाशवाणी का प्रसारण अधूरा माना जा सकता है। भेंटवार्ता को प्रभावशाली ढंग से प्रसारित करने के लिए भेंटकर्ता का प्रश्न-कला में निपुण होना अत्यंत आवश्यक होता है। यदि भेंटकर्ता को प्रश्न तैयार करना, प्रश्न पूछना और उपयुक्त उत्तर प्राप्त करने का तरीक़ा नहीं आता है तो उसे एक सफल भेंटकर्ता नहीं माना जाता है और आकाशवाणी द्वारा उन्हें अनुबंधित नहीं किया जाता है। भेंटवार्ता में प्रश्न की रचना, उसका आकार, उसकी संप्रेषणीयता और उसके उद्देश्य पर काफ़ी ध्यान दिया जाता है। यदि प्रश्न वज़नदार नहीं हैं तो उत्तरदाता आसानी से उपेक्षा कर सकता है। अतः भेंटकर्ता को उत्तरदाता के विषय में काफ़ी जानकारी रखनी होती है। भेंटवार्ता या साक्षात्कार वह कला है जिसमें भेंटकर्ता अपने कौशल का भरपूर प्रयोग करता है।

भेंटवार्ता या साक्षात्कार हिंदी साहित्य की स्थापित विधा है जिसमें रचनाकारों ने विपुल सर्जना की है। साहित्य की तरह आकाशवाणी में भी साक्षात्कार एक आवश्यक विधा के रूप में स्वीकृत है। साक्षात्कार मूलतः वाचिक अभिव्यक्ति है जो पूरी तरह से आकाशवाणी के दबाव से ही विकसित हुई है। आकाशवाणी में विविध यंत्रों की सहायता से किसी विशेष व्यक्ति के साक्षात्कार की रिकार्डिंग और उसके प्रसारण की निश्चित व्यवस्था है। प्रारंभ में यह कार्य आकाशवाणी द्वारा नियमित रूप से किया जाता रहा परंतु बाद में इसकी प्रमाणिकता एवं लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए लिखित रूप में इसे

संरक्षित करने की परंपरा शुरु हुई जो कालांतर में साक्षात्कार विधा के नाम से जानी गई। अतः यह स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य को साक्षात्कार की विधा आकाशवाणी की देन है और हिंदी साहित्य को इसके लिए ऋणी होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अगर हम हिंदी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में आकाशवाणी के अवदान का विश्लेषण करें तो निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं—

1. साहित्य में रोज़मर्रा के जीवन की भाषा का विकास आकाशवाणी ने किया है। आकाशवाणी में कहानी के 'नैरेशन' को 'साउण्ड इफेक्ट्स' में परिवर्तन किया जाता है। जहाँ-जहाँ नाटकीयता होती है, वहाँ-वहाँ कथोपकथन का प्रयोग किया जाता है।

2. वार्ता, रेडियो रूपक, एकांकी एवं साक्षात्कार जैसी साहित्यिक विधाओं का जन्म अधिकांशतः आकाशवाणी के दबाव से हुआ है जो आगे चलकर साहित्यिक विधा के रूप में मान्य हुई। इसके अतिरिक्त कहानी, कविता, नाटक आदि विधाओं की भाषा एवं शिल्प पर आकाशवाणी ने प्रभाव डाला है। जो साहित्य आम आदमी तक नहीं पहुँच पाता था वह आकाशवाणी के माध्यम से उन तक पहुँचा।

3. सबसे बड़ा योगदान आकाशवाणी का भाषा के स्तर पर है। आम आदमी की भाषा का प्रयोग आकाशवाणी ने अपने कार्यक्रमों में किया। यहाँ तक कि समाचार से लेकर साहित्य के प्रसारण तक कविता, कहानी, नाटक आदि में भाषा के स्तर को ध्यान में रखा। इसका असर यह हुआ कि आम आदमी का झुकाव आकाशवाणी के प्रति दिनों-दिन गहराता गया। यानी एक तरह से आकाशवाणी का प्रसारण आम आदमी के लिए अनिवार्य हो गया। आकाशवाणी के कार्यक्रमों को एक बुद्धिजीवी समझता है उसी तरह एक आम आदमी भी

समझता है। जहाँ उनके कार्यक्रम पसंद नहीं आए, उसकी शिकायत भी की। प्रसारणकर्ताओं को यह अहसास हुआ कि आकाशवाणी से आम आदमी जुड़ा हुआ है।

4. लोक साहित्य के प्रसारण में आकाशवाणी का विशेष योगदान माना जा सकता है। लोकगीत गायकों की संख्या बढ़ी तो आकाशवाणी के माध्यम से। आकाशवाणी के इलाहाबाद केंद्र से जुड़े साहित्यकार श्री युक्तिभद्र दीक्षित शोधार्थी द्वारा 'आकाशवाणी का अवदान' विषय पर ली गई एक भेटवार्ता के दौरान बताते हैं, "शारदा सिन्हा, विन्ध्यवासिनी देवी, पूरन दास बाऊल, निर्मलेन्दु चौधरी, रामकैलाश, लल्लू बाजपेयी आदि गायकों की पहचान बनी तो आकाशवाणी के माध्यम से। सुमित्रानंदन पंत, रामकुमार वर्मा आदि लेखकों सहित अन्य कई अच्छे लेखकों की रचनाओं को रेडियो-रूपांतर कर आकाशवाणी इलाहाबाद से प्रसारित किया गया। इस केंद्र ने कई अच्छे लेखकों को जन्म दिया है।"[5]

5. साहित्य के प्रकाशन की एक शैली है और आकाशवाणी के प्रसारण की एक अलग शैली है। दोनों में बहुत अंतर है; जैसे रामचरित मानस के राष्ट्रीय प्रसारण का एक अलग महत्व है। नीति वाक्य, महापुरुषों के वचनों आदि का प्रसारण एक अलग शैली से किया जाता है। आकाशवाणी द्वारा एक निर्धारित समय सीमा के भीतर पूरी रचना का प्रसारण किया जाता है। आकाशवाणी ने मात्र गंभीर साहित्य का ही प्रसारण नहीं किया बल्कि जन सामान्य की रुचि को ध्यान में रखकर हल्के-फुल्के साहित्य का भी प्रसारण किया। आकाशवाणी ने अपने श्रोताओं का विशेष ध्यान दिया जो एक महत्वपूर्ण बात है।

6. जिस प्रकार भारत को गुलामी से मुक्त कराने में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, वैसे ही स्वातंत्र्योत्तर साहित्य को विकसित करने का श्रेय आकाशवाणी को जाना चाहिए। जिस प्रकार मुद्रित मीडिया के सक्रिय सहयोग के बिना हम आज़ादी की लड़ाई जीत पाने में इतनी जल्दी कामयाब नहीं हो पाते, उसी प्रकार आकाशवाणी के अवदान के

बिना स्वातंत्र्योत्तर साहित्य का विकास इतनी तेज़ी से हो पाना संभव नहीं था।

7. आकाशवाणी में तत्कालिकता का बड़ा महत्व होता है। रेडियो साहित्य श्रोताओं को सिर्फ़ एक बार सुनने को मिलता है। स्थाई प्रभाव रेडियो से चिह्नित होता है। संक्षिप्तता का इसमें विशेष महत्व होता है। कम समय में आपको अपनी पूरी बात कहनी पड़ती है। जो आपका लक्ष्य है वह अनुपस्थित होता है और उसे पूरा करना पड़ता है। श्रोता सामने नहीं होता है। अनुपस्थित का संबोधन कल्पनाशील बना सकता है। जो लेखक अपने पाठक को ध्यान में रखकर रचना करते हैं वे निश्चित रूप से कल्पनाशील लेखकों की श्रेणी में आते हैं। आकाशवाणी पर भी वही साहित्य प्रभावी होता है जो श्रोता को सामने रखता है।

8. आकाशवाणी द्वारा प्रसारित रचनाओं में 'ध्वनि' का विशेष महत्व है। रेडियो के कलाकार को यह पता होता है कि इसका माध्यम ध्वनि है। लिखित साहित्य में ध्वनि का कोई विशेष महत्व नहीं होता है। शब्दों का जो नाद है इसके बिना रेडियो-साहित्य अधूरा है। उसे चिह्नित करने में आकाशवाणी की असाधारण भूमिका होती है।

9. लिखित साहित्य का पाठक अपनी सुविधानुसार और समयानुसार पढ़ता है, जबकि रेडियो के श्रोताओं को रेडियो के समय के अनुसार साहित्य को सुनना पड़ता है। लेखक वही है जो पाठक को सर्जक बना दे। रेडियो का वही साहित्य प्रभावी होगा जो श्रोता को सर्जक बना सकता है। यानी कि एक सृजनशील सहभागिता की संभावना हमेशा रहती है रेडियो में और आज का टेकनीक इसे और भी आसान और बेहतर बना दिया है। सब विधाओं का ग्रहण तो आकाशवाणी ने किया है। निबंध को वार्ता का रूप देकर इसे प्रसारित किया जा सकता है लेकिन साहित्य की तमाम विधाओं को ज्यों का त्यों प्रसारित नहीं किया जा सकता।

10. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में भाषा के स्तर पर आकाशवाणी का अवदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारे भाव का संवाहक भाषा है। जिस सहज और सरल ढंग से हम अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं, उतनी ही हमारी अभिव्यक्ति, सुनने वाले के मन पर प्रभाव डालती है। कोई भी वक्ता यह चाहता है कि सुनने वाला बात को समझे और उस पर उसका अपेक्षित प्रभाव पड़े, इसी तरह आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य सरल, सुगम और सहज होता है। आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य में गंभीर भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। आकाशवाणी के अधिकांश केंद्र बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करते हैं।

11. आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य की शैली अत्यंत आकर्षक होती है। पहले वाक्य को सुनकर ही श्रोता पूरा साहित्य सुनने के लिए आतुर हो जाता है। शैली के विशेषता के कारण ही आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य लिखित साहित्य से अलग होता है। चूँकि आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य सिर्फ एक बार ही सुना जा सकता है, इसलिए आकाशवाणी का साहित्यकार अपनी सहज भाषा और प्रवाहमान शैली के कारण श्रोता को आरंभ से अंत तक अपनी ओर आकर्षित किए रहता है, बाँधे रहता है और वह जिस धारा में बह रहा है उसी धारा में अपने श्रोता को भी बहाए लिए चलता है।

12. आकाशवाणी के विभिन्न केंदों ने न केवल हिंदी अपितु अन्य क्षेत्रीय भाषाओं एवं उनके साहित्य को पूर्णरूपेण संरक्षण प्रदान कर उनका संवर्धन भी किया है। आकाशवाणी के लगभग सभी केंद्र हिंदी साहित्य की सभी विधाओं को समुचित स्थान दे रहे हैं, इससे हिंदी साहित्य के विकास की संभावनाएँ बनी हुई हैं। भारत के प्रायः सभी आकाशवाणी केंद्र हिंदी के साहित्यकारों को साहित्य के प्रचार-प्रसार के प्रचुर अवसर प्रदान कर रहे हैं।

13. आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य के विषय में यह कह देना उचित लगता है कि उनके विषय साहित्यकार नहीं निश्चित करते, आकाशवाणी कार्यक्रमों के रूप-रेखा तैयार

करने वाले अधिकारी करते हैं। अतः आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य आकाशवाणी के नीति के अनुकूल ही रचा जाता है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी ने साहित्य के हर क्षेत्र में विकास के लिए अपना योगदान किया है। आकाशवाणी के माध्यम से साहित्यकारों को ख्याति मिली। उनका साहित्य आम लोगों तक पहुँचा। जो लोग जिस साहित्य को पढ़ नहीं पाते वह साहित्य उन तक आकाशवाणी के द्वारा सुनने के लिए पहुँच गया। इस तरह के साहित्य को सुनने के लिए अलग से कोई समय निकालने की आवश्यकता नहीं होती थी। घर में बैठे-बैठे स्तरीय साहित्य निरक्षर श्रोता को भी सुनने को मिल जाता था। आकाशवाणी का यह अवदान काफ़ी महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए।

इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.) के अवकाशप्राप्त प्रो. रामबहादुर वर्मा, संपादक 'इतिहासबोध' से दिनांक 03. 01. 2006 को उनके निवास स्थान पर इस शोधार्थी का साक्षात्कार हुआ। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी के अवदान विषय पर अपना मत प्रकट करते हुए प्रो. वर्मा ने बताया, "मेरे ख़्याल से साहित्य को जन साधारण तक ले जाने के लिए आकाशवाणी की अहम एवं असाधारण भूमिका मानी जा सकती है। यहाँ तक कि जो निरक्षर लोग हैं, जो लिख-पढ़ नहीं सकते हैं उन तक साहित्य पहुँचाने का श्रेय आकाशवाणी को है। इसके अतिरिक्त आज भी जो मनोरंजन का उदात्तीकरण है उसमें आकाशवाणी की बहुत ही निर्णायक भूमिका शुरू से ही रही है।"[6]

आकाशवाणी के मथुरा केंद्र से जुड़े एक साहित्यकार डॉ. कृष्णावतार उमराव 'विवेकनिधि' आकाशवाणी के अवदान पर अपना विचार व्यक्त करते हुए अपने पत्र में लिखते हैं, "हमारा देश प्राचीन काल से ही अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक कलात्मक एवं ऐतिहासिक निधियों का धनी रहा है। किसी भी देश के बहुमुखी विकास में

जहाँ कृषि, विज्ञान, वाणिज्य एवं शिक्षा आदि का महत्व है। वहीं जीवन की अधुनातन आवश्यकताओं की पूर्ति में आकाशवाणी का भी अपना एक विशिष्ट योगदान रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व आकाशवाणी का क्षेत्र सीमित था किंतु स्वतंत्रता के पश्चात इसका उत्तरोत्तर विकास होता गया और अब यह जन-जन की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में अपनी पहचान बना चुका है। जहाँ तक हिंदी साहित्य के विकास की बात है, आकाशवाणी द्वारा कविता, नाटक, रूपक, झलकी, वार्ता, कवि गोष्ठी, फ़िल्म संगीत एवं लोक संस्कृति, लोक कथाओं, कहानियों एवं विचार गोष्ठियों के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में निरंतर योगदान बढ़ता जा रहा है। मीडिया के उत्तरोत्तर विकास से अब दुनिया सिमट कर रह गई है। अब हम विश्व की अनेक संस्कृतियों एवं भाषाओं से परिचित होते जा रहे हैं। यह बड़े गौरव की बात है कि हिंदी को विश्व के विभिन्न देशों में आकाशवाणी के माध्यम से जन आकांक्षाओं के अनुरूप स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अब दुनिया के विभिन्न देशों ने नित नए-नए टी. वी. चैनलों में हिंदी को विश्व भाषा के रूप में स्थान दिलाने में सराहनीय कदम उठाया है। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में भी अब हिंदी को गौरवशाली स्थान मिल चुका है।

जहाँ तक आकाशवाणी के मथुरा केंद्र की बात है, इसकी स्थापना 29 जनवरी सन् 1967 को हुई थी। आकाशवाणी के इस केंद्र की स्थापना ब्रज क्षेत्र की लोकसंस्कृति, ब्रजभाषा एवं यहाँ के ऐतिहासिक व धार्मिक स्थलों को उद्‌घाटित एवं प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ साहित्यिक एवं सामाजिक आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु की गई थी। साहित्यिक गतिविधियों के रूप में मथुरा जनपद के स्वातंत्र्योत्तर स्वर्गीय कवियों में जोशी राधेश्याम द्विवेदी, दाऊदयाल गुप्त, दीनानाथ चतुर्वेदी, आचार्य वनमाली भारद्वाज, राजेश दीक्षित, रामनारायण अग्रवाल, डॉ. शरणबिहारी गोस्वामी, राधेश्याम प्रगल्भ, नरेन्द्र मित्र, काका हाथरसी, यमुना प्रसाद प्रीतम, प्रो. सव्यसाची, डॉ. ब्रजबाल, डॉ. राधेश्याम

अग्रवाल, कैलाशचन्द्र कृष्ण, सत्येश पाठक, डॉ. मोहन लाल शर्मा एवं वर्तमान में प्रो. जय कुमार मुदगल, डॉ. भगवान सहाय पचौरी भवेश, डॉ. मनोहर अभय, मदन मोहन उपेन्द्र, डॉ. सुरेश पाण्डेय, डॉ. कन्हैया लाल पाण्डेय, डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, डॉ. रमाशंकर पाण्डेय, डॉ. रामनिवास अधीर, डॉ. अनिल गहलौत, डॉ. के. उमराव विवेकनिधि, पं0 ललित कुमार बाजपेयी उन्मुक्त, कुन्दनलाल पंकज, शमीम मथुरावी, राधागोविन्द पाठक, निशेष जार, डॉ. सईद अहमद सईद, डॉ. सोहन लाल शीतल, होरीलाल प्रेमी, लाखन सिंह हलचल, मदन मोहन शर्मा अरविन्द, देवकी नन्दन कुम्हेरिया, महेन्द्र हुमा, सन्तोष कुमार सिंह, देवी प्रसाद गौड़, डॉ. ताराचन्द शर्मा, डॉ. दिनेश पाठक शशि, डॉ. ब्रजभूषण, अनुपम गौतम, जितेन्द्र विमल, कृष्ण मुरारी शर्मा व्यथित, मनवीर मधुर, ब्रजेश उमंग, डॉ. सरोज अग्रवाल, डॉ. जगदीश व्योम, डॉ. नटवर नागर, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, डॉ. सत्यदेव आजाद, डॉ. हिमांशु चतुर्वेदी, सत्येन्दु याज्ञवल्क्य, अशोक अज्ञ आदि के नाम प्रमुख हैं। कहानीकारों में ममता कलिया, डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, डॉ. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, डॉ. अचला नागर, अलका पाठक, श्रीमती शशि पाठक, श्रीमती विजय लक्ष्मी, डॉ. नुजहत आरा जुबैरी, स्व. सविता निगम, स्व. जयव्रत चटर्जी, मदन मोहन उपेन्द्र, डॉ. कृष्णावतार उमराव विवेकनिधि, कमलेश भट्ट कमल, डॉ. दिनेश पाठक शशि, डॉ. राजकुमारी पाठक, स्व. डॉ. राधेबिहारी लाल सक्सेना, पं. उमाशंकर दीक्षित, डॉ. विश्व पंकज, डॉ. विश्व विराट, पं. ललित कुमार बाजपेयी उन्मुक्त, डॉ. प्रेमदत्त मैथिल, डॉ. जगदीश व्योम, चंचल राय आदि के नाम उल्लेखनीय है।"[7]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आकाशवाणी मथुरा से लगभग सभी स्थानीय साहित्यकार जुड़े हुए थे और उनकी रचनाएँ इस केंद्र से प्रसारित होती रहीं। आकाशवाणी मथुरा ने साहित्यकारों की रचनाओं को प्रसारित कर उनके उत्साह को बढ़ाया और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में अपना अवदान देकर इसे समृद्ध किया। इसी

प्रकार आकाशवाणी के अन्य केंद्रों ने भी नवोदित एवं स्थापित साहित्यकारों की रचनाओं को अपने केंद्र से प्रसारित कर उन्हें लोकप्रिय बनया।

5.(ख). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों के विकास में आकाशवाणी अवदान

कला, संस्कृति और सूचना का मंच होने के कारण आकाशवाणी ने स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के प्रवृत्तियों के परिवर्तन और विकास में अनेक रूपों में योगदान दिया है। यह प्रतिष्ठित साहित्यकारों का मंच तो है ही, अनेक नए लेखक अपनी शुरुआत ही आकाशवाणी से करते हैं। विशेषकर छोटे शहरों के रचनाकारों के लिए आकाशवाणी की अत्यधिक प्रेरक भूमिका है। नए आंदोलनों को स्फूर्ति देने में भी आकाशवाणी का महत्वपूर्ण योगदान है।

शोध के दौरान विभिन्न आकाशवाणी केंद्रों से संबद्ध हिंदी के साहित्यकारों से मिलने के पश्चात हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि हिंदी साहित्य से जुड़े तमाम साहित्यकार आकाशवाणी से भी किसी न किसी रूप में जुड़े रहे और आकाशवाणी की माँग के अनुसार अपनी लेखनी का प्रयोग करते रहे। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों में जो भी बदलाव आया उसमें किसी न किसी रूप में आकाशवाणी का योगदान रहा। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में जिन तमाम प्रवृत्तियों का विकास हुआ और उन लोगों के द्वारा हुआ जो आकाशवाणी से जुड़े थे। आकाशवाणी की जो शैली थी, उसका प्रभाव रचनात्मकता पर पड़ रहा था। इस संदर्भ में कवि-सम्मेलनों का आयोजन होता था, इस तरह के आयोजनों की महत्वपूर्ण भूमिका स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों के विकास में मानी जानी चाहिए। किसी स्थान-विशेष पर आयोजित कवि-सम्मेलनों में भारी संख्या में श्रोता उपस्थित होते थे और इसका खूब आनंद भी उठाते थे। इस तरह के आयोजनों की महत्ता और सफलता को देखते हुए आकाशवाणी ने अपने

स्टूडियो में कवि-सम्मेलनों का आयोजन करना आरंभ किया। इसमें कभी प्रत्यक्ष रूप से श्रोता होते थे तो कभी नहीं। परंतु इसकी पहुँच गाँवों-नगरों तथा दूरदराज के कस्बों तक हुई तब यह आकाशवाणी के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी गई और फिर नियमित रूप से काव्य-सम्मेलनों का आयोजन और प्रसारण होने लगा।

चूँकि आकाशवाणी एक सरकारी माध्यम है और इस माध्यम के अपने कुछ क़ायदे-कानून हैं जो इसकी आचारसंहिता में वर्णित है। उसके आधार पर ही आकाशवाणी के लेखक अपनी रचना कर सकता है। यदि हम यह कहें कि आकाशवाणी के लेखकों को अपनी अभिव्यक्ति के लिए पूरी आज़ादी नहीं है तो ग़लत नहीं होगा। क्योंकि कई बार लेखकों को रिकार्डिंग के समय अपनी पाण्डुलिपि को काट-छाँट करनी पड़ती है। प्रस्तुतकर्ता की यह कैंची कभी-कभी लेखक के लिए असहनीय होती है, लेकिन यह मजबूरी सबकी है। लेखकीय आज़ादी अपनी अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। स्वतंत्रता के बाद लिखने और पढ़ने की आज़ादी मिली है पर क्या वह हर स्थान पर लागू है यह विचार करने की बात है। न्यायमूर्ति एच. आर. खन्ना अपने लेख 'पढ़ने की आज़ादी' में लिखते हैं– "पढ़ने की आज़ादी बुनियादी आज़ादियों में से एक है। इसके बिना दूसरी आज़ादियों की कोई वक्त नहीं रहती और वे शीघ्र ही निष्प्राण हो जाती हैं। संविधान की 19वीं धारा में भाषण और अभिव्यक्ति के जिस स्वातंत्र्य की चर्चा है, उसी में पढ़ने आज़ादी भी निहित है। अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य तो तभी मानी रखता है, जब आप जो कुछ लिख-छापकर अभिव्यक्त करें, उसे जो जो लोग पढ़ना चाहें, वे पढ़ सकें, उस पर राज्य या समाज कोई प्रतिबंध न लगा दे। इसलिए यों दोनों आज़ादियाँ एक-दूसरे से ऐसी गुँथी हैं कि अलग नहीं की जा सकतीं। ये एक-दूसरे पर निर्भर हैं। वास्तव में ये एक ही सिक्के को दो पहलू हैं। एक के न रहने पर, दूसरी आज़ादी बेमानी हो जाती है। उस अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की क्या सार्थकता जब लिखे हुए पढ़ने की आज़ादी ही न हो। इसी प्रकार की आज़ादी भी उस

अवस्था में बेमानी हो जाती है जब विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ही न हो। विचार-प्रक्रिया के विकास के लिए, मानसिक अनुभव और ज्ञान की सीमाएँ बढ़ाने के लिए और मानवीय व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हमें किसी भी विषय को सारे दृष्टिकोण से देखने की सुविधा मिले। किताबें, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, टेलीविज़न, रेडियो और व्याख्यान एवं खुली बहस आदि माध्यमों से ही विचारों का संप्रेषण संभव है। लोकतंत्र से विचारों पर किसी प्रकार का अनुशासन लगाने की संगति नहीं बैठती। सत्ताधारियों को यह तय नहीं करना है कि लोगों में कौन-से विचार प्रचारित हों अथवा कौन-सा दृष्टिकोण अपनाएँ।"[8]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि लेखक की आज़ादी अत्यंत आवश्यक है। जब तक उसे पूरी तरह से लिखने की आज़ादी नहीं दी जाती है तब तक वह अपनी अभिव्यक्ति में ईमानदारी नहीं बरत सकता है। और यही आज़ादी पूरी तरह से आकाशवाणी द्वारा नहीं मिलने के कारण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों के विकास में आकाश-वाणी की महत्वपूर्ण भूमिका रेखांकित की जा सकती है। किसी भी लेखक में उसकी एक अपनी निजी बोध और उसमें सहज बुद्धि होती है। यदि किसी भी लेखक को उसके स्वेच्छानुसार निर्णय करने का अवसर न दिया जाए तो उसका वह विचार प्रस्फुटित होने से पहले ही मुरझा जाएगा और उसके मौलिक विचारों से लोग वंचित रह जाएँगे। जब देश स्वतंत्र हुआ और आकाशवाणी सरकारी नियंत्रण में आया तो देश, समाज और सरकार के हित के लिए अचार-संहिता का निर्माण हुआ और इस अचार-संहिता के आधार पर ही लेखकों ने अपनी कलम को प्रयोग करना शुरू किया।

स्वतंत्रता के पूर्व के साहित्यकारों के सामने एक लक्ष्य था कि देश को स्वतंत्र कराना है। स्वतंत्रता के बाद देश के पुनर्निर्माण का लक्ष्य स्वाभाविक रूप से सामने

होना चाहिए था, आज़ादी के बाद लोगों का मोहभंग हुआ व्यावसायिकता हावी होती चली गई। नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ और जीवन-मूल्यों का विघटन। साहित्य-रचना कभी जीवन का आदर्श ही मात्र हुआ करती थी, इसे लोग समाज-सेवा के रूप में ही स्वीकार करते थे। बाद में यह एक पेशा हो गया और लोग जीवन की सचाइयों को छुपाकर साहित्य-रचना करने लगे। आकाशवाणी के साथ भी यही हुआ। आकाशवाणी के लेखकों के विचारों में भी इस तरह के परिवर्तन देखने को नहीं मिलते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भी आकाशवाणी से जुड़े लेखक आकाशवाणी के अचार-संहिता के अनुसार ही लेखन करते रहे। देश के स्वतंत्रता मिलने के बाद समाज में काफ़ी बदलाव आया। स्वतंत्रता के पूर्व जातीय एकता, देशप्रेम तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति जो लोगों का आकर्षण था, उसे क़ायम नहीं रखा जा सका। देश के नेताओं ने आज़ादी मिलने के तुरंत बाद ही अपने स्वार्थ-पूर्ति में लग गए। इसका अंजाम हुआ देश का विभाजन। देश-विभाजन के समय जो जातीय हिंसा भड़की, उसने लोगों के मन में घृणा के भाव भर दिए और देश-प्रेम स्वार्थ-प्रेम में बदल गया। राजनीति के चक्रव्यूह में फँसी आम जनता यह देख रही थी कि सारा वातावरण ही दूषित हो गया है। ऐसी स्थिति का असर साहित्यकारों पर पड़ना स्वाभाविक था। आकाशवाणी सरकारी नियंत्रण में रहने के कारण उसने अपने साहित्यकारों से वही कुछ लिखवाया जो वह चाहता था। व्यक्ति से राष्ट्र ऊपर होता है। किसी भी प्रजातंत्रात्मक देश की जनता ही शासक होती है। शासक वर्ग का यह परम कर्तव्य होता है कि वह जनता के कल्याण और हित के लिए ही कार्य करे। देश का शासन सुचारु रूप से चले, इसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि आकाशवाणी जैसे माध्यमों का सहारा सरकार ले। आम जनता के हित के लिए निर्भीक, निष्पक्ष और बहुजन हिताय के पोषक सामाजिक कार्यक्रमों का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया जाता रहा है। यह देश सर्व प्रभुतासंपन्न गणराज्य है, किसी विशेष व्यक्ति की सत्ता नहीं है।

स्वतंत्रता के पूर्व तक हिंदी साहित्य का रूप सैद्धांतिक रहा है। सिद्धांतनिरुपण में भी युग और समाज के बदलते हुए रूपों तथा भावों के साथ-साथ बदली हुई साहित्यिक विषय-वस्तुओं और शैलियों को आधार मानकर चलने की प्रवृत्ति न थी, बल्कि ग्रंथों को आधार मानकर निरूपित साहित्य-शास्त्रीय सिद्धांतों का ही खंडन और मंडन चलता आ रहा था। इन सिद्धांतों में गतिशीलता नहीं थी, स्थिरता थी। व्यवहारिक साहित्य का मार्ग प्रशस्त नहीं था। आकाशवाणी के कारण ही स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों में विकास हुआ और आकाशवाणी के दबाव में आकर साहित्यकारों ने नई प्रवृत्तियों को जन्म दिया। जब साहित्यकार आकाशवाणी से जुड़े तब कहानी और कविता के अतिरिक्त सामयिक राजनीति, समाज, धर्म आदि पर खुलकर विचार करने की प्रवृत्ति के दर्शन हुए। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में नाटकों के लिए आकाशवाणी के कारण नई शैली का मार्ग खुला, वार्ता, एकांकी, प्रहसन, झलकी, रिपोर्ताज, परिचर्चा, साक्षात्कार आदि विधाओं में काफ़ी परिवर्तन हुआ। हम यह कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य की आत्मा में उभार और विस्तार आया। बल्कि हम यह भी कह सकते हैं कि आकाशवाणी के कारण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य को आत्मा मिली। हिंदी साहित्य को इस बात की ज़रूरत थी कि उसे नए-नए मानदंड मिले, वह ज़रूरत पूरी हुई और इन मानदंडों का सूत्रपात हुआ। "भारतेन्दु-कालीन समाज में तीनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं—जीवन में और साहित्य में भी। पुरातन में आस्था रखने वाले अँग्रेज़ सभ्यता को अपवित्र समझकर घृणा करते थे। वे अपने रूढ़ धर्म को परिसीमित दुर्ग में बंद कर युग और अन्य देशों के धर्मों के प्रवाह से अछूता रखना चाहते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर वे लोगों को विलायत-गमन से भी रोकते थे। उनकी दृष्टि में सामुद्रिक यात्राएँ मनुष्य को धर्मच्युत करती थीं।

दूसरा दल वह था जो अँग्रेज़ी सभ्यता की चकाचौंध में आत्म-विस्मृत हो

गया था। अँग्रेज़ी सभ्यता के मौलिक तत्वों को समझे बिना ये लोग उसकी ऊपरी तड़क-भड़क, आचार-व्यवहार और खान-पान को अपनाने लगे था, मदिरापान में प्रवृत्त हुए थे। अँग्रेज़ी नर-नारियों को मुक्तरूप से घूमते-घामते, खाते-पीते और आपस में मिलते देख इन लोगों ने भी पड़ोसियों की स्त्रियों से परिचय प्राप्त करना चाहा, मुक्त विहार की कामना की। इस प्रकार धर्म और नीति का विरोध होने लगा। ये लोग अपने प्राचीन ग्रंथों, रीति-रिवाजों और सभ्यता को निकम्मी कहकर नई सभ्यता में स्वच्छंदता से बहने लगे।

तीसरा दल वह था जो इन दोनों प्रकार की अतिवादियों का विरोधी था। राजा राममोहन राय हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म का अध्ययन करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मध्यकालीन मनोवृत्ति, सामाजिक

व्यवस्था और विचार तथा कार्य-प्रणाली भारतवर्ष को एक करने तथा उसकी रक्षा करने में असफल सिद्ध हो चुकी है। अतएव उन्होंने अपने व्यक्तित्व, विचारों और आंदोलनों द्वारा भारतीय मस्तिष्क को पुरातनवाद से मुक्त किया और वर्तमान में कार्य करने का अवसर तथा क्षेत्र देकर उसके सामने भावी महानता का आदर्श रखा। मानवता के साथ-साथ भारतवर्ष का पुनरुत्थान उसका उद्देश्य था और अँग्रेज़ी छत्र-छाया में उनका अविचल विश्वास था। उनका कथन था कि भारत का ब्रिटिश जाति के अधीन होना एक सौभाग्य का भात थी और इसके कारण भारतीय जनता को शीघ्र ही अँग्रेज़ी के से धार्मिक और नागरिक अधिकार प्राप्त हो जाएँगे।

राजा राममोहन राय ने सतीप्रथा जैसी पुरानी प्रथाओं के अमानवीय रूप को बंद कराया।

राजा राममोहन राय ने अँग्रेज़ी सभ्यता को पूरी तौर पर अपनाया—उसकी ऊपरी तड़क-भड़क को नहीं, उसकी भीतरी विशेषताओं को। किंतु उनमें भारतीय अतीत-गौरव के प्रति कहीं अभिमान लक्षित नहीं हुआ। यह कार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके आर्यसमाज ने किया। स्वामी जी नवीनता के विरोधी नहीं थे, वे इसे अपरिहार्य समझते थे। अँग्रेज़ों से मिले विचारों और ज्ञान की नवीन उपलब्धियों को देश के लिए हितकर समझते थे, किंतु उनमें देश की संस्कृति और सभ्यता के प्रति बड़ा अभिमान था, अतएव उन्होंने वेदों की नई व्याख्या करके यह सिद्ध किया कि ज्ञान की वे सभी बातें हमारे वेदों में उपलब्ध हैं। यह नवीन सभ्यता हमारी सभ्यता से आगे नहीं है। यह सभ्यता तो हमारे यहाँ बहुत पुरानी है। छुआछूत, जाति-पांति, देवी-देवताओं की भरमार, अनमेल तथा बाल-विवाह. ये सब मध्यकाल के कुफल हैं। ये हमारे मौलिक सामाजिक और धार्मिक रूप नहीं। स्वामी जी ने अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपने शासन की उच्चता का प्रचार किया। इन्होंने कहा——

> कोई कितना ही करे परंतु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतांतरों के आग्रह-रहित, अपने और पराए का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।

आर्यसमाज के शिक्षा-प्रचार, जाति-भेद और बाल-विवाह, विधवा-विवाह के प्रचार, अनाथालयों की स्थापना और शुद्धि तथा संगठन के आंदलनों के द्वारा हिन्दू समाज में एक नवीन जागृति उत्पन्न कर दी, जिसके कारण स्वामी दयानन्द सरस्वती को राष्ट्रीय उत्थान का पथ-प्रदर्शक कहना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वामी जी ने राजनीतिक और सामाजिक दोनों प्रकार की जागृति पैदा की, जिसमें नए प्रकाश के

साथ स्वदेशाभिमान भरा था। इनके अतिरिक्त गोपालहरि देशमुख, महादेव गोविन्द रानाडे, जी. वी. जोशी, बाल गंगाधर तिलक, बंकिम चटर्जी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, एम. जी. चन्दावरकर, जी. के. गोखले आदि ने ब्रिटिश शासन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपनी प्राचीन संस्कृति और इतिहास-परंपरा की महत्ता पर ज़ोर दिया और जनता के राष्ट्रीय तथा जन्मसिद्ध अधिकारों की माँग उपस्थित की।

साहित्य में भी समाज की स्थिति के सामानान्तर प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं। भारतेन्दु और उनके सभी सहयोगी उपर्युक्त तीसरे वर्ग के नेताओं की भाँति समाज, धर्म और साहित्य में अपनी राष्ट्रीय परंपरा के आधार पर नवीन उपलब्धियों को अपनाने के समर्थक थे। तत्कालीन रचनात्मक और आलोचनात्मक साहित्यों में इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।"[9]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद तक अँग्रेज़ी सभ्यता भारतीय सभ्यता पर हावी रही और साहित्यकार भी उससे अछूते नहीं रहे। परंतु आकाशवाणी से जुड़े साहित्यकारों के साथ यह बात दिखाई नहीं देती है कि वे भी उसी धारा-प्रवाह में चल रहे थे। क्योंकि आकाशवाणी के लेखकों के सामने कोई विकल्प नहीं था। उन्हें आकाशवाणी के आचार-संहिता का पालन करना अत्यंत आवश्यक था। वे वही कुछ लिखते जो आकाशवाणी के अधिकारी उनसे लिखवाना चाहते। ऐसा भी नहीं था कि आकाशवाणी से जुड़े साहित्यकारों के विचारों, कल्पनाओं आदि का कोई महत्व ही नहीं था। परंतु दबाव तो ज़रूर था कि आचार-संहिता का पालन करें। यही कारण था कि राष्ट्रीय उत्थान के लिए कविताएँ, कहानियाँ, वार्ताएँ, झलकियाँ आदि के साथ-साथ नाटकों की रचना काफ़ी संख्या में हुईं। जहाँ पहले के विषय थे- राजा-रानी, महाभारत, पुराण, इतिहास आदि वहीं स्वतंत्रता के बाद की रचनाओं में देश-प्रेम, अछूतोद्धार,

विधवा-विवाह, बाल-विवाह आदि विषयों को साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में स्थान देना शुरू किया। ऐसा कभी नहीं हुआ है कि आकाशवाणी से कभी भी ऐसी कोई रचना प्रसारित हुई हो जिससे समाज का कोई वर्ग आहत हुआ हो।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद जातीय दंगे हुए और इस कथानक पर कई कहानियाँ लिखी गई, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुईं, लेकिन इस तरह की कहानियों को आकाशवाणी ने प्रसारित कभी नहीं किया है। इस तरह की घटनाएँ समाज में घटती रहीं पर आकाशवाणी के कार्यक्रम इस पर मौन रहे। आकाशवाणी ने वैसे साहित्य का प्रसारण किया जिसे सुनकर श्रोताओं के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में एक युग-दृष्टि उभरी है और वह युग-दृष्टि व्यक्ति-सापेक्ष है। इसलिए प्रत्येक साहित्यकार अपने संस्कार और दृष्टि के अनुसार साहित्य के विषयों को चुना और आकाशवाणी की विधा के अनुरूप अपनी लेखनी का प्रयोग किया। जो साहित्य आकाशवाणी से प्रसारित हुआ है वह साहित्य के उद्देश्य के अनुरूप पाया गया है। "साहित्य के उद्देश्य के संबंध में विचारक मुख्यतया दो ढंग से सोचते हैं— (1) साहित्य का उद्देश्य महान आदर्शों, सदवृत्तियों का चित्रण और उनका प्रसार करना है। साहित्य वहीं ऊँचा होता है जिसमें मानव-जीवन के लिए कोई महत आदर्श चित्रित हो, जिसमें कोई महान उद्देश्य सन्निहित हो। ये आदर्श और संदेश, युग और देश के अनुकूल परिवर्तनशील भी हो सकते हैं और प्राचीन मानव-मूल्यों पर आधारित होने के कारण रूढ़ और स्थिर भी। (2) साहित्य का उद्देश्य किसी आदर्श, किसी आंदोलन का प्रचार और प्रसार नहीं है, उसका मूल उद्देश्य आनंद प्रदान करना है।"[10]

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि साहित्य वह है जिसका उद्देश्य महान हो और वह मानव-जीवन के हित के लिए रचा गया हो। इसमें ऐसा आदर्श हो जिसमें युगबोध

हो और पुरानी परंपराओं के साथ तालमेल भी हो। यह आदर्श मात्र प्रचार या प्रसार के लिए रचित नहीं हो बल्कि मानव को आनंद देने वाला भी हो। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य ऐसे ही हैं। मनुष्य में हर प्रकार की भावनाएँ होती है। ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि सभी प्रकार की कुभावनाएँ भी मनुष्य के भीतर विद्यमान रहती हैं। यदा-कदा अवसर मिलने पर ये दुर्भावनाएँ सामने आ जाती है। पर मनुष्य एक विवेकशील प्राणी होने के नाते वह इसे दबाने का प्रयत्न करता रहता है। इस तरह के विवेक को उजागर करने में आकाशवाणी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। "'सृष्टि की साँझ और अन्य नाटक' में संगृहीत पाँचों काव्य नाटकों में कवि ने अपने युग की समस्याओं को ही चित्रित किया है। सृष्टि की साँझ में उसने युद्ध समस्या को अपना विषय बनाया है। हम शांति का नाम लेकर युद्ध में प्रवृत्त होते हैं, लेकिन हाथ लगती है सदा अशांति ही। नाटककार ने चित्रित किया है कि नेताओं की अनुदार नीति एवं अहम् भावना के कारण युद्ध होते हैं। युद्ध समस्या के संबंध में लेखक का निष्कर्ष है कि जब तक मानव के अंतर में रहने वाला दानवत्व नहीं मरता, जब तक एकाधिकार एवं स्वार्थ भावना का नाश नहीं होता, तब तक संसार युद्ध मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि

मानवता की आशा है केवल सत्य, प्रेम,
मानवता के संबल हैं केवल न्याय, क्षमा।

लौह देवता में यंत्र की समस्या है। मनुष्यों ने सुख-सुविधाओं की आशा में इस युग को जन्म दिया था, किंतु चारों ओर भूख, प्यास, बेकारी, महामारी आदि के दृश्य देखने को मिलते हैं। इस नाटक में यंत्र युग के विकास का चित्र उपस्थित करते हुए कवि ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि समाज के दुखों का उत्तरदायित्व यंत्रों पर नहीं, मानव समाज पर है।"[11]

वस्तुतः सचाई यही है कि मनुष्य ने अपने हित के लिए यंत्रों का निर्माण किया है और एक समय ऐसा आता है कि उन यंत्रों के कारण मनुष्य की जीवन समाप्त हो जाता है। आधुनिक युग में मनुष्य अपनी सुख-सुविधाओं के लिए तेज रफ़्तार से यंत्रों का निर्माण आरंभ किया परंतु उन यंत्रों के कारण मनुष्य का नाश भी तेज़ी से संभव हो सका है। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि लेखन की प्रवृत्ति में आकाशवाणी के कारण काफ़ी विकास हुआ है। "आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए समाचार लिखने का ढंग अधिक प्रभावशाली और रोचक होना चाहिए। ऐसा कदापि न हो कि श्रोता प्रसारण को सुनते ही उसे तुरंत समझ न सकें। अख़बारों में छपी ख़बरें यदि एक बार में समझ में नहीं आएँ तो उन्हें बार-बार पढ़ा जा सकता है। लेकिन रेडियो, दूरदर्शन पर कही गई बात यदि श्रोता तत्काल नहीं समझ सका तो वह शून्य में विलीन हो जाएगी और जब तक वही प्रसारण दोहराया न जाए तब तक श्रोता उसे समझ नहीं सकेगा। इसलिए, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में प्रयुक्त हर शब्द और वाक्य स्पष्ट और प्रासंगिक होना चाहिए।"[12]

यह बात भले ही लेखक ने समाचार लेखन के संदर्भ में कही है लेकिन यह साहित्य लेखन के संदर्भ में भी शत-प्रतिशत लागू होती है। आकाशवाणी ने अनावश्यक वाक्य ही नहीं, शब्दों के प्रयोग पर भी रोक लगाकर एक नई प्रवृत्ति का आविष्कार किया। और आकाशवाणी से जुड़े साहित्यकारों ने इस प्रवृत्ति को अपनाया भी। "इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में शब्द सरल होने चाहिए। ऐसे शब्दों का प्रयोग भी वर्जित समझना चाहिए जिन्हें तुरंत समझने में श्रोता को कठिनाई होती है और वाचक को भी पढ़ने में दिक़्क़त पेश आती है, जैसे 'संपृक्तावस्था', 'संश्लेष्णात्मक', आदि शब्द। इसी प्रकार ऐसे वाक्यों से भी बचना चाहिए जिनको पढ़ने में वाचक की ज़ुबान के लड़खड़ाने की संभावना हो। शब्द और वाक्यविन्यास के के अलावा रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता में व्याकरण का प्रयोग भी

सरल और सामान्य होना चाहिए। दुरूह शैली तथा क्लिष्ट व्याकरण का उपयोग कदापि न करें। रेडियो और दूरदर्शन के समाचारों में यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रोता को समाचार की ओर कान देने में कुछ सेकेण्ड लगते हैं। इसलिए, पहले कुछ सेकेण्डों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकारी न दें। यह सब परंपरागत पत्रकारिता के कुछ सिद्धांतों से ठीक विपरीत है। फिर भी, तकनीकी भेद के कारण इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में यह आवश्यक है।"[13]

टेलीविजन के आने के बाद भी आकाशवाणी के विकास की गति में किसी तरह की बाधा नहीं आई है और इसी आकाशवाणी के माध्यम से साहित्य का विकास भी रुका नहीं है। पत्र-पत्रिकाओं में बराबर सर्वेक्षण प्रकाशित होते रहते हैं, जिससे आकाशवाणी के विकास की गति का पता चलता रहता है। इस संबंध में एक अंग्रेजी का समाचार पत्र लिखता है, "Radio's reach is probably wider than television's with All India Radio reaching the remotest part of the country. It is also presumed that more people own redios than television sets, especially in India, since the transistor is so much cheaper than the idiot box and has a wide reach in the rural areas."[14]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मुद्रित पत्रकारिता में जो प्रवृत्ति प्रचलित है वह प्रवृत्ति संचार पत्रकारिता में प्रचलित नहीं है और न हो सकती है। ठीक ऐसे ही यही बातें साहित्य में भी लागू होती हैं। आकाशवाणी से प्रसारित समाचार हों या साहित्य सब विधाओं के लिए एक ही तरह की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। आज किसी के पास उपन्यास पढ़ने के लिए पर्याप्त समय नहीं है। इस कारण लघुकथा, लघु कहानी, एकांकी, लघु नाटिका, मुक्तक, झलकी आदि विविध विधाओं का जन्म हुआ है। और इस तरह की संक्षिप्तता आकाशवाणी की देन ही मानी जानी चाहिए। आकाशवाणी के

संदर्भ

1. शोध और सन्दर्भ- क्षेमचन्द्र सुमन, पृ. 194
2. प्रो. श्रीनारायण पाण्डेय, अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, पं.बं. से शोध छात्र का साक्षात्कार, दिनांक 8 जनवरी, 2006
3. नाटककार-नाट्यालोचक सिद्धनाथ कुमार- संपादक डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया, पृ. 115
4. हिन्दी शोध-तन्त्र की रूपरेखा-मनमोहन सहगल, पृ. 17
5. श्री युक्तिभद्र दीक्षित, आकाशवाणी इलाहाबाद से 3 जनवरी, 2006 को उनके निवास स्थान पर शोधकर्ता द्वारा ली गई भेंटवार्ता।
6. प्रो. रामबहादुर वर्मा, संपादक 'इतिहासबोध' से दिनांक 03. 01. 2006 को उनके निवास स्थान पर शोधकर्ता द्वारा लिए गया एक साक्षात्कार
7. आकाशवाणी से जुड़े मथुरा (उ.प्र.) के एक साहित्कार डॉ. कृष्णावतार उमराव विवेकनिधि से शोधकर्ता के साथ पत्र-वार्ता।
8. हिन्दी पत्रकारिता- दशा और दिशा-संपादक जयप्रकाश भारती, पृ. 9
9. हिन्दी आलोचना : प्रवृत्तियाँ और आधारभूमि- रामदरश मिश्र, पृ. 16-17
10. वही, पृ. 149-150
11. नाटककार-नाट्यलोचक सिद्धनाथ कुमार- संपादक- डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया, पृ. 41
12. समाचार संकलन और लेखन- नन्द किशोर त्रिखा, पृ. 139
13. वही, पृ. 139
14. The Shillong Times, Manas Choudhury, Date 17-12-2006, P. 4

****

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य ने आकाशवाणी को यदि गरिमा प्रदान की है तो आकाशवाणी ने साहित्य को प्रसार का व्यापक मंच दिया है। सात दशक पहले जब आकाशवाणी के स्वर भारत के प्रांगण में पहले-पहल बिखरे थे, तब एक नए युग की शुरुआत हुई थी। स्वतंत्रता पाने तक इसके प्रसार की रफ़्तार थोड़ी धीमी थी। विभाजन के समय नौ में से छह केंद्र भारत के हिस्से में आए थे। आरंभ में भले ही आकाशवाणी से समाचारों के प्रसारण को प्रमुखता मिली पर धीरे-धीरे साहित्य से भी इसका रिश्ता गहरा होता चला गया। आज़ादी के समय भारत में शिक्षा और साक्षरता की दर बहुत कम थी। इस स्थिति में जनता के पास पहुँचने का सबसे अधिक सशक्त माध्यम आकाशवाणी ही बना। तभी आकाशवाणी ने अपनी पहचान का नारा 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' को बनाया। जन-जन की रुचि के अनुकूल मनोरंजन, शिक्षा और सूचना को सुलभ बनाने वाला यह माध्यम साहित्य के प्रसारण का बहुत बड़ा मंच तो बना ही, इसने साहित्य की प्रवृत्तियों को विकसित एवं परिवर्तित होने में भी व्यापक सहयोग दिया। आकाशवाणी से गंभीर और लोकप्रिय दोनों प्रकार का साहित्य प्रसारित होता रहा है। भाषा और शैली की दृष्टि से आकाशवाणी के अनुरूप नए साहित्य-रूपों का विकास तो हुआ ही, प्रसारण के उद्देश्य से पारंपरिक विधाओं का रूपांतरण भी किया गया। आकाशवाणी से हिंदी और भारतीय भाषाओं के अनेक दिग्गज साहित्यकार जुड़े रहे हैं। हिंदी के जो महान साहित्यकार आकाशवाणी से जुड़े रहे, उनमें सुमित्रानंदन पंत, नरेश मेहता, जगदीशचन्द्र माथुर, सिद्धनाथ कुमार, चिरंजीत, विष्णु प्रभाकर, रामधारी सिंह दिनकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय, डॉ. नगेन्द्र आदि प्रमुख हैं।

जहाँ स्वतंत्रता के बाद आकाशवाणी ने सच्चे विकासमूलक जन संचार की भूमिका का निर्वाह किया है, वहीं इसके प्रभाव से हिंदी साहित्य की संरचना एवं शिल्प में भी परिवर्तन आया। आकाशवाणी से प्रसारित साहित्य की विविध विधाओं का रूढ़ एवं

शास्त्रीय विधान उन्हें कृत्रिम बना सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि आकाशवाणी से ऐसे काव्य-रूपक आदि अधिक प्रसारित हुए जिनकी भाषा में एक ओर गद्य की सुगंध थी तो दूसरी ओर पारंपरिक ढाँचे से मुक्त छंद विधान था। स्वतंत्रता के पश्चात आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले साहित्यिक प्रसारणों के कई रूप हैं, जिनमें नाटक, गीतिनाट्य, रूपक, वार्ता, परिचर्चा, साक्षात्कार, कवितापाठ आदि प्रमुख हैं। कविता का प्रसारण जहाँ एकल पाठ के रूप में होता रहा है, वहीं कवि-गोष्ठियों एवं कवि-सम्मेलनों का प्रसारण भी आकाशवाणी से निरंतर हुआ।

प्रस्तुत शोध के दौरान प्रथम अध्याय के अन्तर्गत स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य और आकाशवाणी का परिचयात्मक इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। इस क्रम में हिंदी साहित्य की विकास यात्रा को आदिकाल से आरेखित करते हुए रीतिकाल तक इतिवृत्तात्मक परिचय दिया गया है। आधुनिक काल के विवेचन क्रम में गद्य के विकास के कारणों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया गया है। स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की शुरुआत में गद्य के विकास पर अधिक ज़ोर रहा, जबकि काव्य का विकास बहुत गंभीरता से नहीं हो सका। वास्तव में गद्य के विकास को शासन का सहयोग और सुविधाएँ मिली, विकास के उचित साधन भी मुहैया कराए गए, जबकि काव्य का विकास केवल साहित्यकारों की निजी रुचि पर आश्रित रहा। हिंदी गद्य के विकास में ब्रिटिश शासकों के साथ-साथ अहिंदी भाषी भारतीय नागरिकों, लेखकों एवं कवियों का सराहनीय योगदान रहा है। चारण कवियों ने अपने जीवन-यापन के लिए वीर और प्रेम से संबंधित गद्य रचनाएँ की। इस काल का साहित्य सामंतीय जीवन की रंगीनियों में पला-बढ़ा, परन्तु आधुनिक युग में गद्य का विकास ही नहीं हुआ; अपितु वह अपनी चरम-सीमा पर पहुँचा।

इसी अध्याय के उत्तरार्द्ध में आकाशवाणी संबंधी विविध तथ्यों का विस्तृत विवेचन किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि भारत में प्रसारण अन्य देशों की तरह

पहले-पहल शौक़िया तौर पर अथवा प्रायोगिक रूप में शुरू हुआ। विदेशों में हुए रेडियो प्रसारण की चर्चा जब भारत में पहुँची तो इसे एक जादुई माध्यम और मनोरंजन का साधन माना गया। जिस तरह से मनोरंजन और अन्य गतिविधियों में रुचि रखने वाले लोग आज भी अपने प्रयासों से अपने क्लब स्थापित करते हैं, उसी प्रकार सन् 1923-24 में भी विभिन्न रेडियो क्लबों की स्थापना हुई और इनमें मनोरंजनात्मक दृष्टि से शौक़िया तौर पर रेडियो प्रसारण किए गए। यह स्पष्ट है कि सन् 1923-24 ई. में स्थापित रेडियो क्लबों ने ही आगे चलकर ब्रॉडकास्टिंग कंपनी का रूप लिया और उन्हें प्रसारण लाइसेंस दिए जाने पर प्रसारण व्यवस्था एक संगठन के रूप में सामने आई और भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत हुई। इसके साथ ही आकाशवाणी की उपादेयता को आरेखित करते हुए यह बताया गया है कि उसकी भूमिका सिर्फ सरकारी सूचना तंत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में भी वह गंभीर भूमिका निभाती रही है और समाज की दशा और दिशा को निर्धारित करने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हिंदी साहित्य एवं आकाशवाणी की परस्पर संबद्धता को आरेखित किया गया है। इस क्रम में सर्वप्रथम स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के चरित्र को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की संक्षिप्त जानकारी देने के साथ-साथ अभिव्यक्ति की नव भूमिका की तलाश, अभिव्यक्ति में आज़ादी की अनुभूति, सामाजिक जागरण के नव-सोपानों पर गहन रूप से प्रकाश डाला गया है। राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक क्षेत्रों के सामाजिक जागरण में आकाशवाणी द्वारा दिए गए योगदान का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। इस अध्याय में स्पष्ट देखा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य अभिव्यक्ति की नवभूमिका की तलाश है। साहित्य की हर विधा में एक गंभीर छटपटाहट दिखाई देती है। यह छटपटाहट न कह पाने की 'छटपटाहट' है, जिसे उस युग का रचनाकार किसी भी तरह से अभिव्यक्ति देने के लिए

बेचैन है। वस्तुतः यह समय साहित्य की नई विधाओं या उपकरणों की खोज का दौर है, जिसमें एक ओर पुराने साधनों का पुनर्संस्कार है, वहीं नए-नए उपकरणों की तलाश भी। यह साहित्य का वह दौर है जिसमें कई नई विधाएँ विकसित हुईं। यद्यपि इस विकास में वैयक्तिक अभिरुचि ज़्यादा दिखाई पड़ती है, फिर भी अभिव्यक्ति में नव-भूमिका की तलाश तो वहाँ देखी ही जा सकती है। कालांतर में इसी प्रवृत्ति का विकास कुछ नए साहित्य-रूपों के विकास में भी दिखाई पड़ता है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि इस आजादी की अनुभूति को साहित्य में अभिव्यक्त करने की लालसा है। स्वतंत्रता वास्तव में सिर्फ़ राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं थी, बल्कि वह मानव समुदाय की चेतना एवं उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी थी, इसीलिए साहित्य में जिस प्रकार का खुलापन आज़ादी के बाद दिखाई देता है, उतना पहले हिंदी साहित्य में कभी नहीं था।

तृतीय अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के साथ-साथ आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य के विषय में जानकारी देते हुए आकाशवाणी द्वारा कुछ विधाओं को ग्रहण तथा कुछ साहित्यिक विधाओं का विकास का विवेचन किया गया है। आकाशवाणी ने कुछ साहित्यिक विधाओं की टेकनीक में परिवर्तन कर उसे नूतन रूप प्रदान किया है। आकाशवाणी द्वारा साहित्यिक प्रसारण के क्रम में नाटकों के प्रसारण की शुरुआत साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में सर्वप्रथम लगती है। जहाँ तक वार्ता के प्रसारण की शुरुआत का प्रश्न है, इस संबंध में यह लगता है कि 'वार्ता' विधा रेडियो की ही देन है। वार्ता आकाशवाणी की एक ऐसी विधा है जिसका प्रयोग सामान्य और विशिष्ट श्रोतावर्ग के लिए प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में अक्सर किया जाता है।

आकाशवाणी ने हमारी कला और संस्कृति का प्रचार-प्रसार देश-विदेश, गाँव, नगर में की है और इस कला और संस्कृति की अमूल्य निधि को धरोहर के रूप में सँजोकर रखा है। साहित्य के क्षेत्र में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि का संप्रेषण

मुख्यतः मुद्रण माध्यम से होता है, किंतु जहाँ तक आकाशवाणी द्वारा संप्रेषण की बात है उसके द्वारा संप्रेषण का अपना एक अलग ढंग है, एक अलग टेकनीक है जो अन्य माध्यमों से सर्वथा भिन्न है। साहित्य की कोई भी विधा आकाशवाणी द्वारा जब प्रसारित की जाती है तो इस टेकनीक का ख़्याल रखा जाता है और परिवर्तन के बाद ही उसे प्रसारित किया जाना संभव हो पाता है। यही विशेषता आकाशवाणी को अन्य माध्यमों से अलग करती है। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कोई भी विधा पहले साहित्यिक विधा है, फिर टेकनीक में परिवर्तन के बाद वह रेडियो की विधा बन जाती है।

आकाशवाणी ने साहित्य की कई विधाओं पर कुछ ऐसा दबाव बनाया कि उसके मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हुई। शब्दों का चयन, वाक्य संरचना के साथ-साथ लोकजीवन की, खासकर मध्यम वर्ग की मनोवृत्ति को उकेरने का प्रयत्न लगातार किया गया है। आकाशवाणी ने सीधे तौर पर साहित्य के विविध विधाओं के भाव और शिल्प को प्रभावित किया है और साहित्यकारों ने आकाशवाणी को ध्यान में रखकर विविध रचनाएं की हैं। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य का एक आवश्यक गुण है नवीनता। नवीनता से रोचकता अपने-आप आ जाती है। मनुष्य स्वभाव से ही नई वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। वह नवीनता को जानना और समझना चाहता है। आकाशवाणी के श्रोता भी नए-नए कार्यक्रमों को सुनना अधिक पसंद करते हैं। इसलिए आकाशवाणी के कार्यक्रम निर्माता साहित्य के शिल्प में भी नवीनता चाहते हैं और यह नवीनता आकाशवाणी द्वारा प्रसारित साहित्य में दिखाई पड़ती है।

चतुर्थ अध्याय में आकाशवाणी के कुछ केंद्रों से प्रसारित साहित्य का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में हर विधा की रचनाओं को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। जो विधाएँ साहित्य में प्रचलित हैं उनमें से कई विधाओं को आकाशवाणी ने ग्रहण किया, साथ ही साथ कई विशिष्ट विधाओं को जन्म भी दिया।

समाज के विभिन्न वर्गों के लिए उनकी रुचियों को ध्यान में रखकर आकाशवाणी द्वारा कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। रेडियो रूपक एक साहित्यिक विधा होते हुए भी इसकी शैली इसे विशिष्टता प्रदान करती है। इसका जन्म आकाशवाणी द्वारा हुआ है और इसने विकास भी आकाशवाणी द्वारा ही पाया है। स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में इस विधा की ख़ूब चर्चा की गई है और शोधकार्य भी किए गए हैं। कहानी, रूपक, वार्ता, नाटक, रेडियो रूपक, साक्षात्कार आदि विधाओं में काफी परिवर्तन हुए। नाटक के साथ-साथ एकांकी जैसी नई नाट्य-विधा का विकास हुआ। इसी तरह 'गीति-नाट्य' या 'गीति-काव्य' जैसी विधाएं भी प्रचलन में आईं। निश्चित रूप से जहाँ इन पर परिस्थितियों का दबाव था, वहीं तेजी से बदलते हुए समाज में आकाशवाणी जैसे संचार माध्यम का प्रभाव भी था।

पंचम् अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में उसकी भूमिका का विस्तृत अनुशीलन किया गया है। आकाशवाणी से प्रसारित कविताओं का अध्ययन करने से यह भी स्पष्ट होता है कि कुछ कविताएँ विषय को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं और उनमें साहित्यिकता का अभाव भी है। तमाम गीत या कविताएँ बालगीत के रूप में मिलती हैं; जिनका साहित्यिक स्तर काफ़ी कमज़ोर दिखाई पड़ता है। इसी तरह से राष्ट्र-प्रेम या अन्य सामाजिक विषयों को लेकर लिखी गई कविताएँ नितांत आदर्शवादी हैं और उनमें जीवन की वास्तविकता बहुत कम व्यक्त हो पाई है। ऐसा विशेषतः उन साहित्यकारों के साथ हुआ जिन्हें साहित्य लिखने का अभ्यास नहीं था, परंतु प्रसारण की प्रतिबद्धता के चलते उन्होंने कविताएँ लिखीं। स्वतंत्रता के पश्चात् आकाशवाणी द्वारा प्रसारित कविताओं का उद्देश्य राष्ट्र-विकास की ओर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले इस राष्ट्र में विकास की राहें प्रशस्त हों, इस ओर कवियों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया। अथक प्रयत्नों और असंख्य बलिदानों के बाद मिली आजादी को एकता और अखण्डता की मजबूती मिले और इसका प्रचार जन-जन तक पहुँचने वाला सबसे सस्ता माध्यम

आकाशवाणी ही था। इसीलिए देशभक्ति को कवियों ने प्रमुखता प्रदान की और अपनी कविताओं में इसकी सृष्टि की। आजादी के बाद की हिंदी कविता कई स्तरों पर आकाशवाणी से प्रभावित है। उदाहरण के तौर पर नवगीत के रूप में गीतात्मक कविताओं का विकास, राष्ट्रधर्म, राष्ट्रभक्ति को लेकर कविताओं का सृजन एवं सरलतम शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों एवं सहज बिंबों, प्रतीकों का प्रयोग कहीं न कहीं कविता को आकाशवाणी के अनुकूल सिद्ध करता है।

वार्ता का विकास संचार माध्यमों के दबाव के चलते ही हुआ है। इसीलिए देखा जाता है कि साहित्य में प्रायः वार्ताओं का अभाव है। यद्यपि इसे उस प्रकार के निबंध के श्रेणी में रखा जा सकता है जो किसी एक सीमित विषय पर केन्द्रीत हो कर निर्धारित समय-सीमा के भीतर संपन्न हो सके। वार्ता की समय-सीमा काफ़ी महत्वपूर्ण है। समय-सीमा के भीतर ही वार्ताकार को अपनी वार्ता पूरी करनी पड़ती है। किसी भी परिस्थिति में वार्ता की समय-सीमा दस मिनट से अधिक नहीं होती। स्पष्ट है कि कभी=कभी आकाशवाणी के दबाव के कारण भी किसी रचना की भाषा=संरचना एवं उसकी प्रस्तुति पर असर पड़ता है। हम कहीं न कहीं आकाशवाणी का प्रभाव इसकी संपूर्ण संरचना पर देख सकते हैं।

आकाशवाणी ने ऐसी तमाम कहानियों का प्रसारण किया जिनमें आम जनता के जीवन की समस्याएँ प्रतिबिंबित हुई थीं। साथ ही समाज एवं परिवार में आने वाले परिवर्तनों को लक्ष्य कर लिखी गई कहानियों को भी आकाशवाणी द्वारा प्रमुखता से प्रसारित किया गया। इसके अतिरिक्त कुछ मनोरंजन प्रधान, व्यंग्यात्मक कहानियों को भी आकाशवाणी ने प्रसारित किया। यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि आकाशवाणी ने सीधे तौर पर हिंदी कहानियों को प्रभावित किया परंतु इतना तो स्पष्ट है कि आकाशवाणी ने नए भावबोध की कहानियों को प्रचारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

रेडियो-नाटकों के माध्यम से आकाशवाणी ने हिंदी साहित्य को काफ़ी समृद्ध किया है। यही एक विधा है जिसे आकाशवाणी ने पूर्ण रूप से ग्रहण किया और इसकी तकनीक में परिवर्तन कर इसे अपने प्रसारण-योग्य बनाया। कहानी, कविता, उपन्यास आदि सभी विधाओं में सर्वप्रथम स्थान रहा है हिंदी नाटकों का, जिसका प्रसारण आकाशवाणी ने सर्वाधिक किया है। यहाँ तक कि अन्य भाषाओं के नाटकों का रूपांतर भी हिंदी में करने के बाद नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम में प्रसारित किया गया। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि ये सभी किसी न किसी रूप में आकाशवाणी से संबद्ध थे और इनकी कई रचनाओं का प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया गया। इस संदर्भ में एकांकी के विकास को विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है। आकाशवाणी के लिए नाटकों का प्रसारण जहाँ अपेक्षाकृत दुष्कर एवं कष्टसाध्य कार्य था वहीं दूसरी ओर इस विधा की लोकप्रियता के कारण लगभग अनिवार्य भी था। एकांकी ने इस समस्या को बहुत हद तक कम किया क्योंकि एकांकी की नाट्ययोजना अपेक्षाकृत अधिक संक्षिप्त एवं सरल थी। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि नाटक के साथ-साथ एकांकी जैसे संक्षिप्त नाट्च-विधा का विकास आकाशवाणी के दबाव से ही हुआ है।

रेडियो रूपक यद्यपि आकाशवाणी की विशिष्ट विधा है जिसमें आलेख वाचन के साथ-साथ बातचीत, साक्षात्कार, संगीत आदि का प्रयोग भी बीच-बीच में किया जाता है, परंतु इसके निर्माण में साहित्यिक समझ की बड़ी आवश्यकता रहती है। सामान्यतः जो नाटककार आकाशवाणी से संबद्ध रहे उन्होंने समाय-समय पर आवश्यकतानुसार रेडियो-रूपकों की रचना की।

भेंटवार्ता या साक्षात्कार हिंदी साहित्य की स्थापित विधा है जिसमें रचनाकारों ने विपुल सर्जना की है। साहित्य की तरह आकाशवाणी में भी साक्षात्कार एक

आवश्यक विधा के रूप में स्वीकृत है। साक्षात्कार मूलतः वाचिक अभिव्यक्ति है जो पूरी तरह से आकाशवाणी के दबाव से ही विकसित हुई है। प्रारंभ में यह कार्य आकाशवाणी द्वारा नियमित रूप से किया जाता रहा परंतु बाद में इसकी प्रमाणिकता एवं लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए लिखित रूप में इसे संरक्षित करने की परंपरा शुरु हुई; जो कालांतर में साक्षात्कार विधा के नाम से जानी गई। अतः यह स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य को साक्षात्कार की विधा आकाशवाणी की देन है और हिंदी साहित्य को इसके लिए ऋणी होना चाहिए।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि आकाशवाणी और साहित्य में कोई प्रत्यक्ष संबंध भले ही नहीं रहा है लेकिन दोनों ने एक-दूसरे को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद इन दोनों माध्यमों का आपसी संपर्क अधिक रहा; क्योंकि विधाओं के निजी चरित्र होने के बावजूद ये दोनों माध्यम स्वतंत्रता के बाद देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। साहित्य और आकाशवाणी के परस्पर आदान-प्रदान को कभी महत्त्वपूर्ण नहीं समझा गया, जबकि दोनों ही वैचारिक एवं भवानात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम रहे। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि प्रारंभ में आकाशवाणी केवल एक सरकारी सूचना तंत्र ही थी और इसे एक सरकारी माध्यम के रूप में ही स्वीकार किया गया। कालान्तर में यद्यपि इसकी भूमिका में परिवर्तन आया और सिर्फ सूचना तंत्र से मुक्त हो कर इसने जन-चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भी अपना विकास किया परंतु सरकारी आधिपत्य होने के कारण इसे कभी अभिव्यक्ति के स्वतंत्र माध्यम के रूप में नहीं देखा गया। बावजूद इस मूलबद्ध अवधारणा के साहित्य और आकाशवाणी का आपसी आदान-प्रदान चलता रहा और दोनों ने ही एक दूसरे को गंभीरता से प्रभावित किया।

****

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

हिंदी-ग्रंथ

1. अपरिमित, शशि पाठक, नीतिका प्रकाशन, ए-71, विवेक विहार, फेस-2, दिल्ली- 110 095, प्रथम संस्करण-2004
2. आकाशवाणी, रामबिहारी विश्वकर्मा, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, *भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-1, प्रकाशन वर्ष 1987*
3. आकाशवाणी नाटक और हरियाणा के प्रमुख नाटककार एक संवाद, आनन्दप्रकाश आर्टिस्ट, पत्राचार पाठ्यक्रम निदेशालय, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र, जून 2000.
4. आकाशवाणी विविधा, संकलन : एक, आकाशवाणी प्रकाशन, आकाशवाणी महानिदेशालय, नई दिल्ली 110001. प्रकाशन वर्ष 1992.
5. आकाशवाणी विविधा, संकलन : दो, आकाशवाणी प्रकाशन, आकाशवाणी महानिदेशालय, नई दिल्ली 110001. प्रकाशन वर्ष 1993.
6. आकाशवाणी कथाभारती, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-1, प्रकाशन वर्ष 1982 (तृतीय संस्करण)
7. आधे-अधूरे, मोहन राकेश, प्रकाशक- राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110 051, संस्करण 2003.
8. आषाढ़ का एक दिन- मोहन राकेश, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली प्रथम संस्करण 1958
9. चिन्तन पर्व, डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित, स्वाध्याय प्रकाशन, डी-54, निराला नगर, लखनऊ-7 प्रकाशन वर्ष 1980, प्रथम संस्करण.
10. तिनका तिनका सुख, संपादक- उषा भसिन, आकाशवाणी, नई दिल्ली
11. तीसरा सप्तक, सं. अज्ञेय, पृ.- 211, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110 003, आठवाँ संस्करण 2003
12. दूरदर्शन दशा और दिशा, सुधीश पचौरी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-1, प्रकाशन वर्ष नवम्बर, 1994.
13. धुंध के पार - डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', सुन्दर साहित्य सदन, 882, गली बेरी वाली, बाजार सीताराम, दिल्ली-110 006, संस्करण 2005
14. फीचर लेखन : स्वरूप और शिल्प - डॉ. मनोहर प्रभाकर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110 051, पहला संस्करण 1992
15. भारत में जनसंवाद, डा. महावीर सिंह, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-1, प्रकाशन वर्ष जून, 1994
16. भेंटवार्ता और प्रेस कान्फ्रेंस - प्रो. (डॉ.) नंदकिशोर त्रिखा, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110 051, परिवर्तित और परिवर्द्धित संस्करण 2003
17. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक- संपादक- नेमिचंद्र जैन, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली-6, संस्करण 1993.

18. रंगमंच : कला और दृष्टि- डॉ. गोविंद चातक,तक्षशिला प्रकाशन, 23/4763, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण : 1976
19. रहीम रत्नावली, सं. स्व. पं. मयाशंकर याज्ञिक, प्रकाशक- साहित्य सेवा सदन, काशी, प्रथम संस्करण-1926 ई.
20. राज्य सरकार और जनसंपर्क- सं. वहीद अहमद काजी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110 051, प्रथम संस्करण 1991
21. रूपक-रहस्य: डॉ. श्यामसुन्दर दास, प्रकाशक : इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, तृतीय संस्करण, संवत् 2003
22. रेडियो रूपक, डॉ. बमबम सिंह नीलकमल, जीवन ज्योति प्रकाशन, 3014, चर्खेवालान, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण : 1994
23. रेडियो पत्रकारिता : स्वरुपात्मक अध्ययन, आनन्दप्रकाश आर्टिस्ट, पत्राचार पाठ्यक्रम निदेशालय, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, सितम्बर 2003
24. रेडियो नाटक संग्रह, भाग-3, संपादक रमेश नारायण तिवारी, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-1, प्रकाशन वर्ष नवम्बर 1987.
25. रेडियो वार्ता शिल्प, सिद्धनाथ कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रकाशन वर्ष 1992, प्रथम संस्करण
26. रेडियो नाटक की कला, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रकाशन वर्ष 1992, प्रथम संस्करण
27. रेडियो नाटक संग्रह, भाग-2, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-1,
28. रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, बिहार ग्रंथ अकादमी, सम्मेलन भवन, पटना 800003, प्रथम संस्करण मार्च 1974
29. शोध और सन्दर्भ- क्षेमचन्द्र सुमन, आर्य प्रकाशन मण्डल, गांधी नगर, दिल्ली 110 003, प्रथम संस्करण- 1985
30. श्रीरामचरितमानस, टीकाकार-हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक- गोविंदभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, पचपनवाँ संस्करण-सं. 2055.
31. सम्प्रेषण और रेडियो-शिल्प : विश्वनाथ पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 2005 ई.
32. समाचार संकलन और लेखन- नन्द किशोर त्रिखा, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, तृतीय संस्करण-1997
33. साक्षी, केन्द्र निदेशक, आकाशवाणी, प्रसारण भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली-110001 प्रकाशन वर्ष 2003.
34. सात राष्ट्रीय रेडियो-नाटक, चिरंजीत, भारतीय प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण, वर्ष 1998.
35. साहित्य- एक विवेचन, डॉ. राजमल बोरा, प्रकाशक- अर्चना प्रकाशन, 4063, बण्डीमेट, सिकंदराबाद (आ. प्र.) प्रथम संस्करण, 17 जून 1959
36. साहित्य-विधा-विवेक, लेखक- डॉ. देवेन्द्र त्यागी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, वर्ष 1992

37. साहित्यिक विधाएँ : पुनर्विचार - डॉ. हरिमोहन, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण : 1997

38. हिन्दी आलोचना : प्रवृत्तियाँ और आधारभूमि- रामदरश मिश्र, नार्थ इण्डिया पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, ई-343, गली न. 13, सोनिया विहार, दिल्ली-110 094,प्रथम संस्करण 2002

39. हिन्दी का गद्य-साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. Third Revised Edition: 1999.

40. हिन्दी नाटक- बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रकाशन वर्ष 1989, प्रथम संस्करण

41. हिन्दी पत्रकारिता विविध आयाम-भाग-2, संपादक- डॉ. वेदप्रताप वैदिक, हिंदी बुक सेन्टर, नयी दिल्ली 110 002, प्रथण संस्करण 1992

42. हिन्दी पत्रकारिता दशा और दिशा, संपादक- जय प्रकाश भारती, प्रवीण प्रकाशन 1/1079, महरौली, नई दिल्ली 110 030, संस्करण 1994

43. हिंदी पत्रकारिता की दिशाएं, जोगेन्द्र सिंह, सुरेन्द्र कुमार एण्ड सन्ज, 30/21ए-22ए, गली नं. 9, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, 2002

44. हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार- डॉ. ठाकुरदत्त शर्मा आलोक, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली 110 002, प्रथम संस्करण 2000

45. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, ए-95, सेक्टर-5, नौएडा-201301, अट्ठाईसवां पुनर्मुद्रित संस्करण, 2001 ई.

46. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, प्रकाशन केन्द्र, डालीगंज रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ-226007, प्रथम संस्करण 1982

47. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, तेरहवाँ संवर्द्धित संस्करण, 2000 ई.

48. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. सुधीन्द्र कुमार, कादम्बरी प्रकाशन, 5451, शिव मार्किट, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, 2001

49. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, तैंतीसवाँ संस्करण (संवत् 2055 वि0)

50. हिन्दी शोध-तन्त्र की रूपरेखा- मनमोहन सहगल, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-302003, संस्करण द्वितीय, 1989

अंग्रेजी-ग्रंथ

1. AIR Manual, Volume I, Parts I & II, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली-1, द्वितीय संशोधित संस्करण, अक्टूबर, 1989

2. All India Radio 2002, Audiance Research Unit, Director General, All India Radio, Prasar Bharati, Broadcasting Corporation of India, New Delhi 110001. Publication Year :2002

3. Basic Radio Journalism : Paul Chantler and Peter Stewart, Focal Press Publications, Linacre House, Jordan, Hill, Oxford OX2 8DP, 200 Wheeler Road, Burlington, MA 01803, 2003

4. Broadcasting in India : G. C. Awasthy, Allied Publishers Private Ltd., 15 Graham Road, Ballard Estate, Bombay-1, 1965.
5. Broadcasting in India : P. C. Chatterji, Sage Publications India Pvt. Ltd., 32 M-Block Market, Greater Kailash-I, New Delhi 110
6. Research Methidology: Virendar Prakash Sharma, Panchsheel Prakashan, Film Colony, Choura Rasta, Jaipur-302 003. First Edition-1999
7. The B.B.C. From within` Lord Simon of wythenenshawe, Published by (wythenenshawe)Victor Gollancz Ltd, London (1953)
8. The Politics of Broadcasting : Edited by Marvin Barrett, Thomas Y. Crowell Company, 666 Fifth Avenue, New York 10019, 1973
9. The Radio Broadcasting Industry : Alan B. Albarran & Gregory G. Pitts, Allyn and Bacon, A Pearson Education Company, 160 Gould Street, Needham Heights, MA 02494, 2001.
10. This is All India Radio : U.L. Baruah, Publication Division, Ministry of Information & Broadcasting, Government of India, Patiala House, New Delhi-110 001. April 1983
11. Who's Listening ? : Robert Silvey, George Allen & Unwin Ltd., Ruskin House, Museum Street, London, 1974.

कोश

1. गौरव हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश, संकलनकर्ता–राधाकृष्ण सचदेवा, गौरव पब्लिशिंग हाऊस, 9265, पहाड़गंज, नई दिल्ली-110 055, प्रथम संस्करण
2. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश - सं. पण्डित रामचन्द्र पाठक, भार्गव बुकडिपो, चौक, वाराणसी। सोलहवाँ संस्करण, जुलाई, 1975 ई.
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, संपादक- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी. तृतीय संस्करण 2000 ई.
4. वही, भाग 2

पत्र-पत्रिकाएँ

1. समकालीन साहित्य समाचार, संपादक- सत्यव्रत, किताबघर प्रकाशन, 4855-56-24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
2. सेंटिनल, हिंदी दैनिक, संपादक- दिनकर कुमार, ओमेगा प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लि. जीएस रोड, गुवाहाटी-781 005
3. *Shillong Times, Editor- Manas Choudhury, Rilbong, Shillong-1*

***

अनुसंधित्सु का विवरण

1. नाम	अमीरुल हसन अकेला
2. शिक्षा	एम. ए.
3. विभाग	हिंदी
4. शोध प्रबंध का शीर्षक	'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के विकास में आकाशवाणी का अवदान'
5. प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	19.09.2002
6. शोध-प्रस्ताव की संस्तुति	
(i) बी.पी.जी.एस.	30.9.2002
(ii) स्कूल बोर्ड	18.10.2002
7. पंजीयन संख्या	689 दिनांक 18.10.2002

अध्यक्ष
हिंदी विभाग

103840
...HU LIBRARY 103840.
... No...
... By...
Date... 17-4-08
Class by...
Sub.Heading by...
Enter by...
Transcribed by...